रामरत्न-ग्रन्थमाला, १म पुष्प

दर्शन-परिचय

(संसार भरके दर्शनोंका संक्षिप्त विवरण)

—लेखक—

श्रीयुत पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी

(वेदान्तशास्त्री)

—प्रकाशक—

निहालचन्द एण्ड कम्पनी,

१, नारायणप्रसाद बाबू लेन, कलकत्ता।

प्रथम बार १९०० प्रतियां } सम्वत् १९८० वि०। { मूल्य २) रेशमी जिल्द २॥)

1923

प्रकाशक,

निहालचन्द वर्म्मा,

१, नारायणप्रसाद वावू लेन,

कलकत्ता।



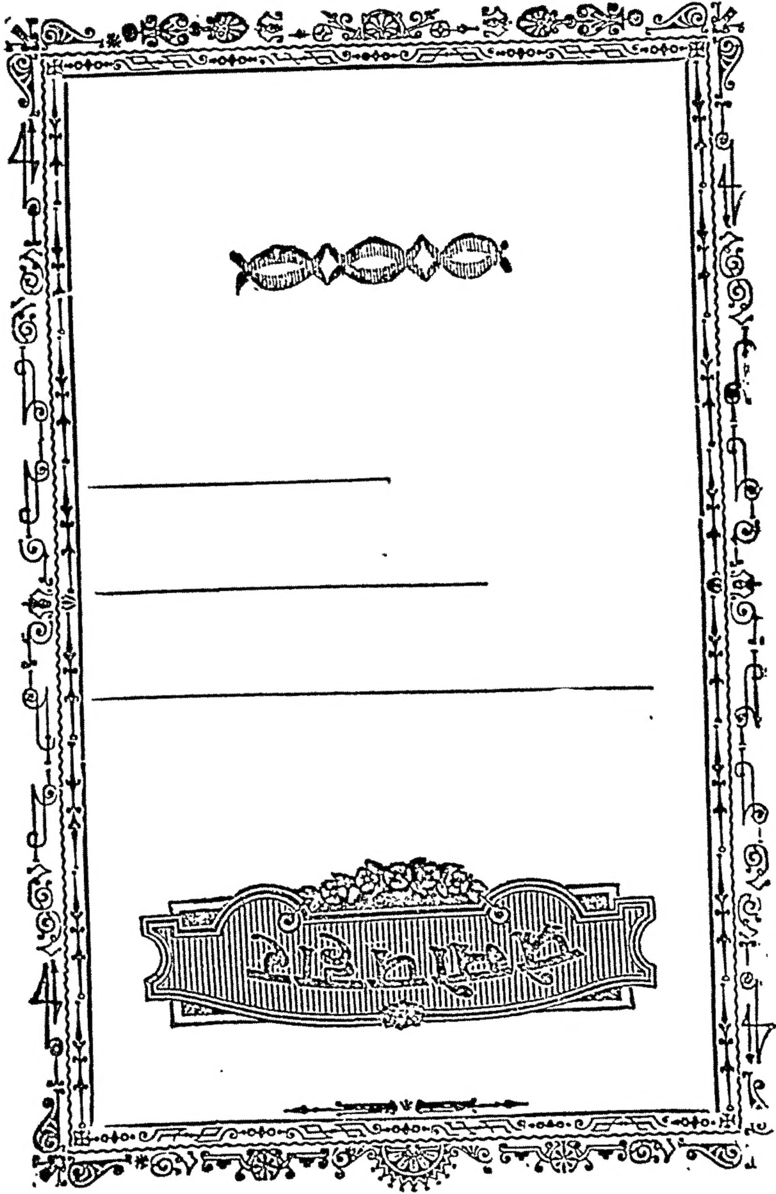
मुद्रक,

दयाराम बेरी,

"श्रीकृष्ण प्रेस,"

१, नारायणप्रसाद वावू लेन,

कलकत्ता।



दर्शन परिचय



श्रीयुत नारायणलाल बापूलाल द्विवेदीजी ।

SHRIKRISHNA PRESS, CALCUTTA.

समर्पण

नांदोल (तालुका देहगाम, जिला अहमदाबाद)-निवासी,

कलकत्ता-प्रवासी, धर्मपरायण, परोपकार-निरत,

सभापति, श्रीऔदीच्य-ब्रह्मसमाज (कलकत्ता)

श्रीयुत नारायणलाल बापूलाल द्विवेदीजी

के

क र क म लों में

सादर, सप्रेम

समर्पित

—रामगोविन्द त्रिवेदी ।

भूमिका

यह लिखनेकी आवश्यकता नहीं कि, हिन्दीमें दार्शनिक साहित्यका अभाव हिन्दी-हितैषियोंको खूब खटकता है; क्योंकि जिस भाषामें दर्शनशास्त्रके शान्तिदायी और उदात्त विवेचनोंकी सृष्टि या संग्रह नहीं हुआ है, वह सभ्य-संसारमें पङ्गु तथा जीवन्मृतासी गिनी जाती है। बहुत, दिनोंसे हमारे चित्तको भी यह अभाव बुरा तरह खटक रहा है। किन्तु किया क्या जाय? अपने अन्दर ऐसे गहन विषय-पर लेखनी-घर्षण करने योग्य उत्कट पाण्डित्य है नहीं—उधर प्रतिभा-शाली पण्डितोंकी शुभ शरणमें पहुंचनेपर उत्तर मिलता है, "यह कार्य दीर्घकालापेक्ष है—उचित सुविधा-सामग्रियां भी नहीं हैं।" अन्तको निराश हो जाना पड़ता है!

यह सब कुछ है; परन्तु इसके विपरीत हमारे कई एक "स्वाधीन-चेता" और "अदम्य-मना" मित्रोंका अजेय "आग्रह" (चाहे इसे दुराग्रह ही कहिये) चला आ रहा था कि, "संसार भरके दर्शनोंके प्रमेयों या प्रतिपाद्य पदार्थोंको टूटी-फूटी भाषामें लिखकर शीघ्रातिशीघ्र पुस्तकका रूप दे डालो; चाहे बीते तीन या

तेरह।" जब इस आग्रहने बेतरह जोर पकड़ा, तब बाध्य होकर, डरते-डरते, हमने इस काममें हाथ डाला—विशेषतः इस विचारसे कि, इस पुस्तकको देखकर दर्शनशास्त्रके योग्य विद्वानोंकी अभिरुचि इस विषयकी ओर झुकेगी और वे शीघ्र ही एक प्रामाणिक ग्रन्थ लिखकर इस अभावकी पूर्त्ति कर डालेंगे। तो भी, इस अनुचित धृष्टताके लिये, हम विद्वानोंसे क्षमा-याचना करते हैं। इस धृष्टतासे अपने उद्देश्यमें हमें कहाँतक सफलता हुई है, इसका विचार विज्ञ वाचक ही करें।

जैसा कि, "विषय-प्रवेश" में लिखा गया है, पहले हमारा और इसके प्रकाशक महाशयका विचार था कि, समस्त संसारके दर्शनोंका परिचय एक ही पुस्तकमें दे दिया जाय। परन्तु बहुत कुछ प्रयत्न करनेपर भी हमलोग ऐसा नहीं कर सके। धीरे-धीरे "विषय-प्रवेश" ही प्रायः ५० पृष्ठोंका हो गया। पश्चात् सांख्य दर्शनका जो परिचय लिखा गया, वह भी आशातीत बढ़ गया। इस आशा-विपरीत-वृद्धिका प्रधान कारण हुई सांख्यके प्रत्येक प्रसिद्ध, अप्रसिद्ध पदार्थका परिचय लिखनेकी प्रबल अभिलाषा। यही बात योगदर्शनके परिचयके सम्बन्धमें भी हुई। फलतः ग्रन्थकी अत्यधिक कलेवर-वृद्धि होते देखकर हमलोगोंने इसे खण्डशः प्रकाशित करनेका विचार किया और उसके अनुसार "विषय-प्रवेश" के साथ सांख्य और योगका पदार्थ-परिचयात्मक यह प्रथम खण्ड निकालना पड़ा। द्वितीय खण्डमें न्याय और वैशेषिकका परिचय रहेगा तथा तृतीयमें मीमांसा और वेदान्तका।

एक खण्ड बौद्ध और जन दर्शनोंका होगा। इसके सिवा भारतवर्षके प्रचलित, अप्रचलित, आस्तिक, नास्तिक दर्शनों और समस्त संसारके दर्शनोंका परिचय अनेक खण्डोंमें प्रकाशित किया जायगा। सब मिलकर कितने खण्ड होंगे? इसका उत्तर अभी दे देना बहुत ही कठिन काम है; परन्तु अनुमान है कि, सबका परिचय न्यूनाधिक दस खण्डोंमें दिया जा सकेगा। कहाँ इस महायज्ञकी आवश्यक पूर्त्ति और कहाँ हमारी क्षुद्रतम शक्ति! इस विचारको ध्यानमें लाते ही संकोच और निराशाके गहन गह्वरमें गिरना पड़ता है! क्या हमारा यह करुण स्वर विश्वपिता नहीं सुनेगा? अन्तस्तल तो कहता है कि, 'वह सुनेगा' और उसकी सूक्ष्म प्रतिध्वनि भी कहती है 'वह अवश्य सुनेगा।'

इस ग्रन्थको लिखनेमें हमें कई महानुभावों और ग्रन्थोंसे यथेष्ट सहायता मिली है। विशेषतः "बंगला विश्वकोष"के संकलयिता और प्रकाशक बाबू नगेन्द्रनाथ वसु, "पृथिवीर इतिहास"के लेखक बाबू दुर्गादास लाहिड़ी, महामहोपाध्याय प० हरप्रसाद शास्त्री एम० ए०, महामहोपाध्याय प० लक्ष्मण शास्त्री द्रविड़, महामहोपाध्याय श्रीगणनाथ सेन, एम० ए०, एल० एम० एस० साहित्याचार्य प० रामावतार शर्मा एम० ए०, बाबू भगवान दासजी एम० ए०, साहित्याचार्य प० चन्द्रशेखर शास्त्री, न्यायाचार्य प० गिरिधर शर्मा, पण्डित सकलनारायण शर्मा और प० रघुवीर त्रिवेदी आदिसे इस ग्रन्थके सामग्री-संकलन और विषय-समावेश करनेमें बहुत साहाय्य प्राप्त हुआ है। इस साहाय्य-प्राप्तिके लिये हम इन

महोदयोंके चिरऋणी रहेंगे। इस ग्रन्थको ग्रन्थका रूप देनेमें "सर्व-दर्शनसंग्रह," "हिन्दूशास्त्र," "फेलोशिपेर लेक्चर," "The six Systems of Indian Philosophy," "Bibliotheca Indica," "The Secred Books of the East," "Hindu Philosophy," Encyclopaedia Indica," "पृथिवीर इतिहास," "परमार्थ-दर्शन," "षड्दर्शन," "यूरोपीय दर्शन", "भारतीय दर्शनशास्त्र," "प्राच्य दर्शन," "अलिविलासि-संलाप," "शारीरकभाष्य,""ब्रह्मजाल-सूत्त" आदि अनेक ग्रन्थ-रत्नोंसे हमें यथेष्ट सहायता मिली है। एतदर्थ इनके प्रणेताओं और संकल-यिताओंको हम हार्दिक साधुवाद दिये विना नहीं रह सकते। उन महोदयोंको भी हम धन्यवाद देना नहीं भूल सकते, जिन्होंने कृपया इस ग्रन्थकी फाइल पढ़कर या सुनकर अपनी अनमोल सम्मति लिख भेजनेकी दया दिखायी है। लगे हाथ इसके प्रका-शक महाशयको भी हम अनेक धन्यवाद देते हैं, जो अत्यधिक व्ययकी ओर ध्यान न देकर, असीम उत्साहके साथ, इस विशाल ग्रन्थका प्रकाशन कर रहे हैं।

कलकत्ता यूनिवर्सिटीके दर्शनाध्यापक, "सर्वमान्यग्रन्थप्रणयन-समिति" (काशी) के सम्पादक और दर्शन-शास्त्रके सुप्रसिद्ध विद्वान् श्रीयुत पण्डित अनन्तकृष्ण शास्त्रीजीके भी हम सविशेष कृतज्ञ हैं। आपने इस ग्रन्थका, बड़े ध्यानसे, निरीक्षण किया है और हमारे अनुरोधपर आपने इसका बड़ा ही मार्मिक तथा प्राञ्जल "परिशिष्ट" लिख देनेकी कृपा की है। आप उतनी

अच्छी हिन्दी नहीं लिख सकते हैं ; इसलिये संस्कृतमें ही परिशिष्ट लिखा, जिसका हिन्दी अनुवाद पुस्तकान्तमें प्रकाशित किया गया है।

हमारा एक विशेष वक्तव्य है कि, गहन विषयोंको सरल भाषामें लिखनेके लिये अच्छी योग्यता चाहिये। कुछ लोगोंका तो खयाल है कि, ऊँचे विचारोंको व्यक्त करनेके लिये ऊँची भाषाका प्रयोग करना अनिवार्य है। परन्तु हमारा विचार इसके विपरीत है। इसीके अनुसार हमने इस ग्रन्थकी भाषा सरल करनेका प्रयत्न किया है। इसमें यदि हम असफल हुए हों, तो पाठक उसे हमारी कमजोरी समझें।

हाँ, यथेष्ट चेष्टा करने पर भी प्रूफ-रीडरोंकी दयासे इस ग्रन्थमें, अनेक स्थलोंपर, अक्षराशुद्धियाँ रह गयी हैं। बहुत सम्भव है, हमारी अयोग्यता या अल्प योग्यताके कारण भी भाव-भाषाऽशुद्धियाँ रह गयी हों। प्रवीण पाठक और सुदक्ष विद्वान् उन अशुद्धियोंको सुधार कर पढ़नेकी कृपा करेंगे।

अग्रहायण पूर्णिमा, १९८० वि०।
"भारती प्रेस,"
२२, सरकार लेन, कलकत्ता।

विनयी,
रामगोविन्द त्रिवेदी

दर्शन परिचय



"दर्शन-परिचय" के प्रणेता—पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी।

ग्रन्थकार-परिचय

इस पुस्तकके प्रणेता पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी, वेदान्त-शास्त्री, गाजीपुर जिलेके निवासी हैं। आजसे बहुत दिन पहले आपसे मेरा परिचय हुआ था। आपकी थोड़ी अवस्था और अद्भुत योग्यता देखकर मैं चकित और मुग्ध हो गया। पहले आप भारतधर्ममहामण्डल (काशी) से प्रकाशित और महारानी खरीगढ़ द्वारा सम्पादित सचित्र त्रैमासिक पत्रिका "आर्य्यमहिला" के व्यवस्थापक थे। उसमें आप "महामाया देवी" और "शान्तिदेव" के नामसे लेख लिखा करते थे। पत्रिकामें प्रायः आपकी कविताए भी छपा करती थीं। आपके गद्य और पद्य लेखोंकी गंभीरता तथा उत्तमताके विषयमें मैं अपनी ओरसे कुछ नहीं कह सकता, हिन्दी-संसार भली भाँति जानता है। हाँ, इतना अवश्य कहूँगा कि, यदि उन लेखोंका संग्रह कर पुस्तकाकार प्रकाशित किया जाय, तो हिन्दीमें एक नयी वस्तु और नयी शैलीका नमूना उपस्थित हो जाय। उनके विषय गहन हैं; पर लेखन-शैली आदर्श है। कविताएँ भी भावमयी हैं।

इसके पहले, आपने बहुत दिनोंतक, महामहोपाध्याय प० हरप्रसाद शास्त्री, एम० ए०, सी० आई० ई०, की निरीक्षकतामें,

एशियाटिक सोसाइटीके पुरातत्त्वशोधन-विभागमें, काम किया था। आपकी कार्य्य-प्रणाली और योग्यताकी प्रशंसा करके उक्त शास्त्री महोदय बड़े संतुष्ट रहते थे। भारतधर्ममहामण्डल-की ओरसे धार्मिक डेपुटेशन लेकर जब आप ब्रह्म-प्रदेशमें गये थे, तब वहांके अनेक प्रधान-प्रधान नगरोंमें आपके व्याख्यानोंने जादू-कासा प्रभाव डाल दिया था। रंगून, बम्बई, ढाका, निजाम-हैदराबाद, पश्चिमी चीनकी सीमापर शान स्टेट आदि स्थानोंमें व्याख्यान द्वारा आपने खूब प्रभाव जमाया है। आपके ही उद्योग और प्रोत्साहनसे ब्रह्म-प्रदेशकी राजधानी रंगूनसे राष्ट्र-भाषा हिन्दीका "विश्वदूत" नामक सचित्र मासिक पत्र निकला है। वहां "विश्वदूत" नामक एक हिन्दी प्रेस भी स्थापित हो चुका है। बर्मामें हिन्दी-प्रेस और पत्र हो जानेसे हिन्दीका यथेष्ट प्रचार हो रहा है। आपने कुछ दिनोंतक "विश्वदूत" का सम्पादन भी, बड़ी योग्यतासे, किया था। संस्कृतज्ञ शास्त्री होने पर भी हिन्दी भाषाके आप अच्छे विद्वान् हैं। दर्शन-शास्त्रमें आपकी अच्छी गति है। विशेषतः नव्य-न्यायमें आपने बड़ा परि-श्रम किया है। आपमें सबसे बड़ी विशेषता यह है कि, कठिनसे कठिन विषयको भी समझनेमें आपकी प्रतिभा बड़ी तीव्र है। आप अङ्गरेजी, गुजराती, मराठी और बङ्गला भी अच्छी जानते हैं। यों तो आपके लिये संस्कृतमें श्लोक बना लेना, निबन्ध लिख देना और व्याख्यान दे देना सहज ही है; पर आपका हिन्दी-व्याकरण-विषयक ज्ञान भी प्रशंसनीय है। आपके द्वारा संशो-

धित "राष्ट्रभाषाभूषण" और "सरल हिन्दीशिक्षा" से यह बात प्रत्यक्ष प्रमाणित होती है। काशीकी "निगमागमचन्द्रिका" में आपकी संस्कृत कविताएँ छपा करती थीं। उनमें माधुर्य्य और प्रसादके साथ-साथ यथेष्ट ओजस्विता भी है। फलतः हिन्दीका बड़ा सौभाग्य है कि, आपके समान विद्वान् हिन्दी-पुस्तकोंकी रचनाकी ओर प्रवृत्त हुए हैं।

आपका लिखा हुआ जो सबसे बड़ा और अद्भुत ग्रन्थ है, वह है "हिन्दी-विष्णुपुराण"। यह ग्रन्थ बड़ी सजावट और बड़ी तैयारीके साथ कलकत्तेकी प्रसिद्ध आर० एल० वर्मन कम्पनीके मालिक बाबू रामलालजी वर्मा निकाल रहे हैं। यह ग्रन्थ तैयार हो चला है; किन्तु वर्म्मनजी इसे ऐसी वस्तु बना देना चाहते हैं, जो केवल हिन्दी-संसारके लिये ही नहीं, बल्कि अन्य देशी भाषाओंके लिये भी यह एक आदर्श वस्तु हो। वर्म्मन कम्पनी सर्वाङ्ग-सुन्दर पुस्तकें प्रकाशित करनेमें अद्वितीय है; किन्तु "हिन्दी-विष्णुपुराण" को नख-शिख सुन्दर प्रकाशित करके वह अपनी अद्वितीयताकी पराकाष्ठा दिखानेवाली है। हिन्दी-संसार में हलचल मचानेवाले इस ग्रन्थको देखकर ही इस पुस्तकके रचयिताकी योग्यताका अनुमान किया जा सकेगा। त्रिवेदीजी अठारहों पुराणोंको सरल-सरस भाषामें लिखनेवाले हैं और वर्मनजी इनके प्रकाशनका बीड़ा उठा चुके हैं। यह काम हिन्दीमें एक महत्त्व-पूर्ण धार्मिक साहित्यकी सृष्टि करेगा। शास्त्रीजी की ऐसी कई पुस्तकें एक दो वर्षके अन्दर ही हिन्दी-संसारमें

आनेवाली हैं, जिनकी उपयोगिता और आवश्यकताका अनुभव अभीतक कुछ ही विद्वानोंको हुआ है। ऐसी ही पुस्तकोंमें एक पुस्तक "हिन्दीपुस्तककोष" है, जिसे आप अत्यधिक व्यय और परिश्रम कर निकालनेकी चेष्टा कर रहे हैं। इस "पुस्तककोष"के सम्बन्धमें कुछ लिखनेकी आवश्यकता नहीं ; क्योंकि इसके लिये हिन्दी-संसारमें यथेष्ट आन्दोलन हो चुका है। यह भी कहना नहीं होगा कि, यह ग्रन्थ हिन्दी-संसारका सुहावना शृङ्गार होगा।

सकलनारायण शर्म्मा
(काव्य-साङ्ख्य-व्याकरण-तीर्थ, कलकत्ता
यूनिवर्सिटीके न्याय-व्याकरण-लेक्चरर,
प्रोफेसर संस्कृत कालेज, कलकत्ता,
'शिक्षा'—सम्पादक, विद्याभूषण)

अग्रहायण पूर्णिमा,
संवत् १६८० विक्रमीय।
संस्कृत कालेज, कलकत्ता।

प्रिय पाठक !

यदि आप हिन्दी भाषाके

नये-नये उत्तमोत्तम

सचित्र ग्रन्थ-रत्नोंका पारायण करना चाहते हों तो

शीघ्रही ॥) भेजकर

वीर-चरितावली ग्रन्थमाला

के

स्थायी ग्राहक बन जाइये।

॥) आना अग्रिम प्रवेश फी भेजकर स्थायी ग्राहक बननेवालोंको इस मालामें निकलनेवाले सभी ग्रन्थ पौनी कीमतमें मिला करेंगे।

पता—

निहालचन्द एण्ड कम्पनी

नं० १, नारायणप्रसाद बाबू लेन, कलकत्ता।

"दर्शनपरिचय" पर

दार्शनिक विद्वानोंकी सम्मतियाँ ।



साहित्याचार्य पण्डित रामावतार शर्मा एम० ए० और साहित्याचार्य पण्डित चन्द्रशेखर शास्त्रीकी सम्मिलित सम्मतिः—

"हमारे मित्र प० रामगोविन्द त्रिवेदी "दर्शन-परिचय" लिख कर न केवल हमारे, किन्तु हिन्दी-संसारके तथा दार्शनिक-समाजके भी धन्यवाद-भाजन हुए हैं। इस पुस्तकने हिन्दीमें एक विशेष स्थान पाया है और एक बड़े अभावकी पूर्त्ति की है। पुस्तक अपने ढंगकी अनोखी है, इसमें सन्देह नहीं। इस पुस्तकका "विषय-प्रवेश" नामका अध्याय बड़ा ही उत्तम हुआ है और प्रत्येक दर्शन-जिज्ञासुके मनन करने योग्य हुआ है। आगे प्रत्येक दर्शनका परिचय दिया गया है। भाषा सजीव और बोधगम्य है। देश मातृ-भाषाके द्वारा उच्च शिक्षाका प्रचार करना चाहता है, हम समझते हैं, त्रिवेदीजीका यह उद्योग इस कार्यमें पूरा सहायक होगा।

"दर्शनशास्त्र भारतकी निजी सम्पत्ति है; पर खेदकी बात है कि, हिन्दीमें इस विषयकी पुस्तकें कम—बहुत ही कम हैं। ऐसी दशामें त्रिवेदीजीके इस उद्योगकी हम हृदयसे सराहना करते हैं। हिन्दीमें इस विषयकी जितनी पुस्तकें हमने देखी हैं, उनमें हम इसे सबसे श्रेष्ठ समझते हैं।"

महामहोपाध्याय पण्डित लक्ष्मण शास्त्री द्रविड़की सम्मतिः—

"श्रीयुत पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदीजीके "दर्शन-परिचय" नामक ग्रन्थका, बहुत दूर तक, मैंने श्रवण किया है। जहाँतक इसका मैंने श्रवण किया है, वहाँ तक दर्शनके सब अपेक्षित गुण इसमें विद्यमान हैं। इसलिये मेरी सम्मतिमें यह ग्रन्थ सर्वसाधारण, विशेषतः दर्शनशास्त्रके जिज्ञासु पुरुषोंके लिये, दर्शनशास्त्रके तत्त्वोंको समझनेके लिये, विशेष-रूपसे सहायक होगा। हिन्दी-साहित्यमें इस प्रकारके ग्रन्थका,अभाव था; उसको त्रिवेदीजीने पूरा करनेका प्रयत्न कर हिन्दी-भाषियोंका बड़ा भारी उपकार किया है। हिन्दी भाषाके द्वारा उच्च विचारोंका परिशीलन करनेके लिये जो विद्वान् प्रयत्न कर रहे हैं, उनको पण्डितजीके इस ग्रन्थको अवलोकन करना चाहिये और हिन्दी-परीक्षाओंमें पाठ्य-पुस्तक-रूपसे इसे रखनेकी पूरी चेष्टा करनी चाहिये। दार्शनिक विषयोंको अच्छी तरह समझाने वाली हिन्दीमें ऐसी पुस्तक आज तक मैंने नहीं देखी है।"

कलकत्ता यूनिवर्सिटीके न्याय-व्याकरण-लेकूचरर, काव्य-साङ्ख्य-व्याकरण-तीर्थ श्रीयुत पण्डित सकलनारायण शर्म्माकी सम्मतिः—

"मैं आद्यन्त "दर्शन-परिचय" पढ़ गया। लिखनेका ढंग बड़ा अच्छा है। जो दर्शनोंसे अनभिज्ञ हैं, इससे वह उनका रसिक वन जायगा और जो उनका प्रेमी है, वह इसे पढ़ कर बड़ा आनन्द प्राप्त करेगा—इसमें जरा भी सन्देह नहीं। हिन्दी-साहित्यके भाण्डारको ऐसी एक पुस्तककी बड़ी ही आवश्यकता थी। इस आवश्यकताकी पूर्त्ति कर त्रिवेदीजीने हिन्दी-संसारको चिर कृतज्ञ बना डाला है। आशा है, इसके अन्य खण्ड भी बहुत शीघ्र प्रकाशित किये जायंगे। मैं चाहता हूँ कि, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन इसे शीघ्र अपनी परीक्षाओंमें पाठ्य ग्रन्थ नियत करे।"

साहित्याचार्य, न्याय-काव्य-तीर्थ और काशी-विद्यापीठके दर्शनाध्यापक पण्डित गोपालप्रसाद शास्त्रीकी सम्मतिः—

"पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदीजीकी प्रस्तुत पुस्तक पढ़ कर मैंने पूरी प्रसन्नता प्राप्त की। इसकी विषय-निर्वाचन-शैली बहुत उत्तम हुई है। "विषय-प्रवेश" नामका प्रकरण बड़ा ही मार्मिक और घोर अध्यवसाय तथा अध्ययनका फल है। पाश्चात्य और पौरस्त्य दर्शनोंके सम्बन्धकी अधिकांश ज्ञातव्य बातें इस अंशसे मालूम हो जाती हैं। संसार भरके दर्शनोंका, विशेषतः भारतके दर्शनोंका, भूमिका-रूपमें, इस अंशमें बहुत ही सुन्दर विवेचन किया गया है। दर्शनशास्त्रके विषयमें आज कल जितने तर्क-वितर्क और

वाद-विवाद उठा करते हैं या उठ सकते हैं, उनका, बड़ी खूबीसे, इस अंशमें रुचिकर समालोचन किया गया है। प्रत्येक दर्शन-प्रेमीको यह अंश अच्छी तरह मनन करना चाहिये। "विषय-प्रवेश" के पश्चात् प्रथम खण्ड प्रारम्भ किया गया है, जिसमें साङ्ख्य और योग दर्शनोंका सेतिहास विवरण दिया गया हैं। इन दर्शनोंके प्रत्येक स्थूल-सूक्ष्म तत्त्वका बड़ी बारीकीसे विवरण लिखा गया है। साङ्ख्य और योगके प्रत्येक प्रतिपाद्य पदार्थके सम्बन्धमें जो कुछ इन दोनों दर्शनोंके प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध, प्राप्य-अप्राप्य टीका-ग्रन्थोंमें ज्ञेय बातें लिखी गयी हैं, उन सबका त्रिवेदीजीने विवरण लिखा है। इसके सिवा पदार्थोंके जो आपने तुलनात्मक विवेचन और स्वतन्त्र आलोचन किये हैं, वे बड़े ही सार-गर्भ और ज्ञान-वर्द्धक हैं। भारतीय विद्यार्थियों—विशेषतः संस्कृत और हिन्दीके छात्रों—का यह ग्रन्थ महान् उपकार करेगा। इसकी भाषा भी बड़ी ही सबल-सजीव और मृदुल-मञ्जुल है। मेरी सम्मतिमें हिन्दीमें यह दर्शन-विषयक सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है और इसे बिना विलम्ब हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी पाठ्य पुस्तकोंमें रखना चाहिये। सर्वसाधारण हिन्दी-भाषी जनताको ज्ञानका अनन्त पथ दिखानेवाली इस पुस्तकका मैं घर-घर प्रचार चाहता हूं और इसके अगले खण्ड शीघ्रातिशीघ्र प्रकाशित कर डालनेके लिये लेखक और प्रकाशक महोदयोंसे अनुरोध करता हूं।"

दर्शन-केसरी, काव्य-साङ्ख्य-तीर्थ, पण्डित वाराणसीप्रसाद त्रिवेदी, एम० ए०, एलएल० बी० की सम्मतिः—

"हम मानव-कलेवर-धारी शृङ्ग-पुच्छ-विहीन पशुओंकी बात नहीं कहते, जो जीव मनुष्य-योनिमें जन्म ग्रहण कर वास्तवमें मनुष्य हैं, उनकी बात कहते हैं। ऐसे महापुरुषोंका एक मात्र यही कर्त्तव्य और कार्य होता है कि, ये अपने दुःखोंको सदाके लिये समूल नष्ट करनेकी पूरी चेष्टा करते हैं। संसारमें शायद ऐसा कोई प्राणी नहीं है, जिसे आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक आदि त्रिविध दुःख सन्तप्त न करते हों। चाहे कोई किसी तरहकी धुनमें क्यों न हो; परन्तु वह दुःखसे सदाके लिये सम्पूर्ण उन्मुक्त नहीं हो सकता। बच्चे पैदा होते ही रोने-चिल्लाने लगते हैं। उनका रोना-चिल्लाना प्रत्यक्ष दिखलाता है कि, बच्चा ऐसे दुःखमें है, ऐसी वेदना पा रहा है, जिसके सहनकी शक्ति उसमें लेशमात्र भी नहीं। मतलब यह कि, माँके गर्भमें पड़ते ही जीव दुःखोंकी जञ्जीरसे जकड़ जाता है। फिर ज्यो-ज्यों उसकी चेतना-शक्ति बढ़ती जाती है, त्यों त्यों दुःख जटिल एवं गुरुतर हुए जाते हैं; ज्यों-ज्यों मनुष्य दुःखोंको हटानेकी कोशिश करता है, त्यों-त्यों वह और अधिक दुःखोंमें फँसा जाता है। संसारी मनुष्योंकी यही कैफियत है। प्रति प्राणीको प्रति पल इस बातका अनुभव होता रहता है। आपसे आप उसके जीमें दुःखोंको हटानेकी इच्छा, उनके निवारण

करनेके उपाय जाननेकी अभिलाषा और उन उपायोंको कार्यरूपमें परिणत कर उनसे मुक्त होनेकी चेष्टा उत्पन्न होती है।

"मनुष्यकी ही बात नहीं, भूख-प्यास लगनेपर पशुओंकी भी खाने-पीनेमें प्रवृत्ति होती है। यद्यपि ये सब बातें पशुओंमें भी साधारण हैं; किन्तु मनुष्यमें चैतन्यकी मात्रा पूर्ण विकसित होनेकी वजहसे, उसमें प्रकृतिके ऊपर आधिपत्य रखनेकी शक्ति रहनेके कारण, उसमें इच्छा-शक्ति होनेके हेतु, वह अपने दुःख आपसे आप बढ़ाता जाता है। उसकी कमी कभी पूरी होनेकी नहीं। यही तात्पर्य The Bible (बाइबल) में Adam (ऐडम) के Forbidden Tree (निषिद्ध वृक्ष) के फल खा लेनेका है; यही अर्थ पण्डोराके रहस्यमय Box (बाक्स) खोलनेका है। मनुष्य ज्यों-ज्यों इस विचित्र संसारमें गहरे गोते लगाता है, त्यों-त्यों उसको इसकी गम्भीरता मालूम होती जाती है। थाह कौन पावे? जितना ज्यादा रास्ता चलते हैं, मञ्जिल उतनी ही दूर नजर आती है। "वाह रे इन्द्रजाल! वाह रे नटबाजी!!" कह कर रह जाना पड़ता है! यही दुःख और यही उनको हटानेकी अभिलाषा एवं चेष्टा है, जिसकी एक मात्र वजहसे संसारमें नाना प्रकारके शास्त्रोंके करोड़ों पोथे लिख डाले गये और तरह-तरहके साइन्सोंका दिन-दिन आविष्कार होता चला आ रहा है। इसी धुनमें मनुष्यने आकाश, पाताल एक कर डाला। नाम ले-ले कर कितना गिनाया जायगा? जितनी कृत्रिम, अप्राकृतिक, चीजें हैं, मनुष्य बना-बनाकर पृथ्वी तथा समुद्रको ढक्ख-ढक्ख भरता तथा पाटता आया

हैं—और अब जान पड़ता है, थोड़े दिनों बाद आकाशमें भी तिल रखनेकी जगह खाली न रह जायगी। अपने सुख और उप-योगकी सामग्री तो मनुष्य तैयार करता ही आया है, अपने दुःखोंको एकदम दूर करके निष्कण्ट सुख भोगनेके लिये, दूसरोंको दुःख पहुँचाने क्या, उन्हें नष्ट-विनष्ट कर देनेके लिये भी, उसने उपाय रच डाले हैं। नीयत वही है—चाहे नतीजा जो निकले।

"जब संसारका कोई कार्य ऐसा नहीं, जो दुःख हटानेकी गरजसे न किया जाता हो, तब फिर दर्शन-शास्त्र इस हदके बाहर कैसे जा सकता है? दर्शन-शास्त्रका तो (अनादि) अवतार ही इसी अभिप्रायसे है। हाँ, और शास्त्रों और दर्शन-शास्त्रमें बड़ा अन्तर है। Aleopathy (एलोपैथी) हो, चाहे Cuhne (कूने) का ही System क्यों न हो, मनुष्य किसी रोग-विशेषको पहले तो दूर करनेमें समर्थ होगा कि नहीं, यही सन्देह है; अगर समर्थ हुआ भी, तो तत्क्षण ही उसे दूर कर सकता है, कालान्तरमें वही रोग उसी मनुष्यको पकड़ सकता है—उसमें यह शक्ति नहीं कि, सदाके लिये वह रोगोन्मुक्त हो जाय। किन्तु दर्शन-शास्त्र—खास करके हमारे The six Schools of The Hindu Philosophy (छः हिन्दू दर्शनशास्त्र)—सदाके लिये और एक दम एवं निश्चय दुःखको दूर कर देनेका सच्चा उपाय बताते हैं। और-और शास्त्र किसी-किसी विशेष-विशेष दुःखकी सिर्फ पेड़ोंको ही काट फेंकनेका उपाय बताते हैं—न जड़को देखते, न जानते और न जाननेकी कोशिश ही करते हैं। किन्तु

दुःख-वृक्ष ऐसा है कि, ज्यों-ज्यों उसे काटिये, त्यों-त्यों वह पनपता, अधिक मोटा होता, अधिक डालियां लेता और फूलने-फलने लगता है। रक्त-बीज यही सरकार हैं! परन्तु दर्शन-शास्त्र दुःख-दानवको यह मौका नहीं देता। दर्शन इसकी जड़का पता लगाता है। उसका काम ही दुःखोंको समूल एवं सम्पूर्ण नष्ट करने का है। दुःखकी क्या जड़ है और वह कैसे सदाके लिये समूल नष्ट हो सकता है, इसका उत्तर दर्शन-शास्त्र पृथक् पृथक् देता है, जो इस "दर्शन-परिचय"को पढ़नेसे भली। भाँति मालूम हो जायगा।

"इस दुःखकी इयत्ता कहाँ है? सभी मनुष्य अपने आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक, दुःख भोगते हैं, किन्तु केवल अपने ही दुःखसे मनुष्य दुःखी नहीं होता; "पर-दुख द्रवैं सुसन्त पुनीता।" अर्थात् जो मनुष्य सन्त हैं, यानी वास्तवमें मनुष्य हैं और इसलिये जो पवित्र हैं, जिनका मन पाप करते-करते दुर्वासनाओंके अभ्यास-वश विकृत और कलुषित नहीं हो गया है, वे दूसरोंके दुःखसे भी दुःखी होते हैं। ऐसा ही नहीं, हम तो कहते हैं कि, कलुषितसे कलुषित चित्तका पुरुष भी क्यों न हो, उसे भी दूसरोंके दुःखसे कुछ-कुछ दुःख होता ही है। एक बात और है कि, जब अपनी ही झोंटी आग लगी रहती है, तो दूसरेकी नीयत तो सूझती ही नहीं, उसे देखकर खुद दर्द होना तो दूर रहा। कहनेका तात्पर्य यह है कि, जब तक संसारमें कहीं भी दुःख है, आपको भी अवश्य दुःख होगा, चाहे कोटि उपाय

कीजिये। बड़ी मुश्किल है! यदि आप स्वयं दुःखी नहीं होते तो दुःखमें पड़ा हुआ प्राणी आपको जबरन् सतावेगा।

"यह क्यों न हो? जब एक ही परमात्मा सारे प्रपञ्चको व्याप्त किये हुए हैं, उसी एक समुद्र-वारिके विकार हम सभी फेन-बुद्बुद-वीचि हैं, जब एक ही गद्दीनशीनके प्रतिबिम्ब प्रति दर्पणमें पड़े हुए हैं तब कैसे हो सकता है कि, कहीं दुःख रहे और कहींसे एक दम चला जाय? नतीजा यह निकलता है कि, जैसे आगका धर्म (अर्थात् जिससे आग आग कहला सकती है) जलाना और जलना एवं नदीका धर्म बहना और बहाना है, उसी भाँति मनुष्यका धर्म अपने एवं दूसरोंके दुःख नष्ट करना है। व्यासके अठारहो पुराणोंका सार-मर्म्म है—"परोपकारः पुण्याय, पापाय पर-पीड़नम्।" इसीलिये योगके आठो अङ्गोंके मूलमें महर्षि पतञ्जलिने यमको और यमके मूलमें सार्वभौम अहिंसाको रखा है। अर्वाचीनतम Ethics (नीतिशास्त्र) आदि भी Greatest Good (महत्तम श्रेय) के हीवजन चलते हैं। बहुत ठीक।

"अच्छा, दुःखकी जड़ क्या है? इस प्रश्नपर बहुतसे प्रश्न उठते हैं—मनुष्य क्या है? कहाँसे आया? कहाँ जायगा? सुख क्या है? दुःख क्या है? ये कहाँसे आये? क्यों आये? इत्यादि, इत्यादि। दर्शनशास्त्र सभी (प्रश्नोंका) उत्तर देता है और आत्मा, परमात्मा, जीव, संसार, माया, सृष्टि, सुख, दुःख, पाप, पुण्य, धर्म, अधर्म, ज्ञान, अज्ञान, पद, पदार्थ, प्रमाण, अप्रमाण, स्वर्ग,

नरक इत्यादि सबकी History (इतिहास) गा जाता है, जैसा कि, विस्तृतरूपसे इस "दर्शन-परिचयमें" पाया जायगा।

"मसल है, "कण्टकं कण्टकेनैव शोधयेत्"—कण्टक कण्टकसे ही निकलता है। "विपस्य विपमौपधम्"—विपकी दवा विप ही है। इसी तरह जब दुःखकी उत्पत्ति एवं विकाश, होश या चेतना-शक्ति अथवा बुद्धिके साथ होता है, तब इसका नाश भी ज्ञानसे ही होगा। विपत्ति-मूलक चैतन्य-दीपकके बुझ जानेको ही निर्वाण कहते हैं। जो अविद्यावश दुःख है, वह विद्यासे ही हटेगा। इसीलिये कहा गया है—"ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः"—ज्ञानके विना दुःखसे मुक्ति नहीं। गौर करके देखिये तो मालूम होगा—दुःख मनमें ही पैदा होता है और इसकी जड़ मनके आगे नहीं गयी है। क्या वजह है कि, वही चीज, जो हमें सुख देती है, आपको दुःख दे। दुःख आपके मनने स्वयं उत्पन्न कर लिया है—मान लिया है। आप चाहें तो वह दूर हो जाय। बच्चा परछाईं देखकर डर जाता और चिल्लाने लगता है—परछाईं दुःखकी चीज हर्गिज नहीं है। वही बच्चा साँपके साथ खेलता है, साँप सुख नहीं देगा—काट खायगा। क्यों? मतलब यह है कि, जिस अवस्थाको आप विपत्ति कहते हैं, उसीको दूसरा आदमी सम्पदा मानता है। अगर आप भी उसे सम्पत् समझने लगें तो आपके लिये भी वही है। "मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध-मोक्षयोः"—मनुष्यको दुःखके बन्धनसे बाँधनेवाला और छुड़ानेवाला उसका मन ही है। "Mind: it can make a Hell of Heven and a Heven of Hell."

"असलियतका पता लग जानेपर सुख, दुःखका झमेला जाता रहता है। आत्म-तत्त्वका ज्ञान हो जानेपर फिर कोई सन्देह नहीं रह जाता, कर्मों के: फल, सुख-दुःख, सर्वदा शीर्ण-विशीर्ण हो जाते हैं,—

"भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व-संशयाः
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।"

"इसीलिये वेदोंसे यह अनवरत डाक उठा करती है—"आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः। तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।" (ऐ जीव, यदि तू अमृत हुआ चाहता है, यदि तू सुख-दुःखके झमेलेसे छुटकारा पाया चाहता है, तो देख कि, तू कौन है, वेदों और उपनिषदोंको पढ़, अत्माका खूब मनन कर और उसीका ध्यान कर। यही एक अमर होनेका रास्ता है—दूसरा नहीं।)

"यही आत्म-दर्शन है, जिससे मनुष्य जिधर देखता है, अपनेको ही पाता है—अपनेको ही सब कुछ तुले नज़र आता है—स्वयं-प्रकाश होकर वह माया-बन्धनसे परे हो जाता है।

"सर्व-भूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
सम्पश्यन्नात्मना जीवो स्वाराज्यमधिगच्छति।"(मनु)

"इन्हीं बातोंका विचार तरह-तरहके तर्कों और दलीलोंसे संसारके महर्षियोंने आज तक जैसे-जैसे किया है—जितने दर्शन रचे गये हैं—उन सबका वर्णन इस ग्रन्थरत्न "दर्शन-परिचय" में है और होगा।

"ऐसे अमूल्य ग्रन्थका हिन्दी-संसारमें अब तक एक दम अभाव था। हिन्दुओंके अधःपतनका यह भी एक चिह्न था। किसी समाजकी सभ्यताका पता चिन्ताके सर्वोच्च स्थान उसके दर्शन-शास्त्रसे ही चलता है। हमारे दर्शन-शास्त्र जाहिर करते हैं कि, हिन्दू जाति सबसे प्रथम सभ्यताके चरम शिखर पर पहुँची थी। किन्तु साथ ही हिन्दी-भाषामें—जो राष्ट्रभाषा होनेका गौरव रखती है,—कोई भी दर्शनकी ऐसी व्यापक पुस्तक न रहना हिन्दी-संसारके लिये बड़ी ही लज्जाकी बात थी। श्रीयुत पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी वेदान्तशास्त्रीने, यह अनमोल ग्रन्थ लिखकर हिन्दी-साहित्यकी बड़ी भारी त्रुटिकी पूर्त्ति करनेका बीड़ा उठाया है। इसके लिये अवश्य ही उनका चिर काल तक हिन्दी-संसार ऋणी रहेगा। वास्तवमें यह ग्रन्थ राष्ट्रभाषा हिन्दीका सुहावना शृङ्गार है।

"त्रिवेदीजीको हम शैशव कालसे ही जानते हैं। दर्शन-शास्त्रमें उन्होंने भारतवर्षके चुने हुए पण्डितों एवं महात्माओंकी अन्तेवासितामें जो कई साल तक घोर परिश्रम किया है—बड़े ही आनन्दकी बात है कि, उसका अनुपम परिणाम आज हम लोगोंको मिल रहा है। आपकी लेखन-शैली भी स्वभावतः बड़ी ही सरल मधुर, स्फुट और प्रसादगुण-सम्पन्न है। आशा है, इस ग्रन्थसे हिन्दी जनताका असीम लाभ होगा और हिन्दीसाहित्य-सम्मेलन इसे बहुत शीघ्र अपनी पाठ्य पुस्तक नियत कर लेगा, जिससे दर्शन-शास्त्रके अनूठे तत्वोंमें हिन्दी-परीक्षार्थियोंको आवश्यक ज्ञान-परिवर्द्धन हो सके।"

ओं तत्सत्।

विषयप्रवेश।

(दर्शनशास्त्रका शब्दार्थ, दर्शन और फिलासफी, दर्शन शब्दका व्यवहार, क्या दर्शन कठिन और नीरस है ? दार्शनिक विचारोंकी उत्पत्ति कबसे हुई ? दर्शनशास्त्रका महत्त्व, दर्शनशास्त्रकी रचना-प्रणाली, विविध दर्शन, दार्शनिक ग्रन्थोंका अनुवाद, हिन्दू-दर्शन पर यूरोपीयोंका मत, दर्शनोंका समन्वय, हमारे ग्रन्थकी सङ्कलन-शैली ।)

दर्शन शब्दके अनेक अर्थ हैं । उनमें नयन, दर्पण, आलोकन, ईक्षण, बुद्धि, शास्त्र, स्वप्न, वर्ण आदि विशेष प्रचलित हैं ।

दर्शनशास्त्रका शब्दार्थ

जिस 'दृश्' धातुसे दर्शन शब्द बना है, उसका अर्थ 'देखना' है । इसी अर्थको ध्यानमें रखकर नैयायिकोंने निश्चय किया है कि, 'किसी पदार्थको देखनेका

जो साधन है, वही दर्शन है।' इसी लिये ये लोग उस साधनका नाम दर्शनेन्द्रिय या नेत्र रखते हैं। इसी अर्थके समर्थक बंगालके प्रख्यात पण्डित रघुनाथ शिरोमणि भट्टाचार्य भी हैं। बहुत लोगोंके विचारमें, जिस शास्त्रमें, प्रबल तर्कों और अखण्डनीय युक्तियों द्वारा अपना प्रतिपाद्य या वक्तव्य विषय प्रमाणित तथा समर्थित किया गया हो, उसीका नाम दर्शन या दर्शन-शास्त्र है। इधर वेदोंमें, कई जगह, आत्मसाक्षात्कारके अर्थमें 'दृश्' धातुका प्रयोग आया है; इसलिये जिससे आत्मतत्त्वका प्रत्यक्ष होता है, बहुत लोग उसे ही दर्शन कहते हैं। कुछ अनुभवी विद्वानोंका कहना है कि, 'मनुष्यजातिकी असीम चिन्ताशक्ति और अपार ज्ञानका कमनीय केन्द्र दर्शनशास्त्र ही है; इस-लिये दर्शनशास्त्रका अर्थ ज्ञानशास्त्र और दर्शन शब्दका अर्थ ज्ञान है।' किसी-किसीके मतमें प्रत्येक विषयकी परीक्षाका जो स्थान है, वही दर्शन या दर्शनशास्त्र है। इसी तरह और और विद्वानोंने भी दर्शनशास्त्रके अर्थके लिये अपनी अपनी अनूठी अटकलें लगायी हैं। किसी विद्वान्के मतमें दर्शन-शास्त्र परोक्षविद्या, किसीके विचारमें मननशास्त्र, किसीकी दृष्टिमें विचारशास्त्र, किसीके मतमें कल्पनाशास्त्र, किसीके खयालमें गुरुमारविद्या, किसीकी बुद्धिमें कर्कशशास्त्र और किसीके ध्यानमें असम्भवज्ञान-कला है।

अस्तु। अब हमारी भी सुनिये। हमने प्रत्येक अर्थ और हर एक दर्शनशास्त्रके विषय पर विचार कर निश्चय किया है कि,

जड़, चेतनके प्रत्येक सूक्ष्म पर्दे या तत्त्व (जहां स्थूल इन्द्रियाँ नहीं पहुँच सकतीं) का विश्लेषण कर जिससे उसका भीतरी हाल बताया जा सकता है, उसीका नाम दर्शन है। यों तो तत्त्वों और पर्दों या स्तरोंकी गिनती नहीं है; परन्तु उनमें प्रधान चार हैं,—ईश्वर, आत्मा, विश्व और परलोक। इसलिये विशेषत: इन चारों तत्त्वोंके गूढ़ रहस्यका जिससे ज्ञान हो, उसे दर्शन कहा जाता है।

शास्त्र शब्दके तीन अर्थ हैं,—निर्देश, अनुशासन और विद्या। इन अर्थोंसे पता लगता है कि, परमार्थ-निर्देश, ज्ञानानुशासन, अध्यात्म-विद्या या तत्त्व-विद्याका नाम दर्शन-शास्त्र है। इन्हीं अर्थोंमें दर्शनशास्त्र रूढ़ भी है। पूरा विचार करने पर जान पड़ेगा कि, दर्शन और शास्त्र,—इन दोनों शब्दोंका अर्थ तत्त्व-विद्या है; परन्तु जैसे लोग रामचन्द्र और कृष्णचन्द्र आदि शब्दोंका पूरा अर्थ 'राम' और 'कृष्ण' शब्दोंसे ही समझ जाते हैं, उसी तरह दर्शनशास्त्रका मतलब केवल दर्शन शब्दसे भी लोग समझ लेते हैं। इस तरह आज कल दर्शन शब्दका ही अर्थ तत्त्वविद्या हो गया है या यों समझिये कि, दर्शनशास्त्रका छोटा नाम दर्शन पड़ गया है। हमने भी इसी विचारका अनुसरण कर "दर्शनशास्त्र-परिचय" की जगह इस पुस्तकका नाम "दर्शन-परिचय" ही रखा है। इस पुस्तकमें प्रायः सभी जगह दर्शनशास्त्रके अर्थमें ही दर्शन शब्दका प्रयोग किया गया है।

जैसे हमारे यहाँ गोतम, कपिल, व्यास आदि दर्शनशास्त्र के प्रवर्त्तक या रचयिता हो गये हैं, वैसे ही इङ्गलैण्डमें बेकन, जान स्टुअर्ट मिल, हर्वर्ट स्पेन्सर, हमिल्टन, ह्यूम, वर्कले, ग्रीसमें साक्रेटिस, अरिस्टाटल, प्लेटो, पिथागोरस, जर्मनीमें काण्ट, सेजल, शोपेनहार और फ्रान्समें कामट् आदि फिलासफीके प्रणेता हो गये हैं। बहुत लोगोंका विचार है कि, पूर्वी और पश्चिमी विद्वानोंके तर्क, विषय-निरूपण और चिन्ताशक्ति आदि एकसे ही हैं; इसलिये दर्शन और फिलासफी एक ही वस्तु हैं। परन्तु कितने ही प्रसिद्ध विद्वान् ऊपरकी बातके कायल नहीं हैं। वे कहते हैं, "हमारे दर्शनशास्त्रका उद्देश है, उस निर्मल निष्कलङ्क ज्ञानकी प्राप्ति, जिससे आनन्दमय मुक्ति, मोक्ष, निर्वाण, निःश्रेयस या कैवल्य मिलता है, जिससे अनन्त कालका, जन्म-जरा-मृत्युका, बन्धन टूटता है, जिससे सदाके लिये दारुण दुःख विनष्ट होता है और जिससे आत्माको चिर-शान्ति मिलती है।" इधर यूरोपीय फिलासफीका और ही मतलब है। उसमें आत्मज्ञानके सिवा प्रकृतिविज्ञान है, सदाचारनीति है, समाज-नीति है,—और क्या अर्थनीति भी फिलासफीका एक उद्देश्य है! हमारा दर्शनशास्त्र कहता है,—इस संसारमें पूरा सुख कहीं नहीं है। मनुष्य दिन-रात सुखके लिये कर्म-अकर्म करता रहता है; परन्तु उसके जीवन-पथमें प्रकृति या माया ऐसे विघ्न रखती जाती है कि, उसे पूरे सुखका अनुभव ही

दर्शन और फिलासफी

नहीं होता। प्रकृतिके सङ्ग मनुष्यका यह संग्राम, सदासे, चला आता है। इस दुर्जेय समरमें उसी मनुष्यके गले जयमाल पड़ता है, जिसके पास ज्ञानरूप विकट ब्रह्मास्त्र है। इसी ब्रह्मास्त्रसे जब मनुष्य प्रकृति या मायाका बन्धन काट फेंकता है, तब वह चिदानन्दलहरीमें गोते लगाता है। दूसरी ओर पाश्चात्य फिलासफीका कहना है,—प्रकृतिके ही सिर सवार हो कर उसे जीत लेना चाहिये। मतलब यह कि, जब मनुष्य प्रकृतिके तत्त्वोंको खोज-ढूँढ़ कर अपने जीवनमें उनका उपयोग करने लग जाता है, तभी वह सुख-शान्ति की सुशीतल शय्यापर शयन करता है। इसी उद्देशके प्रचारसे आज यूरोपमें इहलोकके सुखके लिये, वायुयान, व्योमयान, तार, जहाज और वैद्युतिक आलोक आदिका आविष्कार हुआ है एवं प्रतिदिन नवाभिनव सामाजिक सुखके उपायोंका आविर्भाव किया जा रहा है।

इन ऊपरकी बातों पर विचार करनेसे स्पष्ट मालूम होता है कि, दर्शन और फिलासफीमें बहुत फर्क है। बाहरी जगत्की उन्नति कर पूरे आनन्दकी प्राप्तिकी अभिलाषा, प्राच्य दर्शनमें, मृगमरीचिका है और संसारको दुःखमय बताकर केवल आत्मज्ञानके लिये ही कष्ट उठाना पाश्चात्य फिलासफीमें निष्प्रयोजन है। एक बातमें यही समझ सकते हैं कि, पाश्चात्य दर्शनमें जड़वादका भी समावेश है और प्राच्य दर्शनमें विशुद्ध चेतनवाद है। इसलिये दर्शन और फिलासफीमें यथेष्ट विभिन्नता है। इसी विचारके हम भी पक्षपाती हैं।

दर्शनशास्त्रको कठिन बताते हैं, उनसे भी हमारी कोई बहस नहीं है। हमारे विश्वासके अनुसार जो पुरुषार्थी हैं, जो अपने परिश्रमके आगे पहाड़को भी धूलिमें मल मिलानेकी इच्छा रखते हैं, जो जीवनके घोर संग्रामको देखकर महाबली अर्जुनकी तरह फूल उठते हैं, * जिनके ऊपर सत्यके अन्वेषण और आत्मज्ञानकी धुन सवार है, उनके लिये दर्शनशास्त्र अत्यन्त सरल-सुगम, अत्यन्त सरस-सुन्दर और अत्यन्त मृदुल-मञ्जुल है। आगेकी लाइनें पढ़ने पर हमारी यह उक्ति ध्यानमें बैठ जायगी।

जिस लेख या काव्यमें कोई चमत्कार और विस्मय हो, जिसके अनुशीलनसे सुखानुभव या आनन्द उत्पन्न हो, † उसे अनुभवी विद्वानोंने सरस और जिसमें इन सबका अभाव हो, उसे नीरस कहा है। यहां विचारणीय बात यह है कि, दर्शनमें चमत्कार है या नहीं या उसके अध्ययनसे सुखानुभव होता है या नहीं। इसका उत्तर प्रत्येक अनुभवी दार्शनिक दे सकता है। हमारे खयालसे तो, दर्शनशास्त्रके विचरानुसार जो [illegible] तत्त्वके श्रवण, मनन और निदिध्यासनमें लग जाते हैं, वे

* अतीव समरं दृष्ट्वा हर्षो यस्योपजायते। —महाभारत।

† रसे सारश्चमत्कारः सर्वत्राप्यनुभूयते।

चमत्कारश्चित्तविस्ताररूपो विस्मयापरपर्य्यायः।

—साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद

सुखविशेषपर्य्यवसितचमत्कारं प्रत्यपि।

सच्चे आह्लाद-उल्लास और आनन्द-विलासके भागी होते हैं। कितनी ही वार तो यह भी सुननेमें आया है कि, अमुक सज्जन अद्वैतवादका अध्ययन करते समय आनन्दमें अधीर हो उठे और अद्वैतवादका मनन करते समय अमुक व्यक्तिके वदनमें पुलकावली छा गयी! कितने ही दर्शनका अध्ययन करते हुए, आनन्दकी अधिकताके कारण, पागल हो उठते और कितने ही उसकी ज्ञान-गङ्गामें वह जाते हैं! निस्सार संसारमें दार्शनिकोंके मुखसे ही आनन्दरस टपकता है और इन्हींके शरीरसे ज्ञानतेज क्षरित-विकीर्ण होता है। ये ही विमल ज्ञानाग्निसे जन्म-जराके जटिल जालको जलाकर खाक कर देते और ये ही भगवान्‌के नित्यानन्द-रसका मधुर पान करते हैं। भला दो पलोंके लिये अन्य शास्त्रों-की श्रवण-मधुर शब्दावली और उपन्यासोंकी ओच्छी-हल्की कल्पनाएँ, ज्ञानदानके साथ ही साथ, कभी ऐसा स्थायी आनन्दरस प्रदान कर सकती हैं?

साहित्यदर्पणके * अनुसार जिस रसका स्थायी भाव चमत्कार है, उसका नाम अद्‌भुत रस है। दर्शनशास्त्रमें पद-पद पर जैसा चमत्कार है, वह विद्वानोंसे छिपा नहीं है। अपने पक्षके मण्डन और दूसरे पक्षके खण्डनमें दर्शनोंने जैसा

---

* अद्‌भुतो विस्मयस्थायिभावो गन्धर्वदैवतः।
तच्चमत्कारसारत्वे सर्वत्राप्यद्‌भुतो रसः।
साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद।

कविसम्राट् कालिदासकी यह उक्ति यहाँ हृदय-पटल पर लिख लेनेकी है कि,—

"आशङ्कसे यदग्निं तदिदं स्पर्शक्षमं रत्नम्"। मतलव यह कि, जिससे, तू आग समझ कर, डरता है, वह हाथमें लेने लायक रत्न है।

दार्शनिक विचारोंकी उत्पत्ति कबसे हुई ?

कुछ लोगोंका विचार है कि, जिस समय मनुष्य-समाजमें पूरी शिक्षा और सभ्यताका प्रचार हो जाता है, उसी समय दर्शनशास्त्रकी रचनाकी ओर दार्शनिक सिद्धान्तों की कल्पना उठ खड़ी होती है। ये लोग, इसी दृष्टिसे, यह भी कहते हैं कि, पहले पहल, (यानी वैदिक समयमें) कर्मकाण्डके अनुयायी ही विशेष थे और वे लोग दर्शनके ऊँचे विचारोंसे अनभिज्ञ थे। इसके वाद, जब कि मनुष्योंमें शिक्षाकी वृद्धि होने लगी, तब लोगोंमें ऊँची कल्पनाएँ करनेका शौक और शक्ति वढ़ने लगी। इसी समय जो उनमें अतीन्द्रिय विचार उठा, उसकी झलक उपनिषदों में पायी जाती है। धीरे धीरे यह विचार-वेलि पल्लवित होने लगी। अन्तको कणाद, कपिल, बुद्ध, शङ्कर आदिने, अभी अभी, कर्मकाण्डका खण्डन कर ज्ञानकाण्डका प्रचार किया है।

जरा ध्यान देने पर इनकी दलीलें वेजड़ और वेजोड़, दोनों मालूम होंगी। दर्शनशास्त्रके सर्वश्रेष्ठ विचारणीय विषय ब्रह्मतत्त्वकी ओर ही आप पहले दृष्टि डालिये। ब्रह्मके ऊपर जो सबसे वड़ा विचार है, उसे अद्वैतवाद कहते हैं। अद्वैत-

वादसे बढ़ कर शायद सूक्ष्म और कल्पनाका विचार दूसरा नहीं हो सकता। परन्तु थोड़ी हो खोज-ढूँढ़ करने पर आपको अद्वैत-वादकी बारीकियाँ दिखानेवाले वेदोंमें ढेरके ढेर मन्त्र मिलेंगे। उन वेद-मन्त्रोंकी सुन्दर विचार-सरणिके आगे,कहीं कहीं, खण्डन-खण्डखाद्य, सिद्धान्तलेश और अद्वैतसिद्धिकी उक्तियाँ भी फीकी मालूम पड़ती हैं। जो महाशय आधुनिक विचारोंके पक्षपाती हैं, उनसे हमारी विनय है कि, वे कृपया नीचे लिखी ऋचाएँ या मन्त्र एक बार अवश्य देखनेका कष्ट उठावें।

ऋग्वेद :—१० मण्डल,१७८ सूक्त, १ ऋचा ; १० म०, ५६सू०, ६ ऋ० ; १० म०, १७८ सू०, २ऋ० ; १० म०, ५०सू०, ६ ऋ० ; ६ म०, ४७ सू०, १८ ऋ० ; १० म०, ८१ सू०, १ ऋ० ; १० म०, ८१ सू०, २ऋ० ; १० म०, ८१ सू०, ६५ ऋ० ; १० म०, ८२ सू०, २, ४, ५, ६, ७ ऋ० ; १० म०, ११४ सू०, १, २, ३, ४, ५, ८ ऋ० ; १० म०, १२० सू०, १ ऋ० ; १० म०, १२१सू०, १, २, ३, ४, ऋ० ; १० म०, १२५ सू०, १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ऋ० ; १० म०, १२६ सू०, १, २, ३, ४, ६, ७ ऋ० ; १० म०, १६५ सू०, ४, ६, ६ ऋ०। इसी तरह इसी वेद की १।३।४, १।५०।४, १।४२।१४, १।१२।३, १।१०१।४, ५, १।११०।२, ३।१६।४, ३।२०।४, ३।२२।२, ३।२५।६, ३।६२।१०, ४।२८।६, ६।१४।३, ६।८।३, ६।१०।४, ५, ६।५०।१४, १०।११४।४, ६।११४।१०, ६, ११ आदि ऋचाएँ देखिये।

वाजसनेयसंहिता या शुक्लयजुर्वेद :—५।२४, २५, ३०,

शिक्षा-सभ्यताका सुखद साम्राज्य रहता है, उस समय समाजके प्रत्येक व्यक्तिका मन विमल, चित्त प्राञ्जल और हृदय सबल रहता है। ठीक उसी समय दर्शनशास्त्रके ऊँचे और गहन सिद्धान्तोंका समाजमें प्रचुर और पुष्ट प्रचार रहता है। इसी विवेककी ओर लक्ष्य रखकर निष्ठावान् हिन्दू अत्यन्त प्राचीन कालके भारतमें दार्शनिक सिद्धान्तोंका अधिक प्रसार और अनेक जीवन्मुक्त दार्शनिक महर्षियोंका अवतरण होना मानते हैं। इनके खयालसे पूर्व भारतमें ही पूर्ण शिक्षा, स्वाधीनता और सभ्यताका विस्तार था तथा पहलेके पुरुष ही दार्शनिक सिद्धान्तोंका विशेष उपयोग कर अपना मनुष्य-जन्म सार्थक किया करते थे।

इनके इतनी दूरके कथनका, एक ही वाक्यमें, सारमर्म, यों समझ लीजिये कि, 'चूँकि, ज्ञानभाण्डार और नित्य वेदोंमें ज्ञानमय दार्शनिक सिद्धान्तोंका विस्तृत विवरण मिलता है; इस लिये दर्शन भी वेदोंकी ही तरह नित्य है और पहलेके शिक्षा-स्वाच्छन्द्यकी विमल वायुमें उसका विशेष विकाश हुआ था।' प्रायः ऐसा ही खयाल हमारा भी है।

हमारे विचारसे तो आजकल जितने आस्तिक-नास्तिक दार्शनिक मतवाद प्रचलित हैं, उन सबका अङ्कुर वेदोंमें है और वे सब इतने समयसे प्रचलित हैं, जिनका ठीक-ठीक अनुमान, कमसे कम, हम तो, नहीं कर सकते। सरसरी निगाहसे देखने पर भी मालूम हो जाता है कि, "असदेव सौम्य ! इदमग्र आसीत्"

के आधार पर ही बौद्धदर्शनका शून्यवाद चला है। चार्वाक-दर्शनके बृहस्पतिसूत्र और शाक्तदर्शनके अगस्त्यसूत्र भी अत्यन्त प्राचीन हैं।

दर्शनशास्त्रका महत्त्व

अनुभवी विद्वानों और बड़े लोगोंका कहना है कि, जैसे किसी तालाबका जल, बहुत दिनोंतक रुके रहनेसे, अपनी निर्मलता खोकर सड़ जाता है, वैसे ही मनुष्यका मस्तिष्क ससीम या परिमित विचारोंके कारण, निकम्मा हो जाता है और उसे चारों ओर दुःख ही दुःख दीखने लगता है। इस अवस्थासे, इस अशान्तिसे, बच निकलनेके लिये सबसे बड़ा साधन दर्शन है।

जबतक मनुष्य अपनी अज्ञानावस्थामें रहता है, तब तक वह अपने विषयानन्दको ही ब्रह्मानन्द समझता है, अपने अनुचित विहार-विलासको ही स्वर्ग-सुखसे बढ़कर मानता है, अपनी उदरपूर्त्तिको ही सबसे बड़ा यज्ञ जानता है, अपने घर-दरवाजेको ही चतुर्दश भुवन मानता है, अपनी तुच्छताको ही ज्ञान-सरिता समझता है, अपने स्वार्थको ही परमार्थ जानता है और अपनी करुण-दुःखमय तथा व्याधि-मन्दिर देहको ही आनन्दमय आत्मा मानता है। ऐसे आदमीके अज्ञान-पङ्कमें मनुष्य-त्वकी अनन्त शक्तियाँ गल जाती हैं। यही मनुष्य अपनी आत्माको दुःखी, दीन, हीन और दरिद्र मानता तथा असह्य यातनाएँ भोगकर अपना कमल-कोमल जीवन, अगाध दुःख-महोदधिमें, सदाके लिये, ले डूबता है। इसी मनुष्यके उद्धार-

सुधारके लिये दर्शनशास्त्रकी सृष्टि हुई है। ऐसे व्यक्तिकी क्षुद्रता, हीनता और जड़ता विनष्ट कर उसके अन्दर दर्शन व्यापकता, महत्ता और चेतनता भर देता है—उसका अज्ञानान्धकार दूर कर ज्ञानालोकसे उसका अन्तस्तल जगमगा देता हैं, जिससे उसका अन्तःकरण आनन्द और शान्तिकी विमल ज्योत्स्नासे सदा प्रफुल्लित रहता है।

साधारणतः मनुष्य देहको ही आत्मा मानता है और शास्त्र कहता है कि, आत्मा देह नहीं है—वह देहसे भिन्न दुःख-दारिद्र्यहीन पदार्थ है। परन्तु मनुष्यका स्वभाव ही ऐसा होता है कि, वह केवल उपदेशसे सन्तुष्ट नहीं होता। वह जब कि, प्रत्यक्ष देखता है कि, देह ही मोटी-पतली होती है और वही सब काम-धाम भी करती है, तब भला वह कैसे एक अदृष्ट पदार्थको उसका कर्त्ता-धर्त्ता मानने लगे? अब यही देखना है कि, ऐसे जीवको दर्शनशास्त्र कैसे रास्ते पर ले आता है।

ऐसी जगहपर और और शास्त्र उपदेश देकर ही रह जाते हैं; परन्तु दर्शन कहता है कि, देह जड़ पदार्थ है और संसारमें देखा जाता है कि, किसी जड़ पदार्थके अन्दर सोचने-विचारने-की शक्ति नहीं है; इस लिये सोचनेवाला, देहसे भिन्न एक अन्य पदार्थ है, जिसका नाम आत्मा है। यदि यह कहा जाय कि, देह एक विलक्षण जड़ है, जिसके अन्दर सोचनेकी भी स्वाभाविक शक्ति है, तो इसका उत्तर दर्शनशास्त्र देता है कि, यदि देहमें स्मरणशक्ति है, तो मुर्देमें भी वह रहनी चाहिये। इस

युक्तिसे परास्त होकर दूसरा जड़वादी कहता है कि, मैंने माना कि, देह आत्मा नहीं; परन्तु उसके परमाणु आत्मा हैं और विभिन्न परमाणु विभिन्न चेतनस्वरूप होकर सब काम कर लेते हैं। इस युक्तिका खूब मुँहतोड़ उत्तर दर्शनने दिया है। वह कहता है, यदि परमाणु ही आत्मा या चेतन हैं, तो लड़कपनके कियेका यौवनमें स्मरण नहीं रहना चाहिये; क्योंकि सात ही वर्षों पर शरीरके सब परमाणु बदल जाते हैं और इधर देखा जाता है कि, बाल्यकालकी अनुभूत वस्तुका यौवन-कालमें भी पूरा ज्ञान रहता है। इस लिये परमाणु आत्मा नहीं हो सकते। यदि यह कहा जाय कि, कारणरूप बचपनके संस्कारसे कार्यरूप यौवनके संस्कारका ज्ञान होता है, तो दर्शन कहता है कि, फिर मातृरूप कारणका ज्ञान कार्यरूप बच्चेमें क्यों नहीं होता?

दूसरी बात यह है कि, अनेक-परमाणुरूप चेतन एक ही देहमें नहीं रह सकते; क्योंकि सभी चेतनोंमें सदा-सर्वदा ऐकमत्य या एकसी बुद्धि नहीं रह सकती। यदि कहीं पैर वाला चेतन चलना चाहे और मस्तिष्क वाला चेतन खड़ा होना, तो देहके हकमें अनर्थ हो जाय! फिर भी अनेक चेतनोंके रहने पर, यदि कहीं हाथ कट जाय तो, उसका ज्ञान पीछे नहीं रह सकता; क्योंकि कटे हाथकी चेतना चली ही गयी है। इस तरह हजारों तर्कों का खण्डन कर दर्शन सिद्धान्त करता है कि, आत्मा देह, परमाणु और इन्द्रिय आदि जड़ पदार्थ नहीं है, वह शुद्ध-बुद्ध और स्मरण-अनुभव-शील चेतन है।

दर्शन परिचय

जैसे भ्रान्त और विपथगामी पुत्रको उपदेश देकर हुआ पिता डण्डों पीटकर उसे सत्पथपर ले आता है, उसी तरह दर्शनशास्त्र कुतार्किकों और अभिमानियोंको प्रबल युक्तियों द्वारा पछाड़कर सन्मार्ग पर ला देता और तरह वह मनुष्य-समाज तथा परमात्माकी सृष्टिका बहुत उपकार करता है। इसीसे लोग दर्शनशास्त्रको 'शास्त्र- कहते और उसकी महनीय महिमाके ऊपर मन्त्र जपते हैं।

युक्तियोंकी तो दर्शनशास्त्र खान ही है। एक लीजिये। लोग कहते हैं कि, सबसे पक्का प्रमाण प्रत्यक्ष परन्तु दर्शनकी एक युक्ति कहती है कि, नहीं; पाण्डुरोग वाला व्यक्ति संसारकी सभी चीजोंको पीली और चश्मा वाला हरी देखता है। परन्तु वास्तवमें संसारमें चीजें न तो पीली हैं और न हरी ही। इसलिये प्रत्यक्ष विश्वासहीन तथा सदोष है। अब अनुमानको लीजिये। योंका निकलना देखकर या मयूरकी बोली सुनकर जो होनेका अन्दाजा किया जाता है, उसे अनुमान प्रमाण जाता है। इसपर दर्शनका तर्क कहता है कि,अनुमान नहीं; क्योंकि मनुष्यके तङ्ग करनेपर यदि यों ही चीटियोंका निकल जाय और यदि कोई मनुष्य ही मयूरकीसी बोली बोल दे तो वृष्टिका अनुमान कर लेना पड़ेगा! इस लिये प्रत्यक्ष और अनुमान, दोनों प्रमाण दुष्ट और आप्तवचन या शब्दप्रमाण निर्दोष तथा विश्वसनीय है।

पहले यह कह देना आवश्यक है कि, दर्शनोंके नाम, उनकी रचना-प्रणाली, उनके अनुयायी सम्प्रदायों और उनके प्रणेताओंके नामोंके अनुसार—तीनों रीतियोंके अनुकूल रखे गये हैं। तीनों रीतियोंके उदाहरण सुनिये। सब दर्शनोंसे विलक्षण एक 'विशेष' पदार्थ की आलोचना करनेके कारण महर्षि कणादके दर्शनका नाम 'वैशेषिकदर्शन' है। 'न्याय' पदार्थ की विशेष आलोचना करनेके कारण महर्षि गोतम या गौतमके दर्शनका नाम 'न्यायदर्शन' है। संख्या अर्थात् सम्यक् ज्ञान या पचीस सङ्ख्या वाले तत्वोंका उपदेश देनेके कारण महर्षि कपिलके दर्शनका नाम 'साङ्ख्यदर्शन' रखा गया है। योगका उपदेश देनेसे महर्षि पतञ्जलिके दर्शनका नाम 'योगदर्शन' है। साङ्ख्य की तरह इसमें भी ज्ञान और तत्वोंका उपदेश है; इसीलिये इन दोनोंका एक नाम 'साङ्ख्यप्रवचन' भी है। वेदोंके अन्तर्गत कर्मकाण्डके मन्त्रोंका निर्णय करनेके कारण महर्षि जैमिनिके दर्शनका नाम 'कर्ममीमांसा' है। वेदके विशेषतः ज्ञानकाण्ड-परक वचनोंका निर्णय करनेके कारण महर्षि व्यासके दर्शनका नाम 'ब्रह्ममीमांसा' है। इसके सिवा इन दर्शनोंके नाम, प्रणेताओंके नामानुसार, कणाददर्शन, गौतमदर्शन, कपिलदर्शन, पतञ्जलिदर्शन, जैमिनिदर्शन और व्यासदर्शन भी हैं। इन दर्शनोंके और और भी अनेक नाम पड़ गये हैं, जिनका उल्लेख आगे चल कर, प्रसङ्गानुसार, किया जायगा।

दर्शनशास्त्रकी रचना-प्रणाली

इसी तरह बौद्धदर्शन, आर्हतदर्शन या जैनदर्शन, शैव-दर्शन आदि अपने अपने सम्प्रदायोंके नामानुसार प्रख्यात हैं और चार्वाक-दर्शन, पाणिनि-दर्शन, रामानुज-दर्शन प्रभृति अपने अपने रचयिताओंके नामोंसे प्रसिद्ध हैं। कुछ दार्शनिकोंकी राय है कि, अन्यान्य दर्शनोंकी अपेक्षा वैशेषिक और न्याय दर्शनोंकी रचना-प्रणाली अच्छी है। इनके भाषा-लालित्य, क्रमबद्ध विषयोंका निरूपण और प्रासङ्गिक प्रकरणोंका रुचिकर समावेश,—सभी प्रशंसा-योग्य हैं। इनमें सबसे पहले प्रतिपाद्य विषयोंका नामोल्लेख किया गया है। इसके अनन्तर उनके, तुले हुए शब्दोंमें, लक्षण लिखे गये हैं। अन्तमें सब विषयोंकी परीक्षा की गयी है। परीक्षा-प्रकरणमें ही प्रतिवादियोंके मतोंका खण्डन किया गया है। इस तरह परीक्षाकी कसौटी पर, निर्दोष उतर जाने पर, कोई भी पदार्थ युक्ति-युक्त माना गया है। इस रीतिसे, बड़ी ही सुगमतासे, इन दर्शनोंके प्रमेय या प्रतिपाद्य विषय मनमें बैठ जाते हैं। इनके सिवा प्रायः अन्य सभी दर्शनोंकी विषय-सन्निवेश-शैली दुरूह और जटिल है। उनमें न तो व्यवस्थित नामोल्लेख है, न लक्षण और न परीक्षा ही! उनमें प्रतिपाद्य तत्त्वों-की बढ़िया शृङ्खला नहीं है। इस पर कुछ विद्वानोंकी राय है कि, वैशेषिक और न्याय दर्शन दर्शनशास्त्रमें पहले पहल प्रवेश करने वाले प्रथमाधिकारियोंके लिये ही हैं। इसलिये उनमें ऐसी शृङ्खला का अवलम्बन किया गया है। इधर साङ्ख्य, योग, मीमांसा, ब्रह्ममीमांसा या वेदान्त आदि दर्शन परिमार्जित बुद्धि

वाले ऊँचे दर्जेके विद्वानोंके लिये ही हैं; इसलिये उनमें सरल वर्णन-व्यवस्थाका आश्रय नहीं लिया गया है। जो हो, परन्तु इसमें तो सन्देह ही नहीं कि, वैशेषिक और न्याय दर्शनोंको छोड़ कर और दर्शनोंके विषय-निरूपणमें परिमार्जित बुद्धिवालोंका ही प्रवेश हो सकता है।

विस्तृत और दुर्बोध विषयोंको, थोड़ेमें ही, साररूपसे, समझा देनेके लिये दार्शनिकोंने अपने दर्शनोंको सूत्ररूपमें बनाया है। यों ही दर्शनशास्त्रके विषय सूक्ष्म और गहन हैं; दूसरे संक्षेप रीतिसे, सूक्ष्मरूपमें, उनका वर्णन होनेके कारण उनके समझनेमें भारी दिक्कत होती हैं। कहीं कहीं तो सूत्रोंके अर्थ इतने अव्यक्त या अस्फुट हैं कि, व्याख्याके विना उनका निश्चित अर्थ कर लेना पहाड़ उठा लेनेसे भी भारी कार्य है। इसीसे प्रायः सभी दर्शनोंपर व्याख्या-ग्रन्थ हैं।

व्याख्याके इतने कार्य हैं,—(१) सूत्रोंके शब्दोंको अलग-अलग करना, (२) प्रत्येक शब्दका अलग-अलग अर्थ बताना, (३) विग्रह या शब्दोंके समास-वाक्योंको दिखाना, (४) वाक्यार्थोंका परस्पर सम्बन्ध दिखाना और (५) सूत्रोंके आक्षेपोंका समाधान करना। * वृत्ति, टीका, टिप्पनी, कारिका आदि व्याख्या या व्याख्यानके ग्रन्थोंके भेद भर हैं। परन्तु सूत्रोंके भाष्यों और वार्त्तिकोंमें इनसे ज्यादा मूल्यवान् बातें

* पदच्छेदः पदार्थोक्तिर्विग्रहो वाक्ययोजना। आक्षेपस्य समाधानं व्याख्यानं पञ्चलक्षणम्।

और स्वतन्त्रता रहती है। भाष्योंमें सूत्रोंके अनुसार सोदाहरण और सप्रमाण अर्थोंका वर्णन और अपने उस वर्णनका भी विवरण रहता है। * इसीलिये भाष्योंकी रचना-शैली वड़ी प्रगाढ़ होती है। आज कल न्यायसूत्रों पर वात्स्यायनभाष्य, योगसूत्रों पर व्यासभाष्य, ब्रह्मसूत्रों पर शारीरकभाष्य और पाणिनि-सूत्रों पर पतञ्जलि-भाष्य सर्वाङ्ग-सुन्दर भाष्य प्रचलित हैं। भाष्यों-से भी विशेष स्वतन्त्रता वार्त्तिकोंमें रहती हैं। वार्त्तिकोंके ये कर्त्तव्य हैं,—(१) मूलार्थकी व्याख्या करना, (२) मूलमें भूलसे जो वात नहीं कही गयी हो, उसको भी वताना, (३) मूलमें जो असङ्गत वात कही गयी हो, उसे वताकर वहाँ सङ्गत अर्थका निर्देश करना। † इन सव कर्त्तव्यों या लक्षणोंसे युक्त आज कल पाणिनीय सूत्रों पर कात्यायन-वार्त्तिक, वात्स्यायन भाष्य पर उद्योतकरका न्यायवार्त्तिक, जैमिनीय सूत्रों और शवरभाष्य पर कुमारिल भट्टका तन्त्रवार्त्तिक प्रचलित हैं। यहाँ यह भी कह देना असङ्गत नहीं होगा कि, केवल सूत्रों और भाष्यों के ऊपर ही वार्त्तिक-रचना होती है और वे खूव स्वाधीन होते हैं। इसीसे उनका महत्त्व सर्वापेक्षा अधिक है।

जो हो, परन्तु नव्य नैयायिकोंने जिस सूक्ष्मदर्शिता और अद्भुत् बुद्धिमत्ताके साथ अपने ग्रन्थोंकी रचना-प्रणाली दिखायी

---

* सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र पदैः सूत्रानुसारिभिः। स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदोविदुः।

† उक्तानुक्तदुरुक्तार्थव्यक्तकारि तु वार्त्तिकम्।

है, वह बिलकुल अनोखी, अनुपम और प्रतिभाद्योतक है। उसके व्याप्तिविचार, हेत्वाभासविचार और प्रमाणविचार पर जो अनूठे ग्रन्थ रचे गये हैं, उन्होंने सब दर्शनोंसे न्यायका अधिक महत्त्व बढ़ा-चढ़ा दिया है। इस कारण जनतामें यह बात भी प्रचलित हो गयी है कि, जिसने नव्य न्यायका पूरा पूरा अध्ययन नहीं किया है, वह योग्य दार्शनिक नहीं है। वास्तवमें इस उक्तिमें सत्यकी अधिक मात्रा है। सचमुच नव्य न्यायने दर्शन-संसारमें अनोखे तर्क-कौशल दिखा कर युगान्तर उपस्थित कर दिया है। यथाप्रसङ्ग नव्य न्यायके इस कमनीय कौशल का दृष्टान्त दिखाया जायगा।

इसी विषयके उपसंहारमें लगे हाथ एक बात और कह देनेकी भी है। वह सभी जानते हैं। स्वभावतः सभी जीव चाहते हैं कि, यदि ऐसा कोई उपाय होता, जिससे दुःख कभी नहीं फटकता और पूरे आनन्दकी प्राप्ति होती, तो उसे करके अपना जीवन सार्थक किया जाता। बस, इसी बात या अत्यन्त प्राचीन चिन्ताके ऊपर दर्शनशास्त्रकी रचना है। विभिन्न रुचि और बुद्धिके कारण विभिन्न प्रकारके विचार वाले ग्रन्थोंकी रचना या विचार-सृष्टि हुई है। परन्तु सब रचयिताओंने सदाके लिये दुःख-निवृत्ति और पूरे आनन्द या मोक्षकी प्राप्तिके लिये ही अर्थात् एक ही उद्देशसे, ग्रन्थ-रचना या विचार-सृष्टि की है। मोक्ष-प्राप्तिका पूरा पूरा उपाय बतानेके लिये दार्शनि-कोंको कई सांसारिक और व्यावहारिक बातोंकी यथेष्ट चर्चा भी

करनी पड़ी है। इसी चर्चाके अनुसार दर्शनों के नाम पड़े हैं और उनकी रचनाप्रणाली भी स्थिर हुई है।

गौतम, कणाद, कपिल और पतञ्जलिके दर्शनोंको देखनेसे मालूम होता है कि, उनका दुःखसे घोर विद्वेष था; क्योंकि, उन्होंने अपने दर्शनोंमें आत्यन्तिक दुःख-निवृत्तिको ही मोक्ष माना है। इधर दोनों मीमांसादर्शनोंको देखनेसे जान पड़ता है कि, जैमिनि और व्यास सुखके खूब अनुरागी थे; क्योंकि, उनके दर्शनोंमें निजानन्द या स्वरूपानन्दकी प्राप्ति ही मुक्ति मानी गयी है। इस विचारके अनुकूल ही उनका आत्मतत्त्व-निर्णय भी है। गौतम सुख नहीं चाहते—दुःख-निवारण चाहते हैं—इसीलिये उनके दर्शनमें आत्मा आकाशकी तरह जड़ द्रव्य है और उसमें, केवल मनके संयोगसे, ज्ञान, सुख आदिकी उत्पत्ति होती है। इधर व्यास सुख चाहते हैं; इसलिये उनके दर्शनमें आत्मा चिदानन्दरूपी है।

इस तरह चाहे आप किसी दर्शनको देखिये, उसके मुख्य उद्देशमें फर्क नहीं है—भेद या मतवाद है केवल अवान्तर पदार्थोंमें। सबका मूल उद्देश एक है और उसका नाम है तत्त्वज्ञान या मोक्ष।

अबतक संसारमें कितने दार्शनिक मतवाद प्रचलित हो चुके हैं? इसका उत्तर देना बड़ा ही कठिन कार्य है। संसारकी तो बात रखी रहे, केवल भारतवर्षके दर्शनोंकी ही नाम-गणना असम्भव नहीं, तो दुःसाध्य अवश्य है। आस्तिक

दर्शनोंमें न्याय, वैशेषिक, साङ्ख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त, नारदसूत्र और भक्तिदर्शन (शाण्डिल्यकृत) आजकल विशेष प्रचलित हैं। पहलेके छः दर्शनोंका एक नाम षड्दर्शन भी है। इनके सिवा वेदभाष्यकार

विविध दर्शन

सायणाचार्यके भ्राता माधवाचार्यने अपनी "सर्वदर्शनसंग्रह" नामक पुस्तकमें उक्त दर्शनोंमेंसे पहलेके पाँच दर्शनों और चार्वाक, बौद्ध, आर्हत, रामानुज, पूर्णप्रज्ञ, नकुलीश पाशुपत, शैव, प्रत्यभिज्ञ, रसेश्वर तथा पाणिनि आदि सब मिलकर पन्द्रह दर्शनोंका उल्लेख किया है। उनमें नास्तिक-आस्तिक—सभी दर्शन हैं। पुष्टिमार्ग या रुद्रसम्प्रदाय, श्रीनिम्बार्कसम्प्रदाय या सनकादिसम्प्रदाय, सौरसम्प्रदाय, गाणपत्य सम्प्रदाय, शाक्तसम्प्रदाय आदिके भी दार्शनिक ग्रन्थ और स्वतन्त्र मत हैं। शाक्त सम्प्रदायका प्रधान दार्शनिक ग्रन्थ अगस्त्यसूत्र अभी प्राप्त हुआ है। यह बहुत उच्च कोटिका ग्रन्थ है। ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, थियासोफी आदिके भी स्वतन्त्र दार्शनिक मतवाद हैं और साथ ही उनके अच्छे-अच्छे ग्रन्थ भी हैं। इधर कुछ दिनोंसे काशीके भारतधर्ममहामण्डलसे दैवीमीमांसादर्शन (महर्षि अङ्गिरा द्वारा प्रणीत) और भरद्वाजदर्शन नामक दो दर्शन प्रकाशित हुए हैं। साहित्याचार्य प० रामावतार शर्मा एम० ए० का एक परमार्थदर्शन भी आजकल प्रचारित हुआ है। काशीके प० परीक्षण कवि द्वारा भी दो तीन दर्शन विरचित हुए हैं; परन्तु वे अभी अप्रकाशित ही हैं। सुनते हैं, मद्रास

प्रान्तमें अभी कोई वहुत वढ़िया दर्शन प्रकाशित हुआ है और वहांके विद्वानोंमें उसका यथेष्ट प्रचार भी हो रहा है। ईश्वर-दर्शन, आत्मदर्शन और निराकारमीमांसा आदि नामके दर्शन भी निकले हैं। इन दर्शनोंके अतिरिक्त अन्यान्य कितने ही आधुनिक विद्वानोंने विविध दर्शन वनाये हैं, जिनका नामोल्लेख यहाँ आवश्यक नहीं है।

षड्दर्शनोंके सूत्रग्रन्थोंमें पञ्चशिख, आसुरि, सनन्द, आश्मरथ्य, आश्वलायन, वादरि, कार्ष्णाजिनि, काशकृत्स्न, आत्रेय आदि तथा शाक्तदर्शनके अगस्त्यसूत्रमें हयानन, पैप्पलायन, पराशर, वशिष्ठ, शुक, तित्तिर, मारीच आदि महर्षियोंके मत उद्धृत हैं; इस लिये जान पड़ता है कि, किसी समय इनके भी दार्शनिक ग्रन्थ थे, जो विदेशियोंकी कृपा या अन्यान्य कारणोंसे विनष्ट हो गये हैं। * यह भी सम्भव है कि, इन ग्रन्थोंके मिलने

---

* धारेश्वर सुप्रसिद्ध महाराजा भोजने "कामधेनु" नामक एक स्मृतिसंग्रह ग्रन्थ वनाया है। उसकी उपक्रमणिकामें लिखा है कि, उज्जैनके वौद्ध राजा मतादित्यने भारतवर्षके हजारों ब्राह्मणोंको निमन्त्रण देकर, उनकी सव पुस्तकें ले लेकर, जलवा दी थीं।

मरहठोंके अभ्युदयके समय वौद्धोंने 'सह्याद्रिखण्ड' को नष्ट कर दिया था।

मुसलमानों द्वारा अलेक्जेण्ड्रियाका पुस्तकालय भस्म होना प्रसिद्ध ही है।

महमूद और नादिरशाहके द्वारा भी अनेक धर्मग्रन्थ विनष्ट हुए हैं। सुनते हैं, कितने ही मुसलमान वादशाहोंने हिन्दूधर्मकी पुस्तकें जलाकर 'हम्माम' गर्म करवाये थे।

पर और और दर्शनोंका भी इनमें पता मिल सकता। साधारणतः यह अनुमान किया जा सकता है कि, जितने तरहके प्राचीन सम्प्रदाय थे, उन सबके स्वतन्त्र दार्शनिक ग्रन्थ थे और सभी दर्शनोंके स्वतन्त्र सम्प्रदाय। परन्तु काल पाकर कुछ दर्शनोंके सम्प्रदाय विनष्ट हो गये और कुछ सम्प्रदायोंके दर्शन। जैसे आजकल न्याय, वैशेषिक दर्शनोंके सम्प्रदाय नहीं मिलते और सौर, गाणपत्य सम्प्रदायोंके दर्शनग्रन्थ। फलतः यह निर्णय करना कठिन है कि, हमारे यहाँ कितने दर्शन थे।

अब संसारके अन्यान्य देशोंकी ओर दृष्टि डालिये। जैसे प्राचीनताकी दृष्टिसे, भारतवर्षके बाद, चीनका नम्बर है, उसी तरह एशियामें, दार्शनिक उन्नतिमें भी, उसीका दूसरा दर्जा है। वहाँ सबसे बड़े दार्शनिक कनफुची या कनफुसियेस हो गये हैं। इनके नीचे उतरकर येनियेन, मेञ्चेकन, चेङ्गो, चुकं, किलू, सिहेन आदि चीनमें नामी दार्शनिक हो गये हैं। इनसे कई दार्शनिक मतवाद और सम्प्रदाय चले हैं।

प्राचीन मिश्रमें प्रोफिरी और रेमिसिस आदि धर्मप्रवर्त्तक दार्शनिक हो गये हैं। इनके पीछे भी वहाँ अनेक दार्शनिक सम्प्रदाय चले हैं।

दार्शनिक दृष्टिसे संसारमें चौथा दर्जा,: किसी किसी मतमें तीसरा दर्जा, ग्रीसका है। यों तो, वहांके विशेष प्रसिद्ध दार्शनिक पिथागोरस और थेलीज हुए हैं; परन्तु साक्रेटिस, अरिस्टाटल, प्लेटो आदि भी कम विख्यात

नहीं हुए हैं। इनके वाद भी ग्रीसमें अनेक दार्शनिक हो गये हैं।

इनके सिवा यूरोपमें डार्विन, हेकल, हाक्सले, डाल्टन, काण्ट, शोपेनहार, सेजल, कामट्, वेकन, मिल, स्पेन्सर, ह्यूम आदि, सैकड़ों दार्शनिक हुए हैं। उनमें कोई विवर्त्तवादी, कोई शून्यवादी, कोई विज्ञानवादी, कोई विकासवादी और कोई नीहारिकावादी है। अरव, फारस, वेवीलोनिया, पलेनेशिया आदि पृथ्वीके अनेक देशोंमें भी कितने ही दार्शनिक हो गये हैं और उनके स्वतन्त्र स्वतन्त्र दर्शन भी हैं।

इस तरह संसारके दार्शनिकों और उनके दर्शनोंके मतवादोंकी ठीक-ठीक गणना करना दुःसाध्य है। हमारा खयाल है कि, यदि केवल दार्शनिकों और उनके मतवादी दर्शनोंकी नामावली भर छपायी जाय, तो एक वड़ेसे वड़ा पोथा तैयार हो सकता है।

संसारकी विविध भाषाओंमेंसे शायद ऐसी कोई भी भाषा नहीं है, जिसमें समस्त भूमण्डलके दर्शनोंका पूरा पूरा अनुवाद हो।

दार्शनिक ग्रन्थोंका अनुवाद

भारतवर्षकी देशी भाषाओंमें तो इस वातका और भी अभाव है। और तो क्या, भारतकी राष्ट्रभाषा हिन्दीमें तो ऐसा एक भी ग्रन्थ नहीं, जिससे अपने यहांके षड् दर्शनोंका भी विशुद्ध परिचय मिल सके! परन्तु धन्यवाद है उन यूरोपीय विद्वानोंको, जिन्होंने यूरोपके ही नहीं, समस्त संसारके दर्शनोंको खोज-ढूंढ़कर यथाशक्ति उनसे अपनी मातृभाषाका

भाण्डार भर दिया है। यदि हम भूलते नहीं, तो यह भी सच्ची बात है कि, हिन्दूदर्शनोंपर जो उन्होंने खोज की है और जो अनमोल ग्रन्थ लिखे हैं, वे आधुनिक भारतीय विद्वानोंके ग्रन्थोंसे किसी हालतमें भी कम महत्त्वके नहीं हैं।

हमारे खयालसे भारतीय विद्वानोंमें डाक्टर रामकृष्ण भाण्डारकर, महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री एम० ए०, श्रीशचन्द्र वसु, लोकमान्य तिलक, राजा राममोहन राय, राजेन्द्र-लाल मित्र, शेष गिरि शास्त्री, एन० सी० पाल, प्रो० टी० आर० अमलनेरकर, के० एम० बनर्जी, गोविन्ददेव शास्त्री, बाल शास्त्री, रामनारायण विद्यारत्न, जयनारायण तर्कपञ्चानन, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, महेशचन्द्र न्यायरत्न, कालीवर वेदान्तवागीश, म० म० चन्द्रकान्त तर्कालङ्कार, मणिशङ्कर हरगोविन्द भट्ट, म० म० गंगाधर शास्त्री, सी० आई० ई०, म० म० डाक्टर गंगानाथ झा, एम० ए०, म० म० लक्ष्मण शास्त्री द्रविड़, म० म० सतीशचन्द्र विद्याभूषण, एम० ए०, साहित्याचार्य रामावतार शर्मा एम० ए०, न्यायाचार्य गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, प० राधाकृष्ण मिश्र, रामप्रसाद एम० ए०, नन्दलाल सिंह एम० ए०, हरदयाल शारदा, प० राधिकाप्रसाद शास्त्री आदि विद्वान् दर्शनशास्त्रके प्रचारक गिने जाते और इनमेंसे कई एकने हिन्दूदर्शनपर गवेषणापूर्ण मौलिक-ग्रन्थ या अनुवाद-ग्रन्थ लिखे हैं। इन्हीं विद्वानोंकी कृपासे दर्शन-शास्त्रके गूढ़ रहस्य समझनेमें जनता बहुत कुछ समर्थ हुई है और दर्शनोंका, इस जड़वादप्रधान युगमें भी, बहुत कुछ प्रचार हुआ है।

इधर यूरोपीय विद्वानोंमें ड्यूसन, कोलब्रुक, मैक्समूलर, गार्वे, बालएटाइन, मारकस, लासेन, हाल, म्योर, डाविड, कर्न, थीबो, एच० एच० विल्सन, डाविस, कावेल, गाफ, मानियर विलियम, विण्डिस्मैन, लरिन्स, पेण्टियर, सेन्ट हिलियर, वार्थ, रोअर, जैकोवी, ल्यूमैन, प्लाट, होरनोल, स्टेवेन्सन, ग्यूरानाट, ओल्डफिल्ड, कनिंगहम, वेडल, हीरन, डङ्कर, विलियम जोन्स आदिने भारत वर्षके आस्तिक-नास्तिक, सभी दर्शनोंका, यूरोपकी विभिन्न भाषाओंमें, अनुवाद कर और उनपर निवन्ध-प्रवन्ध लिखकर आर्यजातिका वहुत वड़ा उपकार किया है। इनकी सजीव लेखनीके फलसे संसारके वड़े वड़े कुतार्किकोंको सिर नीचा कर देना पड़ा है और मनुष्यसमाज आध्यात्मिक तत्वकी ओर विशेष अग्रसर हुआ है तथा हो रहा है। हमारी वड़ी अभिलाषा है कि, ऊपरके उक्त विद्वानों और संसारके अन्यान्य विद्वानोंने जो कुछ विश्व भरके दर्शनशास्त्रोंपर ग्रन्थ लिखे हैं, उनके अनुवाद किये हैं, उनका संग्रह किया है, उनपर निवन्ध-प्रवन्ध लिखे हैं या उनपर समालोचना की है, उन सवकी एक विस्तृत तालिका या सूचीपत्र इस ग्रन्थके परिशिष्ट भागमें जोड़ दिया जाय। इसके लिये वहुत कुछ कोशिश भी की जा रही है। यदि सफलता मिल गयी, तो यह अभिलाषा पूरी हो ही जायगी; नहीं तो राम जाने। तवतक आज हम अपने पाठकोंको इस विषयका अत्यन्त संक्षिप्त परिचय करा देते हैं।

आस्तिक दर्शनोंमेंसे साङ्ख्यदर्शनके अनेकानेक अनुवाद हुए हैं और उसपर विविध समालोचनाएँ भी लिखी गयी हैं। उन सबमें बालंटाइन साहब (Dr. Ballantyne) का जो सन् १८८५ में कपिलसूत्रोंका सर्वाङ्ग-सुन्दर अनुवाद हुआ है, वह विशेष उल्लेखनीय है। कपिलसूत्रोंपर जो विज्ञानभिक्षुका भाष्य है, उसका १८८६ में और उनपर जो अनिरुद्धकी वृत्ति है, उसका १८९२ में, वेदान्ती महादेवकी टीकाके साथ, गार्बे साहब (Richard Garbe) ने बहुत बढ़िया अनुवाद, जर्मन भाषामें, तैयार कर प्रकाशित कराया है। इन्होंने इसी सन्में "साङ्ख्य-कारिका" को भी, वाचस्पति मिश्रकी व्याख्याके साथ, जर्मन भाषामें सानुवाद प्रकाशित कराया है। ईश्वरकृष्णकी "साङ्ख्यकारिका" का अंग्रेजीमें अनुवाद कोलब्रुक (H. T. Colebrooke) ने और उसपर जो गौड़पाद स्वामीकी टीका है, उसका प्रो० विल्सन (H. H. Wilson) ने १८३७ में अनुवाद किया है। इसके सिवा गार्बेने सन् १८९४ में "Sankhya-Philosophie" नामका एक बहुत बढ़िया और प्रामाणिक ग्रन्थ, जर्मन भाषामें, निकाला है। "साङ्ख्यसार" और "साङ्ख्य-प्रवचन" की लम्बी-चौड़ी आलोचना डाक्टर हालने भी छपायी है। लैटिन भाषामें लासेन साहबने "साङ्ख्यकारिका" का बहुत बढ़िया अनुवाद निकाला है। विण्डिस्मैन और लरिन्सरने भी जर्मन भाषामें इसका अनुवाद किया है। इसका फ्रेंचमें अनुवाद पेपिटयर और सेन्ट हिलियरने किया है। डाविस (John

Davies) ने अपनी "Hindu Philosophy" नामकी इस कारिकाकी विस्तृत आलोचना लिखी है। कलकत्तेके साहबने विज्ञानभिक्षुके भाष्यके साथ, साङ्ख्यसूत्र प्रकराये हैं। राइट् आनरेबिल प्रोफेसर मैक्समूलरकी "The Six Systems of Indian Philosophy" में भी साङ्ख्य-शास्त्रपर पाण्डित्यपूर्ण विचार किया गया है। डाकृर रामकृष्ण भाण्डारकरने भी "Sankhya-Philosophy" नामकी बड़ी उत्तम पुस्तक अंग्रजीमें लिखी है। श्रीयुत नन्दलाल सिंह एम० ए०, वी० एल०, ने जो सानुवाद "Sankhya-Philosophy" तैयार की है, वह बड़े मार्केकी पुस्तक है। उसमें कपिल-सूत्रोंपर विज्ञानभिक्षुका भाष्य, अनिरुद्धकी वृत्ति, महादेवका वृत्तिसार, साङ्ख्यकारिका, तत्त्वसमास और पञ्चशिख-सूत्र भी हैं। उस एक ही पुस्तकसे सांख्यशास्त्रके पूरे अङ्गोपाङ्गोंका ज्ञान हो सकता है। इसके सिवा "Bhandarkar's Report" के कई भागोंमें साङ्ख्य पर समालोचनाएँ निकली हैं। "Sacred Books of the East" में भी साङ्ख्यके ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं और उसपर समालोचनाएँ तथा निवन्ध-प्रवन्ध लिखे गये हैं।

वंगालके यशस्वी विद्वान् राजेन्द्रलाल मित्रने वेव्लोथिका इण्डिका (Bibliotheca Indica) के ४६२, ४७८, ४८२, ४९१ और ४९२ नम्बरोंमें योगसूत्रोंका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित कराया है, जो उच्च कोटिका अनुवाद गिना जा सकता है। एन० सी० पालकी "Yoga-Philosophy" भी योगशास्त्रका

अच्छा ग्रन्थ है। पी० मारकसने भी, जर्मन भाषामें, योगदर्शन पर बहुत कुछ विचार लिखा है। मैक्समूलर साहबकी "The Six Systems of Indian Philosophy" में भी योगदर्शन पर खूब अच्छा विचार किया गया है। श्रीयुत रामप्रसाद एम० ए० की "Aphorisms of yoga by Patanjali" नामकी पुस्तक भी बहुत सुन्दर और पठनीय है। व्यासभाष्यके साथ, आपके द्वारा, वह अनूदित हुई है।

वैशेषिकदर्शनका जो सबसे सुबोध अंग्रेजीमें अनुवाद हुआ है, वह मिस्टर गाफ (A. E. Gouph) का अनुवाद है, जिसे उन्होंने सन् १८७३ में प्रकाशित कराया है। मिस्टर रोअर (Roer) ने भी "German Oriental Society" के जर्नलमें इस दर्शनका अनुवाद, जर्मन भाषामें, निकाला है। इसी जर्नलमें प्रो० मैक्समूलरने भी इस दर्शनपर कुछ निबन्ध छपवाये हैं। जयनारायणकी वृत्ति और शङ्कर-भाष्यके साथ जो श्रीयुत नन्दलाल एम० ए०, बी० एल०, ने इसका अंग्रेजी अनुवाद निकाला है, वह भी ऊँचे दर्जेका है। एशियाटिक सोसाइटीने भी, दो टीकाओंके साथ, वैशेषिक दर्शन छपवाया है।

बालंटाइनने न्याय-सूत्रोंका जो अनुवाद, सन् १८५७ में, पूरा करके प्रकाशित कराया था, वह बड़ा प्रामाणिक समझा जाता है। विल्सन साहबने भी वृत्तिसहित न्यायसूत्रोंको छपवाया है। महामहोपाध्याय डाकूर सतीशचन्द्र विद्याभूषण, एम० ए०,

पी० एच० डी०, ने जो अंग्रेजीमें न्यायदर्शनका सभाष्य प्रकाशित कराया है, वह कई अंशोंमें उच्च कोटिका अनु गिना जाता है।

जैमिनीय मीमांसाका बहुत ही गवेषणापूर्ण और अंग्रेजी अनुवाद महामहोपाध्याय डाक्टर गङ्गानाथ झा, एम ए०, ने किया है। आज तक जैमिनि-सूत्रोंका किसी भी भाषा ऐसा बढ़िया अनुवाद नहीं हुआ है। इसमें एक प्राच भाष्य भी है। इस अनुवादसे कर्ममीमांसाके प्रचारमें बड़ी सहायता मिली है। "Benares Sanskri Series" में प्रो० थीबो (Professor Thibaut) ने भी लौगाक्षि-भास्करके "अर्थसंग्रह" का एक सुन्दर अनुवाद छपवाया है।

शारीरक भाष्यके साथ वेदान्त-दर्शनका एक उत्तम अंग्रेजी अनुवाद थीबो साहब ने प्रकाशित कराया है। इसी रीतिसे "System des vedanta" नामका जर्मन भाषामें एक अनुवाद ड्यूसन साहब (Deussen) ने सन् १८८७ में प्रकाशित कराया है। इसकी यूरोपमें बड़ी कद्र है। बलदेव-भाष्य और उत्तमोत्तम टिप्पनियोंके सहित राय बहादुर श्रीशचन्द्र विद्यार्णव ने वेदान्त-सूत्रोंका एक सर्वाङ्गसुन्दर अंग्रेजी अनुवाद छपवाया है। इस अनुवादकी यथेष्ट प्रतिष्ठा है। प्रो० टी० आर० अमल-नेरकर का "Priority of the Vedant-Sutras" भी वेदान्तका बहुत बढ़िया ग्रन्थ है। राजा राममोहन रायने भी सभाष्य वेदान्तदर्शन प्रकाशित कराया है, जिसका अच्छा मान है।

इनके सिवा कोलब्रुक साहबके "Miscellaneous Essays" और "Catalogues" (जो यूरोप और हिन्दुस्थानमें, समय-समय पर, प्रकाशित हुए हैं) में हिन्दू-दर्शन-शास्त्रके अनेक अप्राप्य ग्रन्थ और आलोचनात्मक लेख प्रकाशित हुए हैं। "Sacred Books of the East," शेषगिरि शास्त्रीके "Report of Sanskrit and Tamil MSS.," "journal of the German oriental Society", "Journal of the Asiatic Society of Benal", "Muir's original Sanskrit Text", "Bhandarkar's Report", मैक्समूलर साहबकी "The Six Systems of Indian Philosophy" आदिमें प्राच्य दर्शन-शास्त्रके अनेक उपयोगी ग्रन्थ, अनुवाद, आलोचना-प्रत्यालोचनाए और लेख निकले हैं। कुम्भकोणम्, ट्रावङ्कोर और बम्बईसे भी आजकल कई दर्शन-शास्त्रके उपयोगी ग्रन्थ निकले हैं। महामहोपाध्याय प० चन्द्रकान्त तर्कालङ्कारका "फेलोशिपेर लेक्चर" भी बङ्गभाषामें, दर्शन पर, अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ है। प० कालीवर वेदान्त-वागीशका भी दर्शनशास्त्र पर एक सुन्दर ग्रन्थ छपा है। इसके प्रकाशक हैं स्वर्गीय आर० सी० दत्त। पञ्जाबके डी० ए० वी० कालेजके पण्डितोंने भी, अपने मतानुसार, "षड्दर्शन" और "नवदर्शन" नामके दो अच्छे ग्रन्थ निकाले हैं।

बौद्धदर्शनके ऊपर सबसे सुबोध ग्रन्थ है "ब्रह्मजालसुत्त"। डाविड साहब (Rhys Davids) ने इस पाली ग्रन्थका जो अंग्रेजी अनुवाद किया है, उससे बौद्धदर्शन समझनेमें

बड़ी सहायता मिलती है। वह अनुवाद बहुत ही मार्मिक और उपयोगी हुआ है। उससे बौद्धदर्शनके प्रचारमें बड़ी सहायता भी मिली है। कर्नका "Buddhismus" भी बढ़िया चीज है। उसे लोग बहुत पसन्द करते हैं। "The Pali Text Society" ने भी बौद्धदर्शन पर अनेक ग्रन्थ निकाले हैं। "Journal of the Buddhist Text Society" में बौद्धदर्शन पर अनेक निबन्ध निकले हैं, जो बहुत उपयोगी माने जाते हैं। "Oldfild's Nepal," महामहोपाध्याय पण्डित हरप्रसाद शास्त्री के "Living Buddhism in Bengal", "Cannigham's Mahabodhi", "Waddell's Buddhism of Tibet", "Hodgson's Nepal" आदि ग्रन्थोंसे भी बौद्ध-दर्शन समझनेमें बड़ी सहायता मिलती है। ये सब गृन्थ इस दर्शनपर पूरा प्रकाश डालते हैं। महावग्ग, सामञ्ञफलसुत्त, धम्मपिटक, चरियापिटक, अङ्गुत्तरनिकाय, मज्झिमनिकाय, ललितविस्तर आदि बौद्धदर्शन और बौद्धधर्मके पाली भाषामें प्रतिष्ठित ग्रन्थ हैं।

"Sacred Books of the East" में जाकोबी साहब (Hermann Jocobi) ने सन् १८८४ में प्राकृत भाषामें, जैन दर्शनके प्रधान ग्रन्थ "आचारांगसूत्र" और "कल्पसूत्र" का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित कराया है। सन् १८७६ में जर्मनीके लिप्ज़िग शहरमें कल्पसूत्र प्रकाशित किया गया था। सन् १८८२में लण्डनमें श्वेताम्बरजैनियोंका "आचाराङ्ग-सूत्र" प्रकाशित हुआ था। १८६४में जाकोबी साहबने "उत्तराध्ययन" और "सूत्रकृतांग" का भी

अंग्रेजी अनुवाद कर डाला। ल्यूमैन (Prof. Leumann), होरनोल (Prof. Hoernole), बार्थ (M. A. Barth), ग्यूरीनाट (Dr. A. Guerinot) आदिने भी जैन-दर्शनके उद्धारमें यथेष्ट सहायता की है।

पहले ही कहा जा चुका है कि, "सर्वदर्शनसंग्रह" में पन्द्रह दर्शनोंका परिचय दिया गया है। इस लिये इस गृन्थका अंगृजी अनुवाद होना अत्यावश्यक समझ कर मि० गाफ (Gough) के साथ कावेल साहब (E. B. Cowell) ने इसका बहुत बढ़िया अंग्रेजी अनुवाद कर दिया है। जो लोग अलग अलग पन्द्रह दर्शनोंका अध्ययन नहीं कर सकते, उनके लिये यह अनुवाद अत्यन्त उपयोगी हैं। पहले पहल प० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर तथा विल्सन साहबने एशियाटिक सोसाइटी द्वारा इसे छपवाया था। पीछे जयनारायण तर्कपञ्चाननने इसका बंगानुवाद प्रकाशित किया। यह बिलकुल ही स्वतन्त्र अनुवाद है। प० मणिशङ्कर हरगोविन्द भट्ट बी० ए० ने इसका एक गुजराती अनुवाद भी प्रकाशित किया है। इसमें खूब टिप्पनियाँ भी दी गयी हैं और बड़ी कोशिशसे यह तैयार किया गया है। स्वर्गीय प० माधवप्रसाद मिश्रने भी इसका कुछ अनुवाद प्रकाशित किया था। महामहोपाध्याय पण्डित गङ्गाधर शास्त्रीने संस्कृतमें एक "अलिविलासिसंलाप" नामका गृन्थ लिखा है, जिसकी सहायतासे आस्तिक-नास्तिक दर्शनोंके अनेक गूढ़ तत्त्व समझमें आ सकते हैं। यह गृन्थ बहुत उच्च

कोटिका है। पण्डित राधिकाप्रसाद शास्त्रीने "प्राच्यदर्शन' नामकी एक हिन्दीमें पुस्तक लिखी है, जिसमें अनेक दर्शनोंका परिचय दिया गया है।

हरदयाल महाशयकी "Hindu superiority" से भी दर्शन-शास्त्रकी अनेक बातें जानी जा सकती हैं। कोलब्रुक साहबकी "the Philosophy of the Hindus", मानियर विलियमकी "Indian wisdom", गार्बिस साहबकी "Hindu Philosophy" आदि पुस्तकों से भी प्राच्यदर्शनोंकी महत्ता और महनीयता खूब प्रकट होती है।

यह कहनेकी जरूरत नहीं कि, अबतक प्राच्यदर्शनोंके अनुवाद और समालोचनाकी ही बात लिखी गयी है। पाश्चात्य दर्शनोंकी बाबत कुछ विशेष लिखना भी नहीं है; क्योंकि, अभी तक उनका अनुवाद, प्राच्य देशोंकी भाषाओंमें, कम देखनेमें आता है। इसीसे पाश्चात्य दर्शनोंका परिचय पानेके लिये सबसे बड़ा साधन "History of Philosophy" नामक पुस्तक ही मानी जाती है। हिन्दीभाषाभाषियोंके सौभाग्यसे साहित्याचार्य प० रामावतार शर्मा, एम० ए०, ने हिन्दीमें "यूरोपीय दर्शन" नामका एक अच्छा ग्रन्थ लिखा है। इसे काशीकी नागरी-प्रचारिणी सभाने प्रकाशित किया है। इसे पढ़कर केवल हिन्दी समझनेवाले भी पाश्चात्यदर्शनोंका परिचय पा सकते हैं।

चीन, मिश्र आदि देशोंके दर्शनोंके सम्बन्धकी भी कई पुस्तकें अंग्रेजीमें निकली हैं; परन्तु जैसी पुस्तकोंकी

आवश्यकता है, वैसी नहीं निकली हैं। जो हो, परन्तु यह बात सच्ची है कि, संसारके अन्यान्य दर्शनोंका परिचय पानेके लिये "Encyclopaedia Britannica" और "Encyclopaedia Indica" के सिवा हम लोगोंके लिये दूसरा उपाय नहीं है। किसी किसी प्रचलित साम्प्रदायिक दर्शनका तो, इनमें भी पता नहीं है!

हिन्दूदर्शनपर यूरोपीयोंका मत

सभी जगह भले-बुरे हैं। चिन्ताशक्तिका विकाश भी सभी जगह, सभी देशोंमें, हुआ करता है। परन्तु, इस विकाशमें पार्थक्य है—कमी-वेशी है। जल-वायु, परिश्रम, संगति, शान्ति आदिके प्रभावसे कहीं चिन्ता-शक्तिका विशेष विकाश हुआ है और कहीं कम। किन्तु इसमें भी सन्देह नहीं कि, इस विकाशके तारतम्यको समझनेवाले भी सभी देशोंमें हैं। बहुत लोगोंकी ऐसी आस्था है कि, यूरोपवाले पक्षपाती होते हैं। वे अपनी कम शक्ति देखते हुए भी अपनी शेखी बघारनेमें बाज नहीं आते। उनको यह अभिमान भी है कि, संसारमें सबसे ज्यादा शिक्षित, सभ्य और चिन्ताशील हमी हैं और पहले भी हमी थे। पर हमारी धारणा कुछ और ही है। हमारे विचारसे जो चिन्ताशील हैं और जिन्हें ईश्वरने उदारता, सदबुद्धि, सहृदयता आदि दैवी गुण दिये हैं, वे चाहे कहीं भी रहें, कहींके भी निवासी हों; किन्तु वे यथार्थ सत्य समझनेमें और गुण-गुणीकी प्रतिष्ठा करनेमें बाज नहीं आ सकते। हमारे खयालसे इस श्रेणीके अनेक

मनुष्य यूरोप और ब्रिटेनमें पैदा हो गये हैं और हैं। इनमें अन्यतम हैं मैक्समूलर साहब (Right Hon. Prof. Max-muller, K. M., Late Foreign Member of the French Institute.)। आपने ऋग्वेदका अनुवाद कर और "The six Systems of Indian Philosophy", "India; what can it teaches us" आदि पुस्तकें लिखकर अपनी विश्वव्यापिनी उदारताका परिचय दिया है तथा साथ ही हिन्दूशास्त्रोंका आपने संसारमें खूब प्रचार भी किया है।

आप एक जगह लिखते हैं,—"जो देश उन्नतिके उच्चतम शिखरपर अधिरूढ़ है, जिस देशमें भीतरी-बाहरी किसी तरहके शत्रुका भय नहीं रहता, समृद्धिके साथ साथ विविध विद्या-मन्दिर, विश्वविद्यालय आदि स्थापित कर जिस देशके निवासी स्वतन्त्रता-पूर्वक विद्यालोचनामें निमग्न रह सकते हैं, उसी सभ्य और समुन्नत देशमें दर्शनशास्त्रकी उत्पत्ति होती है।" मैक्समूलर साहबकी इस सूक्तिसे हम सहज ही अनुमान कर सकते हैं कि, हमारा देश धन-धान्य, श्री-सम्पत्, धर्म-कर्म, ज्ञान-विज्ञान, विद्या-वैभव और सभ्यता-स्वतन्त्रतामें, संसारमें, शिरःस्थानीय है।

प्रो० मैक्समूलर की यह सूक्ति भारतकी ओर लक्ष्य करके ही है। इस उक्तिका यह भी गूढ़ रहस्य है कि, दर्शन-शास्त्रमें भारत ही गुरुस्थानीय है और यहींसे विशाल वसुन्धरामें ज्ञानरश्मि फैली हुई हैं। इस बातका समर्थन, खुले शब्दोंमें, आप तथा

अन्यान्य कई यूरोपीय विद्वान् कर गये हैं। सुप्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक मि० सेजलने लिखा है,—"हिन्दूदर्शनका जो पुनर्जन्म-वाद है, उसे ही पिथागोरस ग्रीसमें ले आये थे।" मानियर विलियमने लिखा है,—"यूरोपीय दार्शनिकोंके प्रधानाचार्य प्लेटो और पिथागोरस, दोनों ही दर्शन-ज्ञानके सम्बन्धमें हिन्दुओंके चिर ऋणी हैं।" प्रोफेसर मैक्समूलर और कहते हैं,—"भारतके निर्जन वनकी निस्तब्धता (सन्नाटे) के बीच जो आत्मज्ञानका प्रकाश हुआ है, वह जनाकीर्ण और कोलाहलपूर्ण राजमार्गमें नहीं पाया जा सकता।" जर्मन दार्शनिक शोपेनहरने एक वार, एक व्याख्यानमें, कहा था,—"भारतीय काव्य और दर्शन इस समय यूरोपमें प्रचलित होने लगे हैं। अध्ययन करने पर मालूम होता है कि, उनमें इतना गहरा सत्य रखा है कि, उनके सामने यूरोप के दर्शन बिलकुल मामूली चीज हैं। फलतः हम लोग भारतीय दर्शन-प्रणेताओंको विना प्रणाम किये नहीं रह सकते। आप ही आप हमारा मन कह रहा है कि, मानव-समाजका आदिम जन्मस्थान भारतवर्ष ही उच्च दर्शनकी जन्मभूमि है।" फ्रेडरिक किलग्ने कहा है,—"ग्रीस दर्शनका, उच्च श्रेणीका, युक्तितत्त्व, भारतीय युक्तितत्त्वके सामने, दिनके खुले प्रकाशमें टिमटिमाते दीपकके समान है। × × × × × प्राचीन समयमें भारतके मनुष्योंने ही यथार्थ ईश्वर-ज्ञान पाया था। उनका वेदान्त-दर्शन शिक्षा देता है कि, मनुष्य ईश्वरका अंश है और ईश्वरके साथ मिल जाना ही उसके प्रत्येक उद्यम तथा कार्यका मुख्य उद्देश

है।" विलियम जोन्सने कहा है,—"वेदान्त आदिका सुन्दर करनेसे विश्वास करना पड़ता है कि, पिथागोरस और प्लेटोने अपने सब उच्च फौव्वारे भारतके ज्ञानियोंके सोतोंसे ही पूर्ण किये थे।" इतिहाससे पता चलता है कि, ग्रीसके सबसे प्राचीन दार्शनिक पिथागोरस मिश्र देशमें शिक्षा प्राप्त कर एशिया महाद्वीप आये थे और इसके नाना देशोंमें भ्रमण कर अपने देश लौटे थे। उनके दर्शनमें भारतीय चिन्ताकी अमिट छाप लगी है। उन्होंने जन्मान्तर स्वीकार किया है और मांस-भक्षणको पापवर्द्धक माना है। उनके बाद प्लेटो हुए हैं। प्लेटो यूरोपके सबसे बड़े दार्शनिक गिने जाते हैं। उनके विचार भी हमारे दर्शनशास्त्रके ही अनुकूल हैं। वे परलोक मानते हैं। एकेश्वरवाद भी मानते हैं। इस तरह चाहे जिस दृष्टिसे देखिये, भारतीय दर्शन निर्मल बुद्धि के भाण्डार, पुनीत प्रतिभाके आगार, सरस्वतीके सुन्दर शृङ्गार, तर्कके लीलाक्षेत्र, आत्मज्ञानके सरस सोते, मुक्तिके सुलभ सोपान और मृत्युरोगके अद्वितीय महौषध हैं।

दर्शनोंका समन्वय

पहले ही कहा गया है कि, सभी दर्शनोंका उद्देश और प्रतिपाद्य एक है। सभीका उद्देश है जीवोंका दुःख-नाश और सुख-साधन। इधर रचना-प्रणालीमें जो भेद है, वह केवल प्रकार-भेद है। सूक्ष्म विचार करनेसे मालूम पड़ेगा कि, दुःखनिवृत्ति या सुखप्राप्ति—किसी दर्शनमें निःश्रेयस या कृतकृत्यता मानी गयी है, किसी दर्शनमें कैवल्य या सुखप्रतिष्ठा मानी गयी है और किसी दर्शनमें

मुक्ति या आत्यन्तिक दुःखनिवृत्ति मानी गयी है। केवल शब्दोंका विभेद है, मतलब एक है। जल पदार्थ एक ही है; उसीको कहा पानीय, कहीं तोय और कहीं सलिल कहा गया है।

सभी दर्शनोंने स्वीकार किया है, संसारमें चिर आनन्द नहीं है, यह दुःखमय है। महर्षि पतञ्जलिने लिखा है, "परिणाम-ताप-संस्कार-दुःखैर्गुण-वृत्ति-विरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः।" इसका तात्पर्य्य यह है कि, कर्मफल, ताप या दुःख, विषयसंस्कार और गुणोंकी वृत्तियोंमें आपसमें विरोध होनेके कारण विवेकी पुरुषोंके ध्यानमें संसारमें सभी जगह दुःख है या संसार दुःखमय है। सांख्य कहता है, "तदपि दुःखकरं चलमिति दुःखपक्षे निक्षेपन्ते विवेचकाः।" अर्थात् संसारमें जो थोड़ा-बहुत सुख दीखता है, वह भी दुःखमिश्रित ही है; इसलिये विचारवान् पुरुष ऐसे सुखको दुःख ही मानते हैं। इस तरह प्रत्येक दर्शनका इस विषयमें यही एक ही कथन है। बल्कि वेदान्तके मतमें तो, दुःखमय होनेके साथ ही संसार 'अवस्तु' भी है।

मुक्तिकी बावत भी सभी दर्शनोंका एकसा ही वक्तव्य है। मीमांसाका कहना है, कर्मकाण्ड द्वारा स्वर्गकी प्राप्ति ही मुक्ति है। वेदान्त कहता है, ब्रह्मके साथ आत्माकी एकता ही मुक्ति है—"अविभागेन दृष्टत्वात्"। योग कहता है, अपने रूपमें अवस्थान ही मुक्ति है,—"तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।" साङ्ख्य कहता है, आत्यन्तिक दुःखनिवृत्ति होनेसे ही मुक्ति होती है,—"अत्यन्तदुःखनिवृत्त्या कृतकृत्यता।" न्याय कहता है, आत्यं-

न्तिक दुःखनिवृत्ति ही मुक्ति है,—"आत्यन्तिक-दुःखनिवृत्ति-मुक्तिः।" वैशेषिक कहता है, पदार्थोंका राई-रत्ती ज्ञान कर लेनेसे ही मुक्ति होती है,—"× × × × पदार्थानां साधर्म्य-वैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः।" और क्या, बौद्धोंकी निर्वाण-मुक्ति और साङ्ख्य आदिकी आत्यन्तिक दुःखनिवृत्ति भी एकसी ही बात है। इस तरह वास्तवमें किसीमें कोई विशेष मतभेद नहीं है। हाँ, वेदान्तके मतमें, इस विषयमें, कुछ विशेषता जरूर है। उसके मतमें अखिल दुःख-नाशके पश्चात् जीवकी एक ऐसी आनन्दमय अवस्था आती है, जिसमें ईश्वर और जीवमें कुछ भेद नहीं रह जाता; वही मुक्ति है।

उपनिषद्का एक वचन है,—"सत्यं ज्ञानमानन्दं ब्रह्म।" मतलब यह कि, ब्रह्म या परमात्मा सत्यात्मा, ज्ञानस्वरूप और आनन्दमय है। इस वाक्यकी व्याख्यामें वेदान्तियोंने सत्य, आनन्द और ज्ञानका विशद विवरण लिखा है। वेदान्ती कहते हैं, संसारमें भी सत्य, ज्ञान और आनन्द है; परन्तु वह अपूर्ण, विकृत और भ्रान्ति-मूलक है। संसार और ब्रह्मके आनन्दमें वही फर्क है, जो सूर्यकी असली किरण और उनकी जलको परछाईंवाली किरणमें है। इस तत्त्वको जान कर जीवको उचित हैं कि, वह संसारको छोड़ दे और ब्रह्ममें अपनेको मिला दे। इस तरहकी आत्मलीनता ही वेदान्तशास्त्रका मोक्ष है। एक दृष्टान्त द्वारा वेदान्तने जीवकी अवस्थाओंका बहुत बढ़िया वर्णन किया है। उसके सिद्धान्तसे जीवकी तीन अवस्थाएँ हैं,—

वृद्धावस्था, जीवन्मुक्तावस्था और निर्वाणावस्था। इनमें वृद्धावस्था गङ्गाजलमें पड़े उस घड़ेकी अवस्थाके समान है, जिसमें एक भी छेद नहीं है ; हवा जानेकी भी जगह नहीं है। इसका मतलब यह है कि, गङ्गामें मुँह वन्दकर छोड़ देनेसे जैसे घड़ेका जल सड़ जाता है, वैसे ही संसारी जीव, माया द्वारा आवद्ध होनेसे, दुःख-दावानल द्वारा जल-भुन जाता है। जीवन्मुक्तावस्थाका जीव उस घड़ेके समान है, जिसमें अनेक छिद्र हैं। मतलब,—जैसे फूटे घड़ेमें अमृत-समान गङ्गाजल बराबर जाया करता है और गङ्गा तथा घड़ेसे सदा एकता बनी रहती है, वैसे ही जीवन्मुक्त पुरुषकी आत्मामें बराबर अमृत-स्वरूप ब्रह्मानन्दरस जाया करता है और ब्रह्मके साथ सदा उसकी एकता बनी रहती है। निर्वाणावस्था या विदेहावस्थाके जीवकी हालत उस घड़ेके समान है, जो गङ्गाजलमें अपना अणु-परमाणु तक मिला चुका है। वहाँ न तो कलसी है, न गङ्गाजल है, न जीव है, न ब्रह्म है,—जो कुछ है, वह एक है, जिसका नाम अनिर्वचनीय, निर्गुण और सच्चिदानन्द है। वेदान्तका यही ब्रह्मानन्द मुक्ति है।

मुक्ति पानेके लिये प्रायः सभी दर्शनोंमें तत्त्वज्ञान आवश्यक माना गया है। यह तत्त्वज्ञान साङ्ख्यमतमें प्रकृति और पुरुषका भेदज्ञान है। वेदान्तमें जीव और ब्रह्मके ऐक्य-ज्ञानको तत्त्वज्ञान माना गया है। इधर न्यायमें पदार्थोंकी आलोचना करके जीवकी शरीरसे भिन्नताके ज्ञानका नाम तत्त्वज्ञान है। वैशेषिकका सिद्धान्त है, पदार्थोंका तत्त्व जान लेनेसे तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति हो

जाती है। योगके मतमें सुखदुःख चित्तके धर्म हैं; ८
साथ उनका कोई सम्पर्क नहीं है। इस प्रकारका तत्त्वज्ञान प्रा
करनेपर चित्तकी शुद्धि हो जाती है, जिससे मोक्ष मिल जाता
मीमांसकोंका तत्त्वज्ञान है कर्मकाण्डके विघ्नोंको दूर
उपाय जानना। उनके मतसे सुचारु रूपसे वैदिक कर्म
पर स्वर्ग या मुक्ति मिलती है। तात्पर्य कि, असल बात वही
एक; केवल भेद है ज्ञान-लाभकी उपाय-परम्परामें। किस
वस्तुका क्या नाम है, किसका ज्ञान कैसे होता है, फिर ज्ञान-प्राप्ति होनेपर कैसे मुक्ति मिलती है; केवल इन्हीं विषयोंमें परस्पर मतद्वैध है। साङ्ख्यकर्त्ता कपिल मुनिके सिद्धान्तसे प्रकृति, बुद्धि आदि पचीस तत्त्वोंसे संसारकी सृष्टि होती है। प्रायः वेदान्त-प्रणेता महर्षि व्यास या बादरायणकी भी ऐसी ही सम्मति है। इधर न्याय-दर्शन-रचयिता गोतम ऋषि कपिल मुनिके पचीसों तत्त्वोंको अपने पदार्थों में ही अन्तर्भूत कर लेते हैं। ऋषिवर कणाद सात ही पदार्थ मानकर उन्हींके भीतर सारे चर-अचरको रख लेते हैं। इस लिये जान पड़ता है, किसीने संक्षेपसे, किसीने विस्तारसे, किसीने सूत्र-रूपसे, किसीने व्याख्यारूपसे, अपना-अपना मन्तव्य प्रकाशित किया है; मूल विषय सबका एक ही है। उदाहरणस्वरूप यह समझा जा सकता है कि, जैसे पाणिनिके तीन-तीन सूत्रोंको 'कलाप'ने अपने एक-एक सूत्रमें ही कर लिया है और मुग्धबोधव्याकरणने और भी संक्षिप्त कर लिया है, वैसे ही दर्शनकारोंने भी, तत्त्वालोचनाके सम्बन्धमें, संक्षेप-

विस्तार किया है। फलतः "नदिया एक, घाट वहुतेरेके" कथनानुसार मार्ग भिन्न भिन्न हैं, गन्तव्य स्थान एक है।

मनुष्यकी सृष्टि क्यों होती है? उसके जन्म, मृत्यु क्यों होते हैं? संसारकी सृष्टि क्यों होती है? इसका प्रलय क्यों होता है? जन्मसे ही कोई राजकुमार और कोई दीन क्यों होता है? इत्यादि अत्यन्त गहन प्रश्नोंके उत्तरमें हमारे यहाँके सभी दार्शनिकोंने एक कर्म-फल या अदृष्ट माना है।

यह तो हुई भारतीय दर्शनोंकी वात; अब यूरोपीय दर्शनोंकी ओर देखिये। कितने ही विषयोंमें हमारे दर्शनोंके साथ उनका स्पष्ट ऐक्य है। जहाँ तहाँ तो केवल नाममें विभिन्नता है! पहले प्रकृतिकी ही वात लीजिये। साङ्ख्य-शास्त्रकी जो प्रकृति है, उसे ही यूरोपीय दार्शनिक Matter, Element, Ether और Protyle कहते हैं। जैसे साङ्ख्य मतमें प्रकृतिकी उत्पत्ति या विनाश नहीं है, वैसे ही हर्वर्ट स्पेन्सरके मतमें मैटर कभी उत्पन्न या विनष्ट नहीं होता। जैसे साङ्ख्य प्रकृतिकी विकृतिको ही सृष्टि मानता है, वैसे ही स्पेन्सर भी मैटरकी अवस्थाके परिवर्त्तनको ही सृष्टि मानते हैं। डार्विन साहव (Charles Darwin) की "Evolution Theory" या विवर्त्तवादका भी यहाँ मेल देखनेमें आता है। वे अपनी "The origin of species by means of Natural selection" नामकी पुस्तकमें लिखते हैं,—"नाना तरहकी गुल्म-लताएँ या पशु, पक्षी आदि कभी अलग-अलग नहीं वनाये गये हैं; जगत्के तत्त्वोंकी वार वार

अवस्थाएँ बदलनेसे ही उनकी, विभिन्न रूपोंमें, सृष्टि हुआ है।" उन्हींका मत है कि, परिवर्त्तनके घात-प्रतिघातोंसे बन्दरसे वनमानुष और वनमानुषसे मनुष्यकी उत्पत्ति हुई सुतरां, साङ्ख्यकी विकृतिरूप भित्तिपर ही डार्विनका ... प्रचलित हुआ मालूम होता है।

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक सर विलियम क्रुक्सके सिद्धान्तसे पदार्थोंमें प्रोटाइल है। वही संसारका प्रधान उपादान कई पदार्थोंके साथ उसके घात-प्रतिघातसे जगत्की सृष्टि हैं। इस सिद्धान्तसे मालूम होता हैं,प्रोटाइल ही आदि पदार्थ है वही प्रकृति है। बहुत दिनोंसे पाश्चात्य वैज्ञानिक ए या भूतसमष्टिके समवायसे पृथिवीकी सृष्टि मानते हैं। मतसे भूतोंकी संख्या कभी चौसठ, कभी पैंसठ और कभी या इससे भी अधिक पायी जाती है। परन्तु मूल उपादान (उनके समवाय) केवल चार हैं,—वायु, जल, अग्नि और मृत्तिका। इनके सिवा वैज्ञानिक उपायसे जो जो पार्थिव सामग्री द्रवीभूत नहीं होती है, उनके मतसे वह सब सामग्री भी एलिमेण्ट ही है। हिन्दूदर्शनोंमें जैसे भूत-संख्यामें कमीवेशी है, वैसे ही वहाँ भी। परन्तु इस विषयमें प्रायः सभी, प्राच्य और पाश्चात्य, एकमत हैं कि, प्रकृतिकी विकृतिसे ही सृष्टि होती है।

पहले पहल ग्रीसमें डेमोक्रेटसने परमाणुवादका प्रचार किया था। इसके बाद एपिक्यूरसने इसकी और प्रतिष्ठा बढ़ाकर परमाणुवादका प्रचार किया। इस विचारसे यूरोपमें परमाणु-

वादकी भित्ति ५१० पूर्व खृष्टाब्दमें प्रतिष्ठित हुई जान पड़ती है। अन्तको अठारहवीं शताब्दिमें जान डाल्टनने, रसायन-विज्ञानकी आलोचनामें, परमाणुतत्त्वको एक अभिनव वैज्ञानिक अवयव मान कर * ब्रिटेनमें खूब यश पैदा किया है। पाठकोंमेंसे अनेक सज्जनों को मालूम होगा कि, हमारे यहाँ इस परमाणुवादके प्रचारक महर्षि कणाद हैं। कणादके मतके साथ यूरोपके Atom या Atomic Theory के सङ्ग प्रायः पूरा सादृश्य है। परमाणुवादी कहते हैं, सृष्टिकर्त्ताकी सहायताके विना ही, परमाणुओंकी क्रिया द्वारा, सृष्टि हो जाती है।

जैसे महर्षि कपिल सृष्टि-कार्यमें ईश्वरकी अनावश्यकता और ईश्वरास्तित्वमें प्रमाणाभाव मानते हैं,वैसे ही कितने ही यूरोपीय दार्शनिक भी मानते हैं। जान स्टुअर्ट मिलके मतसे ईश्वर तो हैं; परन्तु उनके अस्तित्वका कोई प्रमाण नहीं पाया जा सकता। वे कहते हैं,—"सृष्टि-रचनाको देखकर ईश्वरकी सत्ता स्वीकार की जा सकती है ; परन्तु इससे उसकी सर्वज्ञता या सर्वशक्तिमत्ता नहीं मानी जा सकती। कारण यह है कि, यदि वह सर्वशक्तिमान् होता, तो हमलोग संसारमें किसीको सुखी और किसीको दुःखी नहीं देखते ; महामारी और प्रलय द्वारा जीवोंका विनाश नहीं होता ; पापियोंका आधिपत्य और पुण्यवानोंको क्लेश नहीं होता। इसलिये ईश्वर कभी भी सर्वशक्तिमान् नहीं है और साथ

---

* *John Dalton's Atomic Theory in the New System of Chemical Philosophy.*

ही वह दयावान् भी नहीं है। यदि वह सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ होता, तो सृष्टि क्षणभङ्गुर नहीं होती।" स्पेन्सर साहबके मतसे,—"ईश्वर सृष्टिकर्त्ता है या नहीं ; इसका निर्णय नहीं हो सकता। जगत्‌का कारण अज्ञात है; इसलिये ईश्वर ज्ञाना-तीत है।"

इसी प्रकार प्लेटो और काण्टके आइडियालिज्म (Idealism) तथा मायावादसे भी विशेष सादृश्य है। साङ्ख्यशास्त्रके दुःखवाद और शोपेनहरके पेसिमिज्म (Pessimism), बौद्धोंके निर्वाण और श्लेयरके आब्जर्प्सन (Absorption), न्यायके अन्योन्याश्रय-दोष और पाश्चात्य लाजिकके पेटिसियो प्रिन्सिपिया (Petitio Principia) तथा वेदान्तके ब्रह्मवाद और पाश्चात्य दर्शनके पान्थेइज्म (Panthiesm) के सङ्ग पूरा सादृश्य है।

हां, यह बात अवश्य है कि, हमारे आस्तिक दर्शनोंके प्रमाणों-की प्रणालीके साथ यूरोपीय दार्शनिकोंकी प्रमाण-शैलीसे विशेष सादृश्य नहीं है। हमारे यहाँ शब्दप्रमाणकी प्रधानता है और पाश्चात्य दार्शनिकोंके यहाँ प्रत्यक्ष तथा अनुमान प्रमाणोंकी ही प्रतिष्ठा है। तो भी चार्वाक और कणादके मतसे उनकी प्रमाण-शैलीका भी कुछ मेल है। चार्वाकके मतानुसार एकमात्र प्रत्यक्ष ही पुष्ट प्रमाण है। अनुमानकी जड़ भी वही है। अतएव उसके सिवा किसी दूसरे प्रमाणको माननेकी कोई जरूरत नहीं है। चार्वाक लोग कहते हैं,—"अँधियारे मकानमें केवल फूलकी

गन्ध भर पा कर जो उसमें फूल होनेका अनुमान किया जाता है, उसका यह कारण है,—इसके पहले, गन्ध पानेवालेने फूलका जो आघ्राण किया था, उसके संस्कारवश यहां गन्धका अनुमान करना पड़ता है। इसलिये मुख्य प्रमाण प्रत्यक्ष ही है।" प्रायः यही मत मिल, ह्यूम आदिको भी पसन्द है। इस विषयपर खूब वाद-विवाद भी है। एक पक्ष कहता है—"यदि प्रत्यक्षको ही मूल प्रमाण माना जाय, तो फिर काल और आकाश प्रभृतिका प्रत्यक्ष कहाँ होता है? अतः अनुमान प्रमाण भी मानना आवश्यक है।" इस पर दूसरा दल उत्तर देता है,—"समानान्तराल रेखाका मेल नहीं देखा जाता ; तो क्या सब समयोंमें समानान्तराल रेखा ही देखी जाती है? इसलिये यही निश्चय करना ठीक है कि, दो एक दृष्टान्त देख कर जो ज्ञानका सञ्चार होता है, उसीसे हमलोग अन्यान्य विषयोंका सिद्धान्त कर लेते हैं। इस हिसाबसे प्रत्यक्षके सिवा अन्य प्रकारसे भी ज्ञान होता है। परन्तु मूल वही प्रत्यक्ष है।" जो हो, परन्तु इसमें भी सन्देह नहीं कि, हिन्दूदार्शनिकोंने इन सब युक्तियोंका खण्डन कर अन्यान्य प्रमाणोंका होना परम आवश्यक प्रमाणित कर दिया है।

यहाँ मिल साहब कार्य-कारणका सम्बन्ध स्वीकार करते हैं और स्पेन्सर पुरुषानुक्रमिक संस्कार मानते हैं। ह्यूम और बार्कले कहते हैं,—"जो इन्द्रिय-ज्ञानसापेक्ष है, वही पदार्थ है।" काण्ट कहते हैं,—"जो वाह्य वस्तु आत्मामें प्रतिभासित नहीं होती, उसका ज्ञान ही नहीं होता है।" यह कहनेकी जरूरत नहीं

दर्शन परिचय

है कि, ये ऊपरके दोनों ही मत मुनिवर कपिलके मानस ८
अन्तर्भूत हैं। वाचस्पति मिश्रने, इस विषयमें, एक दृष्टान्त, अपनी साङ्ख्यटीकामें, दिया है। उन्होंने लिखा है, "जैसे ग्राम्य पञ्चायत कर-संग्रह कर विभागीय (Divisional कर्मचारियोंको देती है; फिर वे अपनेसे उच्च कर्मचारी तथा भी अपनेसे क्रमशः उच्चतर, उच्चतम कर्मचारीको देते हैं एवं तरह अन्तमें वह 'कर' राजाको मिलता है, वैसे ही पदार्थ-भी, पहले बाहरी इन्द्रियोंको ही होता है, अनन्तर ज्ञानेन्द्रियोंको और अन्तको वह आत्माको होता है।" पाश्चात्योंके पदार्थज्ञान-विषयक जो सिद्धान्त हैं, उन सबका तत्त्व इसी एक ही दृष्टान्त में, बड़ी खूबीसे, आ जाता है।

एक विषयमें प्राच्य और पाश्चात्य दर्शनोंमें खूब मतभेद है। वह विषय है कर्म-फल या अदृष्ट। आस्तिक हिन्दू-दर्शनोंको छोड़ कर जगत्के किसी भी दर्शनने कर्म-फलको नहीं माना है। इसके सिवा कर्म-फलात्मक या अदृष्टमूलक ही सृष्टि होती है,—इस बातको भी किसीने नहीं माना है। संसारके दर्शनोंमें मतविभिन्नताका प्रधान विषय यही है।

इस एक ही जिल्दके ग्रन्थको तीन खण्डोंमें विभक्त करनेका विचार किया गया है। प्रथम खण्डमें आस्तिक या वैदिक दर्शनोंका परिचय दिया जायगा। द्वितीय खण्डमें अवैदिक प्राच्य दर्शनोंका परिचय दिया जायगा। इसी खण्डमें जिन दर्शनोंके स्वतन्त्र

हमारे ग्रन्थकी सङ्कलन-शैली

सूत्र-ग्रन्थ नहीं हैं, उनका भी परिचय रहेगा। तृतीय खण्डमें यूरोपीय दर्शनोंका परिचय दिया जायगा। इसी खण्डमें चीन, मिश्र आदि संसारके देशोंके विभिन्न दर्शनोंका भी परिचय रहेगा। ऐसी चेष्टा की जा रही है कि, संसारका ऐसा कोई भी दर्शन नहीं छूटने पावे, जिसका परिचय—चाहे वहुत ही संक्षिप्त क्यों न हो—इस ग्रन्थमें न आ जाय। साथ ही इस बातकी ओर पूरी दृष्टि रखी जायगी कि, संसारके किसी भी दर्शनकी कोई भी उल्लेखनीय बात न छूट जाय।

हमारी धारणा है कि, सुयोग्य पुरुषोंके कीर्त्ति-स्मरणसे मनुष्यकी उन्नतिका वहुत सम्बन्ध है। कभी-कभी महापुरुषोंकी जीवनीसे मनुष्यकी आत्मा और उसकी अनन्त शक्तियाँ जाग उठती हैं। इसलिये बड़े लोगोंका जीवन-वृत्तान्त महामूल्यवान् समझा जाता है। विशेषतः जिन्होंने मनुष्य-लोकके उद्धारके लिये गहन-गिरि-कन्दराओंमें बैठकर,संसार-सागरमें, दर्शन-सुधा वहायी है और जिन्होंने अनेक विघ्न-बाधाओंको झेल कर अपनी सजीव तथा अमृतमयी लेखनीसे अपनी मातृभाषाओंको ग्रन्थरत्नराजिसे अलंकृत किया है, उनकी जीवनियाँ, कमसे कम हमारे ध्यानमें, और भी पठनीय, मननीय तथा प्रातः-स्मरणीय हैं। इसी विचारसे प्रेरित होकर हमने इस ग्रन्थमें प्रत्येक दर्शनाचार्यका संक्षिप्त जीवन-चरित्र भी देना निश्चय किया है। फलतः पहले दर्शनके प्रणेता, प्रचारक या प्रवर्त्तकका जीवन-वृत्तान्त देकर उनके दर्शनका परिचय दिया जायगा।

हमें पूर्ण प्रतीति है, हमारे प्रवीण पाठक इस पवित्र और प्रणालीको पूरा पसन्द करेंगे।

प्राच्य दर्शनोंमेंसे पहले किस दर्शनका परिचय चाहिये,—इस विषयमें खूब मतभेद है। "सर्वदर्शनसंग्रह" माधवाचार्यने सबसे पहले चार्वाक-दर्शनका परिचय दिया और सबसे अन्तमें पातञ्जलदर्शनका। यही प्रणाली कई आधुनिक विद्वानोंने भी अवलम्बन की है। प्रोफेसर मैक्स-मूलरने सबसे पहले वेदान्तका परिचय दिया है और सर्वान्त-में वैशेषिकका। कितने ही यूरोपीय विद्वान् इसी ढर्रे पर गये हैं। महामहोपाध्याय प० चन्द्रकान्त तर्कालङ्कारने पहले वैशेषिकदर्शनका परिचय दिया है और सबसे अन्तमें वेदान्तका। प० दुर्गादास लाहिड़ीने पहले सांख्यदर्शनका परिचय दिया है और अन्तमें वेदान्तका। आर० सी० दत्तके "हिन्दूशास्त्र"में प० कालीवर वेदान्तवागीशने पहले न्यायदर्शनका परिचय कराया है और अन्तको वेदान्तका। इस तरह इस विषयमें "मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना" की कहावत खूब चरितार्थ हुई है। इस दशामें हमारे लिये भी इस विषयका सिद्धान्त स्थिर कर लेना बहुत बड़ी कठिनाई है।

बहुत कुछ सोचते-सोचते पहले हम इस सिद्धान्त पर पहुँचे हैं कि, प्रथम खण्डमें वैदिक या आस्तिक दर्शनोंका ही परिचय देना उत्तम होगा। इसके इतने कारण हैं,—वैदिकता, उपयोगिता, रचना-कुशलता और विस्तार। चार्वाक, बौद्ध और जैन आदि जो

दर्शन हैं, वे अवैदिक हैं ; इस लिये उन्हें दूसरे खण्डमें स्थान दिया गया है। पाशुपत, रसेश्वर और प्रत्यभिज्ञ आदि साम्प्रदायिक दर्शनोंसे लोग वेदान्त, योग आदि दर्शनोंकी विशेष उपयोगिता समझते हैं ; इस लिये उन्हें भी दूसरे ही खण्डमें रखा गया है। यद्यपि बौद्ध और जैन दर्शनोंमें भी रचना-कुशलता कम नहीं हैं ; परन्तु न्याय, वैशेषिक आदिका रचनाचातुर्य या विषय-सन्निवेश-प्रणाली उच्चतर तथा सुगम है ; इस लिये भी बौद्ध आदि दर्शनोंको दूसरे ही खण्डमें रखा गया है। इन बातोंके सिवा न्याय, वेदान्त आदि दर्शनोंको प्रथम खण्डमें रखनेका कारण उनका विस्तार भी है, जो सर्ववादिसम्मत है। यहाँ यह भी कह देना उचित होगा कि, और किसी विशेष कारणसे नहीं ; केवल भारतीय और अभारतीय दर्शनोंके खयालसे संसारके अन्यान्य दर्शनोंका परिचय तृतीय खण्डमें देना स्थिर किया गया है।

अब रही यह बात कि, प्रथम खण्डमें भी सबसे पहले किस दर्शनका परिचय देना चाहिये। पहले तो इसी बातका निर्णय करना अत्यन्त दुरूह है कि, सबसे पहले कौनसा दर्शन बना। प्रायः प्रत्येक दर्शनमें प्रत्येक दर्शनका खण्डन है। कई वैदिक दर्शनोंमें तो बौद्धदर्शनका भी खण्डन है! साङ्ख्यमें वेदान्त आदिके खण्डनके सिवा बौद्धदर्शनके साम्प्रदायिक आचार्य माध्यमिक,वैभाषिक आदिके मतोंका भी अच्छा खण्डन है। यही बात वेदान्तदर्शनमें भी है। वेदान्तदर्शन (द्वितीय अध्याय,

प्रथम पाद) के दस सूत्रोंमें सांख्यका, ग्यारहवेंसे सूत्रोंमें वैशेषिकका, अठारहवेंसे बत्तीसवें सूत्रोंमें बौद्धदर्शनका तेतीसवेंसे छत्तीसवें सूत्रोंमें जैन दर्शनका, सैतीसवेंसे इकतालीसवें सूत्रोंमें पाशुपत दर्शनका और बयालीसवेंसे पैतालीसवेंमें शाक्त दर्शनका, भली भाँति,खण्डन किया गया है। यही हालत न्याय आदि दर्शनों और उनके भाष्यकारोंकी भी है। इन खण्डन-मण्डनोंपर दृष्टि देनेसे कोई भी निर्णय नहीं कर सकता कि, कौनसा दर्शन पीछे बना है और कौनसा आगे। जो हो, हमने भी कई प्रसिद्ध पण्डितोंकी दृष्टिके अनुसार, यही अनुमान लगाया है कि, वेदोंमें सूक्ष्मरूपसे सभी दर्शनोंकी चर्चाएँ आयी हैं और उन्हीं चर्चाओंके आधारपर हर एक दर्शन-प्रणेताने अपने विचारानुसार अपना दर्शन बनाया एवं अपनेसे विभिन्न विचारों के दर्शनोंका खण्डन किया है। बस, इसी कारणसे हर एक दर्शनमें हर एक दर्शनकी चर्चा और खण्डन आ गया है। इसलिये इन खण्डनोंसे किसी दर्शनके निर्माण-कालका अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

अस्तु। साङ्ख्य सूत्रोंके भाष्यकार विज्ञानभिक्षुने जो यह अनुमान किया है कि, 'विष्णुके अवतार महर्षि कपिलने ही सर्वप्रथम षडध्यायी सूत्र और तत्त्वसमास सूत्र बनाये हैं,' उसीके अनुसार हमने भी साङ्ख्य दर्शनको ही सर्वादिम दर्शन मान कर सबसे पहले इसी दर्शनका परिचय दिया है। सबसे पहले इसका परिचय देनेका एक यह भी कारण है कि,यह सभी दर्शनोंसे सुगम

दर्शन हैं। रचना-प्रणालीके अनुसार न्यायदर्शन और वैशेषिक दर्शनका भी पहले परिचय दिया जा सकता था; परन्तु उनमें कठिनता विशेष है; इसलिये पहले उनका परिचय देना कितने ही पाठकोंके लिये उद्वेगजनक भी हो सकता था। यही बात मीमांसा और वेदान्तकी भी है। साङ्ख्यदर्शनसे योगदर्शनका बहुत कुछ मेल है और उसमें भी वैसी ही सरलता है; इसलिये उसके बाद योगदर्शनका परिचय दिया गया ह। सिद्धान्तकी सूक्ष्मताके कारण प्रथम खण्डमें, सबसे अन्तमें, वेदान्तका परिचय दिया गया है। यहाँ यह भी कह देना ठीक होगा कि, प्रत्येक दर्शनके परिचयमें उसका पूरा विवरण, उसकी अन्यान्य दर्शनोंसे तुलना, उसके आचार्यके अवान्तर भेद, उसका समष्टिरूपसे विशद वर्णन, दर्शन-सूत्रका रचना-काल, प्रत्येक दर्शनका क्रमिक इतिहास आदि विषय, यथाशक्य, दिये गये हैं।

बस, इस विषय-प्रवेशका जो हमारा अन्तिम वक्तव्य है, उसे हम नीचे लिखी ऋचा द्वारा सूचित कर इसे यहीं समाप्त करते हैं,—

"यो नः पिता जनिता यो विधाता,
सामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामधा एक एव,
तं संप्रश्नं भुवना यंत्यन्या॥"

—ऋग्वेद, १० वाँ मण्डल, २२वां सूक्त, ३री ऋचा।

दर्शन परिचय

'जो हमारा (चराचरका) पिता (रक्षक), जन्मदाता विधाता है, जो विश्व-जगत्के समस्त धाम जानता है और अनेक देवोंके नाम धारण करके भी एक और अद्वितीय है, जाननेके लिये यह निखिल ब्रह्माण्ड उत्सुक है।'





प्रथम खण्ड ।



सांख्य-दर्शनके प्रणेता—महर्षि कपिल ।

महर्षि कपिल

(जीवनवृत्तान्त और विविध वक्तव्य ।)

हमारे यहाँ कपिल नामके कई महापुरुषोंका उल्लेख मिलता है। पुराणोंमें लिखा है कि, स्वायम्भुव मन्वन्तरमें एक कर्दम नामके प्रजापति थे। कारणवश स्वयं स्वायम्भुव मनुकी कन्या देव-हुतिसे इनका विवाह हुआ था। ये बड़े नामी तपस्वी थे। एक-बार इन्होंने हजारों वर्ष, विन्दुसर तीर्थमें, घोर तपस्या की थी। इन्हींके जन्मविद्वान् कपिल नामके पुत्र हुए। कपिलजीके जन्मके समय आकाशमें देवोंने दुन्दुभि बजायी, गन्धर्वोंने मनोमोही गाने गाये, अप्सराओंने नयनहारी नृत्य किये, पक्षियोंने फूलोंकी वृष्टि की और सारी दिशाएँ, आनन्दसे, हँस पड़ीं। इसी समय स्वयं ब्रह्मा महाराज कर्दम मुनिके आश्रम पर आकर इनसे बोले,—"मुनिवर! तुम्हें यह जो सुपुत्र हुआ है, वह ईश्वरका अवतार है और वह संसारमें साङ्ख्य मतका प्रचार करेगा। विश्वमें उसका नाम 'कपिल' विख्यात होगा।"

कुछ ही दिनों बाद ब्रह्माकी बातें सच्ची निकलीं। कपिलजी पूरे ज्ञानी हो गये और उन्होंने स्वयं अपने पिता तथा माताको

साङ्ख्य शास्त्रका ज्ञान प्रदान किया। इस साङ्ख्यज्ञानका श्रीमद्भागवतमें पूरा विवरण दिया हुआ है।

ईश्वरकृष्णकी साङ्ख्यकारिकाके भाष्यकार गौड़पाद स्वामी * ने लिखा है कि, साङ्ख्यशास्त्रके प्रथम प्रचारक या उपदेष्टा कपिल मुनि ब्रह्माके मानस पुत्र थे। अपनी बातके प्रमाणमें इन्होंने एक श्लोक भी उद्धृत किया है, जिसका तात्पर्य यह है कि, सनक, सनन्द, सनातन, कपिल, आसुरि, वोढु और पञ्चशिख आदि सातों पुरुष ब्रह्माके मानस पुत्र हैं। गौड़पादके सिद्धान्तसे ये ही कपिल साङ्ख्यशास्त्रके उपदेष्टा हैं।

महाभारतके कथनानुसार महर्षि कपिल अग्निके अवतार हैं और इन्होंने साङ्ख्य तथा योगका संसारमें प्रवर्त्तन किया है। † महाभारतमें यह भी लिखा है कि, सूर्यकिरणोंने गोरूपमें आकर कपिल मुनिसे धर्मतत्त्व पूछा था।

श्वेताश्वतर उपनिषद्में एक कपिल नामके महर्षिका उल्लेख है, जिन्हें ब्रह्माने सबसे पहले ज्ञान दान दिया था और स्वयं उत्पन्न भी किया था। *

श्रीमद्भागवतगीतामें एक कपिल नामके मुनिका नाम लिया

---

* प्राच्य विद्वानोंके मतसे ये व्यासपुत्र शुकदेव महाराजके प्रशिष्य थे और पाश्चात्य पण्डितोंकी रायमें ये छठीं शताब्दिमें वर्त्तमान थे।

† कपिलं परमर्षिञ्च यं प्राहुर्यतयः सदा। अग्निः स कपिलो नाम साङ्ख्ययोगप्रवर्त्तकः।

* ऋषिं प्रसूतं कपिलं यँस्तमग्रे ज्ञानैर्बिभर्त्ति। श्वेताश्वतर, ५।२

गया है, जो, स्वयं भगवान्‌के मुखसे, सिद्धर्षियोंमें श्रेष्ठ माने गये हैं। *

वाल्मीकीय रामायणमें लिखा है कि, पाताल-लोकमें महाराजा सगरके साठ हजार पुत्रोंको जला कर कपिल मुनिने भस्म कर दिया था।

शिवसंहितामें एक योगिश्रेष्ठ कपिलका वर्णन आया है।

बौद्धोंके ग्रन्थोंमें लिखा है,—इक्ष्वाकुवंशीय राजा विरोधनने अपनी छोटी स्त्रीकी प्रसन्नताके लिये अपनी बड़ी रानीके चार पुत्रोंको निर्वासित कर दिया था! वे शिशु, घूमते-घूमते, अपनी पाँच बहनोंके साथ, कपिल मुनिके आश्रममें आये। वहाँ बहुत दिनोंसे कपिल जी रहते थे। अन्तको वे ही कपिल मुनि गौतम बुद्धके रूपमें आविर्भूत हुए। इसीसे बुद्धदेवकी जन्मभूमि का नाम 'कपिलवस्तु' पड़ा।

इसके सिवा महाराजा वितथ और वसुदेवके पुत्रोंके नाम भी कपिल हैं।

कपिलसंहिता नामक एक उपपुराण बनाने वाले कपिलका भी परिचय पाया जाता है।

विष्णुसंहितामें भी एक कपिलका उल्लेख है।

स्वामी शङ्कराचार्य भी अपने शारीरक भाष्यमें दो कपिल मान गये हैं। †

* गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः। गीता, १०।२५

† अन्यस्य च कपिलस्य वासुदेवापरनाम्नः स्मरणात्। शारीरकभाष्य।

इन सब उक्तियों पर विचार करनेसे यह पता नहीं चल सकता कि, साङ्ख्य शास्त्रके प्रणेता महर्षि कपिल कब हुए और इनमेंसे वे कौन थे ! इधर पश्चिमी और पूर्वी विद्वानोंमें भी खूब मतभेद है। पश्चिमी विद्वानोंमेंसे कई एकने अनुमान लड़ाया है कि, सन् इस्वीसे दो सौ वर्ष पूर्व कपिल और पतञ्जलि हुए थे। किसी किसीके मतसे सन् ईस्वीसे तीन सौ वर्ष पहले और कुछ लोगोंके मतसे चार सौ वर्ष या इससे भी तीस-चालीस वर्ष पहले हुए थे।

दूसरी तरफ साङ्ख्यके भाष्यकार विज्ञानभिक्षुने विष्णुके अवतार कपिल मुनिको ही साङ्ख्यका कर्ता माना है। उदयनाचार्यके "आत्मतत्त्वविवेक" नामक ग्रन्थके टीकाकारोंने भी इसी बातका समर्थन किया है। और-और पुस्तकोंमें भी यही बात पायी जाती है।* कई पुराणोंमें साङ्ख्य मतका विवरण पढ़ कर यही बात जँचती भी है।

जो हो, किन्तु इसमें तो सन्देह ही नहीं कि, महर्षि कपिलने जो ज्ञानगरिमाकी प्रतिभाका पुनीत परिचय दिया है, वह हिन्दू-दर्शन और आर्यजातिके लिये सबसे बड़े गौरवकी चीज है। आज यह समस्त विश्व स्वीकार कर रहा है कि, आत्मस्वातन्त्र्यका जैसा सरल मार्ग कपिल ऋषिने दिखाया है, वह किसी दर्शन-कर्त्ताने नहीं दिखाया है। यही कारण है कि, सब दर्शनोंसे

* कपिलो वासुदेवः स्यात्। ÷ ÷ ÷ ज्ञानेन मुक्तिं कपिलः। सर्वसिद्धान्तरत्न, ६ । १—२

अधिक प्रेमी इसी दर्शनके हैं और विभिन्न भाषाओंमें इसी दर्शन-का विशेष अनुवाद हुआ है। सांख्यके सामने वेदान्तियों जैसे विद्वान् और नैयायिकों जैसे तार्किक भी सिर नीचे कर लेते हैं। फलतः महात्मा कपिल योगी रहे हों या महर्षि, मुनि रहे हों या पञ्चम ईश्वरावतार; परन्तु इसमें तो जरा भी सन्देह नहीं कि, वे आर्यजातिके मुखोज्ज्वलकारी, मनुष्यजातिके पथ-प्रदर्शक, जगद्वन्द्य विद्वान् और प्रातःस्मरणीय महापुरुष थे।

यहाँ यह भी कह देना अनुचित नहीं होगा कि, महर्षि कपिल के वंशोद्भव 'कपिल' नामके ब्राह्मण सुराट्, वड़ोच और जम्बुसरमें बहुत हैं।

वर्त्तमान वड़ोच जिलेके अन्तर्गत, नर्मदा-नदीके पास, एक कपिलक्षेत्र भी है, जिसका स्कन्दपुराण, रेवाखण्ड, त्रयोदश अध्याय, में अच्छी तरह माहात्म्य वर्णित है।



साङ्ख्यदर्शन ।

(साङ्ख्यदर्शनका प्रशंसावाद, साङ्ख्यशास्त्रके नाम, साङ्ख्यसूत्र और साङ्ख्यकारिका, साङ्ख्य और ईश्वर, त्रिविध प्रमाण, वेद और साङ्ख्य, सत्कार्यवाद, साङ्ख्यका पदार्थ-विभाग, चेतनता और पुरुष, साङ्ख्यकी प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, तन्मात्राएं और इन्द्रियां, पंचमहाभूत, शरीर-सृष्टि, प्राण, काल और दिक्, षष्टितन्त्र और विविध वृत्तियाँ, सृष्टिका लय, त्रिविध दुःख, स्वर्ग और दुःखनिवृत्ति, कैवल्य या मुक्ति, विविध विषय ।)

साङ्ख्यदर्शनका प्रशंसावाद

हिन्दूशास्त्रोंपर दृष्टि डालनेसे जान पड़ता है कि, साङ्ख्य-शास्त्र बहुत ऊँचे दर्जेका ज्ञानगर्भ दर्शन है। अद्वैतवादके कट्टर पक्षपाती और प्रचारक स्वामी शङ्कराचार्यने भी इसे प्रधान दर्शन माना है। उन्होंने अपने वेदान्त-दर्शनके शारीरक नामक भाष्यमें लिखा है, "हमारा प्रधान मल्ल है साङ्ख्य। इसे पराजित कर देने पर सभी पराजित हो जायँगे। इसके मतका पूरी रीतिसे खण्डन कर देनेपर सब मतवाद आप ही आप सिर झुका देंगे।" स्वयं भगवान्ने भी कहा है,—"न हि साङ्ख्यात्परं ज्ञानम्।"

अर्थात् साङ्ख्यसे बढ़कर और कहीं ज्ञान नहीं पाया जाता। सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ चाणक्यने अपने अर्थशास्त्र, १म अध्याय, में लिखा है, "साङ्ख्यं × × × चेत्यान्वीक्षकी।" मतलब कि, साङ्ख्य आन्वीक्षकी विद्या या मननशास्त्र है। साङ्ख्यसूत्रोंके भाष्यकार विज्ञानभिक्षुने लिखा है,—"साङ्ख्यशास्त्रं ज्ञान-सुधाकरम्।" अर्थात् साङ्ख्यशास्त्र ज्ञानकी सुधा या अमृतका आकर वा खान है। इन उक्तियोंपर विचार करनेसे स्पष्ट जान पड़ता है कि, साङ्ख्यदर्शन प्रधान दर्शन है और इसकी महिमा सर्ववादिसम्मत है।

साङ्ख्यशास्त्रके नाम

पहले ही कहा जा चुका है कि, सङ्ख्या शब्दका अर्थ सम्यक् ज्ञान है और जिसमें सम्यक् ज्ञानका विवरण या वर्णन है, उसका नाम साङ्ख्य है। महाभारतमें लिखा है,—"जो सम्यक् ज्ञानका उपदेश देते हैं और प्रकृति तथा चौबीस तत्त्वोंको कहते हैं, वे लोग साङ्ख्य कहाते हैं।" * इससे यह भी जाना जाता है कि, शास्त्र तत्त्वज्ञानका आगार है। इस श्लोकसे यह मालूम होता है कि, जिस दर्शनमें विवेक द्वारा आत्मज्ञान होता है उसीका नाम साङ्ख्य है।

साङ्ख्यसूत्रोंको शास्त्र भी कहा जाता है और दर्शन भी अर्थ

---

* "सङ्ख्यां प्रकुर्वते चैव प्रकृतिं च प्रचक्षते।
तत्त्वानि च चतुर्विंशत् तेन साङ्ख्याः प्रकीर्त्तिताः।" चौबीस विवरण आगे आवेगा।

इनका एक नाम साङ्ख्यशास्त्र है और दूसरा साङ्ख्यदर्शन। कपिलकृत साङ्ख्य शास्त्रमें ईश्वरका खूब खण्डन किया गया है ; इस लिये इसका एक नाम सेश्वर साङ्ख्य भी हैं। साङ्ख्य दर्शनका एक नाम षष्टितन्त्र भी है ; क्योंकि, इसमें साठ तरहके ज्ञातव्य उपदेश दिये गये हैं। इस शास्त्रके प्रणेता या प्रवर्त्तक कपिल ऋषि हैं ; इसलिये इसका एक नाम कापिल भी है। कुछ लोग इसे आदि दर्शन भी कहते हैं। *

साङ्ख्यसूत्र और साङ्ख्यकारिका

श्वेताश्वतर, मैत्रायणी आदि उपनिषदों, भागवत गीता, † भर्त्तृहरिशतक आदि पुस्तकों तथा वराहमिहिर, * शङ्कराचार्य आदि आचार्योंकी उक्तियोंसे यह जानना बहुत ही कठिन है कि, पहले साङ्ख्य सूत्र बने या कारिका। कारिका बनी तो किस आधार पर और कारिकाके पहले साङ्ख्यके कितने ग्रन्थ थे ? आजकल जो गौड़पाद-कृत कारिकाभाष्य, वाचस्पतिमिश्र-कृत साङ्ख्यतत्त्व-कौमुदी, विज्ञानभिक्षु-कृत साङ्ख्य-भाष्य और विज्ञानभिक्षु-कृत साङ्ख्यसार तथा साङ्ख्यप्रदीप, साङ्ख्यतत्त्वप्रदीप, भोजवार्त्तिक आदि इस दर्शनके भाष्यटीका-ग्रन्थ मिलते हैं, उनसे भी हमारे तीनों सन्देहोंका ठीक-ठीक निराकरण नहीं होता। यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि, सन् १३५० ई० के माधवाचार्य, सन् ११५०

---

* "पृथिवीर इतिहास", प्रथम खण्ड, देखिये।

† द्वितीय अध्याय, ३५ वाँ श्लोक।

* वराहमिहिर छठी शताब्दिमें हुए थे।

के वाचस्पति मिश्र, सन् ६५० के भर्तृहरि और सन् ६३० या ५९० के * शङ्कराचार्य आदिने वर्त्तमान साङ्ख्य सूत्रोंका उल्लेख नहीं किया है! माधवाचार्यने अपने "सर्व-दर्शन-संग्रह" में कारिकाके ही आधार पर साङ्ख्य मतका परिचय दिया है। वाचस्पति मिश्र अपनेको षड्दर्शनोंके टीकाकार बताते हैं; परन्तु उन्होंने ईश्वर कृष्णकी साङ्ख्यकारिकाकी ही टीका लिखी है — कहीं साङ्ख्य सूत्रोंका नाम तक नहीं लिया है! स्वामी शङ्कराचार्यने भी अपने वेदान्त-भाष्यमें साङ्ख्य सूत्रोंकी कहीं चर्चा नहीं की है और आवश्यकता पड़ने पर ईश्वर कृष्ण † की साङ्ख्यकारिका ही उद्धृत की हैं। इसलिये पश्चिमी विद्वानोंने निश्चित किया है कि, ईसाकी १४ वीं शताब्दिमें वर्त्तमान साङ्ख्य सूत्र बने हैं। कुछ यूरोपियन तो इन्हें १६ वीं शताब्दिमें बने मानते हैं। कितने ही प्राच्य विद्वान् भी इन सूत्रोंको अर्वाचीन ही मानते हैं। इसके सिवा कारिकाकी प्राचीनतामें एक बात और भी ध्यान देनेकी हैं।

ज्ञान-साम्राज्यमें त्रिपिटक धर्मशास्त्रके अध्यापक परमार्थ नामके एक विद्वान्ने साङ्ख्यकारिकाका, चीनी भाषामें, ~ ५४७ वेंसे ५६५ वें वर्षके भीतर, अनुवाद किया था। परमा' ५४७ में, जिस समय दक्षिणी चीनमें सम्राट् वु-टी राज्य क

* Indian Antiquaty XIII 95 और Jan. 1887 देखिये।

† विन्सेण्ट स्मिथके मतसे ईश्वर कृष्णका समय २०४ . लगभग है।

थे, चीन गया था। उसका एक नाम चान-टी भी था और वह ५८२ तक जिन्दा था। परमार्थके, कारिकाओंके, अनुवाद-के कितने ही अनुवाद और संस्करण हो गये हैं। इसके सिवा कई दार्शनिक विद्वानों और पुरातत्त्वज्ञोंके सिद्धान्तसे सन् ईस्वीके प्रायः सौ वर्ष पहले भी साङ्ख्यकारिकाका अस्तित्व मानना उचित समझा गया है। फलतः वर्त्तमान साङ्ख्य-सूत्रोंसे कारिकाकी प्राचीनता मानना सर्वथा युक्ति-संगत है।

साङ्ख्यकारिकामें लिखा है,—"पहले पहल महर्षि कपिलने पवित्र और श्रेष्ठ साङ्ख्यशास्त्रका उपदेश आसुरि मुनिको दिया और उन्होंने मुनिवर पञ्चशिखको दिया। पञ्चशिखने ही इसका संसारमें इतना विस्तार और प्रचार किया।" इतनी दूरतक तो कारिकासे पता चलता है; परन्तु यह पता कहींसे भी नहीं चलता कि, कपिलने कौनसा ग्रन्थ आसुरिको पढ़ाया और आसुरिने कौनसा ग्रन्थ पञ्चशिखको! साङ्ख्यसूत्रोंके भाष्यकार विज्ञानभिक्षुके मतसे कपिलजीने "तत्त्वसमास" नामका सूत्र-ग्रन्थ बनाया था। साङ्ख्यकी "सर्वोपकारिणी" नामक टीकाके लेखक महाशयने लिखा है,—"दुःखमय संसारसे जीवोंके उद्धारके लिये भगवान् कपिलने बाईस सूत्रोंमें तत्त्वोंकी सूचना की। उसी सूचनाका नाम "तत्त्वसमाससूत्र" रखा गया। यही ग्रन्थ साङ्ख्यका मूल ग्रन्थ है। सारा शास्त्र इन्हीं बाईस सूत्रोंके भीतर है। वर्त्तमान छः अध्यायोंवाला साङ्ख्यदर्शन भी इन्हीं सूत्रोंका विस्तार है और भगवान् कपिल द्वारा बनाया गया है।"

इसी सुरमें सुर मिलाकर विज्ञानभिक्षुने भी एक जगह लिखा है,—"मूल सूत्रोंका वर्त्तमान साङ्ख्यसूत्रोंमें प्रपञ्चन या विस्तार है ; इसीलिये इनका एक नाम साङ्ख्य-प्रवचन है।" कुछ लोगोंके मतसे असली साङ्ख्यसूत्र या तत्त्वसमाससूत्र अब कहीं नहीं मिलते। वे विलुप्त हो गये हैं। कुछ पश्चिमी विद्वानोंने भी इस बातको स्वीकार किया है। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि, तत्त्वसमाससूत्रोंको ही लेकर विज्ञानभिक्षुने, सतरहवीं शताब्दिमें, वर्त्तमान साङ्ख्यदर्शन बना डाला और अपना नाम नहीं दिया है! जो हो, साङ्ख्यशास्त्रका प्रतिपाद्य और तत्त्व समझनेके लिये वर्त्तमान साङ्ख्यसूत्र और ईश्वर कृष्णकी साङ्ख्यकारिका, ये ही दो ग्रन्थ, प्रधान आधार हैं।

सांख्यसूत्र छः अध्यायोंमें विभक्त हैं और सारी पुस्तकमें ४५६ सूत्र हैं। सूत्रोंपर विज्ञानभिक्षुका भाष्य, अनिरुद्धकी वृत्ति और वेदान्ती महादेवका वृत्तिसार आदि भाष्य-टीकाएँ सुप्रसिद्ध हैं। विज्ञानभिक्षुके मतानुसार जैसे आयुर्वेदमें रोग, आरोग्य, रोग-निदान और भैषज्य आदि चार अंश हैं, वैसे ही हमारे साङ्ख्यमें भी चार बातें हैं,—हेय, हेय-हेतु, हान और हानोपाय। इनमें जितने तरहके संसारके दुःख हैं, वे सब हेय हैं। प्रकृति और पुरुष या जड़ और चेतन—दोनोंको एकसा समझना दुःखका कारण या हेय-हेतु है। बराबरके लिये सब तरहके दुःखोंका हट जाना हान है। प्रकृति और पुरुषका अलग-अलग पूरा पूरा ज्ञान वा विवेकज्ञान हानोपाय है। पहले अध्यायमें इन्हीं चारों

वातोंका विचार किया गया है। दूसरे अध्यायमें प्रकृतिके सूक्ष्म कार्योंका निरूपण हैं। तीसरे अध्यायमें प्रकृतिके स्थूल कार्य, लिङ्ग-शरीर या सूक्ष्मशरीर, स्थूलशरीर, परवैराग्य और अपरवैराग्यका वर्णन है। चौथे अध्यायमें शास्त्र-पुराण-प्रसिद्ध कई एक कहानियोंके द्वारा विवेक-ज्ञानकी साधनाका उपदेश दिया गया है। पाँचवें अध्यायमें प्रतिवादियों या विपक्षियोंका खण्डन हैं। अन्तिम या छठे अध्यायमें साङ्ख्यके मुख्य विषयोंकी विस्तृत व्याख्या और खण्डनका उपसंहार किया गया है।

ईश्वरकृष्णकी साङ्ख्यकारिका आर्याछन्दमें वनायी गयी है। सव मिलकर इसमें पचहत्तर कारिकाएँ हैं। कारिकाओंकी रचना-प्रणाली वहुत ही सुन्दर है। पढ़नेमें खूव जी लगता है। इसी कारण इसका यथेष्ट प्रचार भी है। साङ्ख्यसूत्रोंकी प्रायः सभी वातें इसमें आ गयी हैं। इसपर शङ्कराचार्यके गुरुके गुरु गौड़पाद स्वामीका भाष्य और वाचस्पति मिश्रकी साङ्ख्यतत्त्व-कौमुदी नामकी टीका है। इसपर और भी कई टीका-टिप्पनियां हैं। कुछ लोगोंका कहना है कि, हिन्दू दर्शनशास्त्रकी पुस्तकोंमेंसे इसी पुस्तकका, दुनियाकी विभिन्न भाषाओंमें, सर्वाधिक अनुवाद हुआ है। जो हो, परन्तु इसकी उपयोगितामें किसीको भी सन्देह नहीं है।

साङ्ख्यदर्शन पर कुछ भी लिखते समय उसका ईश्वर-खण्डनवाला प्रकरण याद आ ही जाता है। पुराणोंमें कपिल

मुनिका जीवन-चरित पढ़नेपर हठात् कोई भी नहीं कह सकता कि, महर्षि कपिल निरीश्वर वादी थे। उन्हें नास्तिक कहना तो दूर रहा, कई जगह उन्हें ईश्वरका अवतार भी माना गया है।

साङ्ख्य और ईश्वर

परन्तु उनके दर्शनको देखनेपर यह स्पष्ट विदित होता है कि, उसमें खूब-खूब ईश्वरका खण्डन किया गया है। साङ्ख्य-कारिकामें भी ईश्वर-खण्डन हैं। छहो दर्शनोंके टीकाकार प्रख्यात दार्शनिक वाचस्पति मिश्रने * तो अपनी साङ्ख्यतत्त्व-कौमुदीमें एकबारगी ही ईश्वरको उड़ा दिया है!

साङ्ख्य दर्शनके प्रथमाध्यायका ९२ वाँ सूत्र है,—"ईश्वरा-सिद्धेः"। इस सूत्रका मतलब यह है कि, हमारे दर्शनमें ईश्वर सिद्ध ही नहीं होता। प्रत्यक्ष प्रमाणका लक्षण करते समय यह सूत्र आया हैं। पहलेके सूत्रोंमें दर्शनकारने लिखा

---

* वाचस्पति मिश्र मार्त्तण्डतिलक स्वामीके शिष्य थे। माधवाचार्यने सर्वदर्शन संग्रह, वर्द्धमानने न्याय कुसुमाञ्जलि प्रकाश और शङ्कर मिश्रने वैशेषिक दर्शनके सुत्रोपस्कार नामके भाष्यमें इनके मतोंको उद्धृत किया है। कुछ लोग कहते हैं, ८९८ शकाब्दमें इनका न्यायसूचीनिबन्ध समाप्त हुआ है। इनके बनाये इतने ग्रन्थ या टीकाएँ पायी जाती हैं,—साङ्ख्यतत्त्वकौमुदी, वेदान्ततत्त्वकौमुदी, तत्त्वबिन्दु, वाचस्पत्य वेदान्त, तत्त्ववैशारदी, योगसूत्र भाष्यव्याख्या, युक्तिदीपिका न्यायकणिकाविविधविवेकटीका, न्यायतत्त्वालोक, न्यायरत्नटीका, न्यायवार्त्तिकतात्पर्यटीका और भामती या शारीरक-भाष्य-विभाग।

है कि, "बाहरकी किसी भी चीजसे इन्द्रियोंका सन्निकर्ष या सम्बन्ध होनेसे प्रत्यक्षज्ञान होता है।" इस लक्षण पर यह सन्देह उठाया गया है कि, "नहीं, यह लक्षण ही ठीक नहीं है; क्योंकि, ईश्वरके पास तो कोई इन्द्रिय नहीं है और वह सब पदार्थोंका प्रत्यक्ष कर लेता है।" इसी शङ्काका उत्तर देनेके लिये दर्शनकार कहते हैं,—"ईश्वरासिद्धेः" अर्थात् जब कि, ईश्वर ही अप्रामाणिक या असिद्ध है, तब उसकी काहेकी इन्द्रियाँ और उसका कैसा प्रत्यक्षज्ञान! परन्तु प्रसिद्ध साङ्ख्याचार्य विज्ञान-भिक्षुका * यहाँ यह कहना है कि, "इस सूत्रका मतलब ईश्वरका खण्डन करना नहीं है—इससे दर्शनकारको केवल सन्देह उठाने वालेका मुँहतोड़ जवाब भर देना है। यदि दर्शन-प्रणेताका ईश्वर-खण्डन ही अभिप्राय रहता, तो वे साफ-साफ "ईश्वरा-भावात्" अर्थात् ईश्वर है ही नहीं, ऐसा लिख देते। ईश्वरको असिद्ध कहकर जो इस दर्शनने निरीश्वरता दिखायी

---

* योगसूत्रोंके वृत्तिकार भावागणेश दीक्षितके विज्ञानभिक्षु गुरु थे। इनके बनाये कितने ही ग्रन्थ, भाष्य आदि हैं। प्रधान ये हैं,—साङ्ख्य प्रवचनभाष्य, साङ्ख्यकारिकाभाष्य, साङ्ख्यसार, ब्रह्मादर्श, विज्ञानामृत वा ब्रह्मसूत्रऋजुव्याख्या, पातञ्जलभाष्यवार्त्तिक या योगवार्त्तिक, ईश्वरगीता, वेदान्तालोक-समालोचना और प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, कैवल्य, कठवल्ली, तैत्तिरीय, मैत्रेय, श्वेताश्वतर आदि उपनिषदोंका आलोक नामक भाष्य। इन्होंने साङ्ख्यसूत्रोंके वृत्तिकार अनिरुद्ध भट्टका मत उद्धृत किया है। वेदान्ती महादेवने अपने साङ्ख्यसूत्रके वृत्तिसारमें इनका मत उद्धृत किया है।

है, उसका और कुछ मतलब नहीं,—केवल "ईश्वरो हि दुर्ज्ञेय इति निरीश्वरत्वम्" या ईश्वर दुर्ज्ञेय हैं, यही अभिप्राय है।" इस पर यदि कोई कहे कि, फिर आगे कहीं सूत्रकारने क्यों नहीं ईश्वरका मण्डन किया है या अपना स्पष्ट भाव बताया है, तो भाष्यकार कहते हैं कि, सूत्रकारका जो प्रयोजन था, वह उन्होंने निकाल लिया ; यहाँ और ज्यादा बात बढ़ानेकी जरूरत ही क्या थी ? और भी बात है कि, ईश्वरको असिद्ध मान लेने पर भी जब पुरुषकी मुक्तिमें कोई बाधा पड़ने वाली नहीं है, तब साङ्ख्यदर्शनकार को सेश्वर और निरीश्वरका झगड़ा उठा कर लेना ही क्या था ? जो हो, इन बातोंसे हमलोग इतनी दूरतक अवश्य समझ लेते हैं कि, विज्ञानभिक्षु ईश्वरको मानते थे। इन्होंने, ईश्वरका नास्तित्व बतानेवाले अन्यान्य सूत्रोंका भी, अपने ढंगसे भाष्य किया है। इस भाष्यके पक्षपाती महामहोपाध्याय श्रीयुत प० अन्नदाचरण तर्कचूड़ामणि भी हैं। इन्होंने भी साङ्ख्य सूत्रोंपर एक अच्छा भाष्य लिखा है, जिसमें सभी निरीश्वरवादी सूत्रोंका विशद अर्थ कर इस दर्शनको भी सेश्वर साङ्ख्य ही प्रमाणित किया गया है।

यह सब कुछ है ; किन्तु साङ्ख्यसूत्रोंकी समालोचना करनेसे तो दिलमें यही बात बैठती है कि, साङ्ख्यमें निरीश्वर-वाद भरा पड़ा है। "ईश्वरासिद्धेः"के आगे वाले सूत्रोंपर ध्यान देनेसे निरीश्वरवादकी पूरी पुष्टि होती है,—

"मुक्तबद्धयोरन्यतराभावान्न तत्सिद्धिः।" ९३। "उभय-

थाप्यसत्करत्वम् ।" ६४। "मुक्तात्मनः प्रशंसा उपासासिद्ध-स्य वा"। ६५। इनका तात्पर्य्य यह है कि, यदि कोई ईश्वर है तो वह कैसा है? वह मोक्ष पा चुका है या मायाबद्ध है? यदि ईश्वर मुक्त है, तो उसे कभी कोई भी काम करनेकी न तो इच्छा होगी और न प्रवृत्ति ही; क्योंकि, जिसे मुक्ति मिल चुकी है, उसे इच्छा आदि वृत्तियाँ नहीं होतीं। फिर तुम्हारा मुक्त ईश्वर, विना इच्छाके, सृष्टि कैसे वना सकता है? यदि कहो कि, ईश्वरको अभी मुक्ति नहीं हुई है, तो फिर हम अबोध जीवोंकी तरह वह भी ज़रासी शक्ति रखनेवाला कोई जीव होनेके कारण न तो सृष्टि ही वना सकता है और न पक्ष-पात, द्वेष और दुःखसे ही वच सकता है। इस पर यदि तुम यह कहो कि, जिन शास्त्रोंमें ईश्वरका जिक्र आया है, वे क्या झूठे हैं? तो इसका उत्तर यह है कि, वे सब शास्त्र मुक्त या सिद्ध आत्माओंकी प्रशंसाके लिये उन्हें ईश्वर वताते हैं, तुम्हारे सृष्टिकर्त्ता ईश्वरके लिये वे कुछ नहीं कहते।

इन तीनों सूत्रोंसे भी महर्षि कपिलने ईश्वरका स्पष्ट खण्डन किया है। और क्या, आगे चलकर, इस दर्शनके पाँचवें अध्यायमें, कपिलजीने और भी स्पष्ट कह दिया है कि, प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द—इन तीनों ही प्रमाणोंसे ईश्वर नहीं सिद्ध होता। ईश्वर-खण्डनमें वहाँ ये तीन सूत्र हैं,—"प्रमाणा-भावान्न तत्सिद्धिः"। १०। "सम्बन्धाभावान्नानुमानम्"। ११। "श्रुतिरपि प्रधानकार्यत्वस्य।" १२। पहले सूत्रका यह तात्पर्य

है कि, ईश्वरास्तित्वमें कोई भी प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है; इसलिये वह असिद्ध है। अब यदि यह कहा जाय कि, प्रत्यक्षसे न सही, अनुमानसे तो ईश्वर सिद्ध है। इस पर साङ्ख्य कहता है कि, जैसे धुएँ और आगसे सम्बन्ध होनेके कारण धुएँ-को देखकर आगका अनुमान किया जाता है, उसी तरह यदि संसारकी किसी भी वस्तुसे ईश्वरका सम्बन्ध रहता, तो उसका अनुमान किया जा सकता। परन्तु उससे तो किसीसे सम्बन्ध ही नहीं देखा जाता। इसलिये अनुमान प्रमाणसे भी ईश्वर सिद्ध नहीं होसकता। अब रह गया शब्द प्रमाण। सो वह भी ईश्वरको संसारका कर्ता नहीं मानता—वेद भी जगत्को प्रकृतिका ही कार्य मानता है। यहाँ भी ईश्वरकी कोई आवश्यकता नहीं है।

जो लोग ईश्वरके अस्तित्व और अधिष्ठातृत्वमें अन्यान्य युक्तियाँ दिखाते हैं, उनका भी सांख्यने खूब खण्डन किया है। यह खण्डन भी पाचवें अध्यायमें ही है। पहले पूर्व पक्ष देखिये। कुछ लोग कहते हैं कि, जैसे राजा अपने साम्राज्यमें दुष्टोंको दण्ड और सज्जनोंको सम्मान प्रदान करता है, वैसे ही ईश्वर भी, प्राणियोंके कर्मानुसार, उन्हें फल देता है। इसपर सांख्य कहता है, ईश्वर कर्मानुसार फल प्रदान करता है या अपनी इच्छाके अनुसार? यदि कर्मानुसार; तब कर्म ही अपने स्वभावानुसार जीवोंको फल दे लेगा—ईश्वरकी क्या जरूरत है? यदि अपने इच्छानुकूल ईश्वर फल देता है, तो यह अनुमान करना सहज ही है कि, इस इच्छामें उसका कुछ स्वार्थ है; क्योंकि

संसारमें देखा जाता है कि, किसी उद्देश या स्वार्थके वश होकर ही कोई भी जीव काम करता है। फिर यदि ईश्वर भी अपने उपकारके लिये ही कार्य करता है, तब तो वह भी एक सामान्य राजा ही ठहरा और राजाकी ही तरह वह भी दुःखका भागी ही रहा! स्पष्ट बात यह है कि, बिना राग या इच्छाके सृष्टि नहीं हो सकती और रागवाला ईश्वर साधारण जीवोंका-साही विनाश-शील होगा। हाँ, एक बात और भी है। यदि प्रकृतिकी शक्ति, इच्छा, को संग लेकर तुम्हारा ईश्वर सब कर्म करता है, तो वह इस इच्छा या वासनाके संग-दोषसे उसी तरह पतित हो जायगा, जिस तरह एक साधारण जीव। कोई कोई यह भी कहते हैं कि, प्रकृतिकी सहायतासे ईश्वर सृष्टि करता है। इस पर सांख्य कहता है कि, तब तो सभी पुरुष ईश्वर हो सकते हैं; क्योंकि प्रकृतिकी सहायतासे तो सभी जीव सृष्टि कर सकते हैं। *

ऊपरकी इन कई एक युक्तियोंसे सांख्य-दर्शनने निरीश्वरवाद स्थापित किया है। साथ ही तीसरे अध्यायमें जो "ईदृशेश्वर-सिद्धिः सिद्धा" सूत्र है, उससे यह भी जान पड़ता है कि, सांख्याचार्य्य लोग पूर्व कल्पके सिद्ध जीवोंको ही ब्रह्मा, विष्णु आदिके रूपोंमें प्रकट हुए मानते हैं। इस सूत्रका यह तात्पर्य्य है कि, विवेक-ज्ञानसे जो जीव ईश्वर हो गये हैं या जो जन्य ईश्वर हैं, वे या उनका अस्तित्व साङ्ख्यको स्वीकार है।

* साङ्ख्यदर्शन, पंचम अध्याय, २—१० तक सूत्र देखिये।

सांख्यसूत्रोंके अनुसार ही सांख्यकारिकाकी भी बात है। बल्कि सांख्यदर्शनके भाष्यकारने तो किसी तरह ईश्वरका अस्तित्व स्वीकार भी किया है; परन्तु कारिकाके भाष्यकार वाचस्पतिमिश्रको तो ईश्वर बिलकुल ही स्वीकार नहीं है! शङ्कराचार्य आदिने भी सांख्यको निरीश्वरवादी दर्शन माना है।

हमारे दर्शनोंमें—विशेषतः न्याय, वैशेषिक और सांख्यमें—प्रमाणोंकी बहुत विस्तृत और सूक्ष्म आलोचना की गयी है।

त्रिविध प्रमाण

दार्शनिकोंका सिद्धान्त है कि, बिना प्रमाणके प्रमेय, किसी भी पदार्थकी प्रमिति या यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता और न किसी विषयको जाननेकी इच्छा ही हो सकती है। इस लिये इस प्रमाण-परिचयका दार्शनिक लोग बहुत बड़ा महत्त्व मानते हैं।

सांख्य तीन प्रमाण मानता है। प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द। इनमें अनुमान और शब्द प्रमाणोंसे प्रायः परोक्ष या अप्रत्यक्ष ज्ञान ही होता है। प्रत्यक्ष प्रमाणका सांख्यने यह लक्षण किया है,—इन्द्रियों और बाहरी भोग्य विषयोंके सम्बन्ध होने पर मनुष्यकी बुद्धिमें जो परिणाम या वृत्ति पैदा होती है, उसी बुद्धि-वृत्तिका नाम प्रत्यक्ष प्रमाण है। वही वृत्ति किसी भी पदार्थके यथार्थ ज्ञान-का कारण है। वह वृत्ति ही वस्तु-ज्ञानका अत्यन्त निकट कारण है; इसलिये उसे प्रमाण कहा जाता है। इसका नाम प्रत्यक्ष इसलिये पड़ा है कि, यह प्रमाण अक्षों या इन्द्रियोंसे पैदा होता है। ज्ञानेन्द्रियाँ छः तरहकी हैं; इसलिये प्रत्यक्ष भी छः

तरहके हैं। छः ज्ञानेन्द्रियाँ ये हैं,—नेत्र या चक्षु, श्रवण, घ्राण (नाक), रसना या जिह्वा, त्वक् (चमड़ा) और मन। छः प्रत्यक्ष प्रमाण ये हैं,—चाक्षुप, श्रावण, घ्राणज, रासन, त्वाक और मानस। इनमें रूपका चाक्षुप प्रत्यक्ष है, शब्दका श्रावण, गन्धका घ्राणज, रसका रासन और स्पर्शका त्वाच। इन सबमें मनकी सहायता रहती है। पहले इन्द्रियोंसे विषयोंका सम्बन्ध होता है; बाद इन्द्रियोंसे मनका, अन्तको मनका और आत्मासे सम्बन्ध होता हैं, जिससे ज्ञान पैदा होता हैं। साङ्ख्यके मतसे इन्द्रियोंके साथ विषयोंका सम्बन्ध होने पर पहले मन विषयाकार होता है, बाद अहङ्कार में परिणाम होता है, पश्चात् बुद्धिमें परिणाम वा विकार होता है; अन्तको ज्ञान पैदा होता है। सीधी-सीधी बात यह समझिये कि, इन्द्रिय और विषयका सम्बन्ध होनेपर भी यदि मन दूसरी तरफ लगा रहे, तो न कोई बुद्धिमें परिणाम ही होगा और न कुछ ज्ञान ही। इसीलिये मन सहायक माना गया है। इसके सिवा जैसे देखना नेत्रका धर्म है, वैसे ही संकल्प-विकल्प करना भी मनका धर्म है। यहाँ यह भी कह देना उचित है कि, साङ्ख्यका यह प्रमाण-लक्षण कितने ही दार्शनिकोंको स्वीकार नहीं है। वे कहते हैं,—इन्द्रियों द्वारा जिसकी उपलब्धि होती है, उसीका नाम प्रत्यक्ष प्रमाण है। किन्तु साङ्ख्याचार्य कहते हैं,—समय-समयपर इन्द्रियाँ भ्रान्त भी हो सकती हैं। उस दशामें कपासको भी फूल समझा जा सकता है! इसलिये वही ठीक प्रत्यक्ष प्रमाण है, जो इन्द्रियों द्वारा

उपलब्ध होनेके साथ बुद्धि-वृत्ति द्वारा भी परिगृहीत होता हो। वाचस्पति मिश्रके सिद्धान्तानुसार इस वृत्तिमें सत्त्वगुण ही रहता है।

अतिदूर, अतिनिकट, इन्द्रियविकार, इन्द्रियनाश, मन-श्चाञ्चल्य, अतिसूक्ष्म, व्यवधान, अभिभव और समानाभिहार आदि कई कारणोंसे, जिस वस्तुका अस्तित्व है, उसका भी प्रत्यक्ष नहीं होता! आकाशमें उड़नेवाला, बहुत दूरका, पक्षी नहीं देखा जाता। आँखका आँजन, बहुत निकट होनेके कारण, नहीं देखा जाता। आँखोंमें भयङ्कर चोट लगने या उनके फूट जाने पर कोई वस्तु नहीं देखी जाती। अन्यमनस्क होनेसे सामनेका दीपक भी नहीं दिखायी देता। अतिसूक्ष्म होनेके कारण परमाणुका प्रत्यक्ष नहीं होता। घरके भीतर पदार्थ रहने पर भी, किवाड़का व्यवधान रहनेसे, प्रत्यक्ष नहीं होता। दिनमें भी आसमानमें तारा रहते हैं; परन्तु सूर्य-किरणोंसे वे अभिभूत या समाच्छन्न रहते हैं; इसलिये उनका प्रत्यक्ष नहीं होता। गाय और भैंसके दूधका समानाभिहार या सम्मिश्रण होनेके कारण पृथक्रूपसे किसी भी दूधका प्रत्यक्ष नहीं होता। इस तरह इन कारणोंसे जिनका प्रत्यक्ष नहीं होता, उनका अनुमान होता है।

साङ्ख्याचार्य,साङ्ख्याचार्य ही क्यों, सभी दार्शनिकोंके मतमें, प्रत्यक्षके दो भाग हैं,—इन्द्रिय संयोगवाला प्रथम भाग और मनःसंयोगवाला द्वितीय भाग। आधेका ग्रहण इन्द्रियसे और

आधेका मन द्वारा होता है। इस तरह दोनोंके मेलसे किसी भी वस्तुके पूरे अवयवका ज्ञान होता है। इन ज्ञानेन्द्रियोंमें, साङ्ख्यानुसार, प्रथम भागका नाम वृत्ति, इन्द्रियालोचन और सम्बन्ध ज्ञान है तथा दूसरे भागका नाम बोध, प्रमा और प्रमिति आदि है। नैयायिकोंके मतसे पहलेका नाम निर्विकल्प और दूसरेका सविकल्प है। पहले इन्द्रिय द्वारा वस्तुकी साधारण छविका ग्रहण होता है और पीछे उसके विशेष आकारका विस्फुरण होता है। इन्द्रिय-संयोगावस्थाका ज्ञान समझनेके लिये साङ्ख्याचार्योंने मूक और शिशुके ज्ञानका उदाहरण दिया है।

कार्य और कारण, शक्ति और शक्तिमान् आदिका जो सदा एक साथ रहना है, उसे साङ्ख्यशास्त्र व्याप्ति कहता है। इसी व्याप्तिके ज्ञानसे सम्पन्न पुरुषको व्याप्य पदार्थोंके देखनेके बाद जो व्यापकका ज्ञान होता है, उसे अनुमान कहा गया है। यह प्रमाण मानके या प्रत्यक्ष ज्ञानके पीछे होता है, इसलिये इसका नाम अनुमान है। इसी अनुमानसे वह बात जानी जाती है, जो प्रत्यक्षसे अगोचर है।

चाहे अग्नि न भी देखी जाय ; परन्तु धूमको देखनेसे उसके अस्तित्वका ज्ञान हो जाता है ; क्योंकि व्याप्य (धूम) और व्यापक (अग्नि) बराबर एक साथ रहते हैं। ऐसा हो ही नहीं सकता कि, व्यापकको छोड़कर कहीं व्याप्य रहे। इसी तरह कार्यको देखकर कारणका अनुमान होता है। जैसे कार्यरूप फलको देखकर कारणरूप वृक्षका अनुमान। शक्तिको देखकर शक्तिमान्-

का अनुमान होता है। जैसे स्पर्शरूप शक्तिको देखकर वायुरूप शक्तिमान्‌का अनुमान होता है। यहाँ यह भी ध्यान देनेकी बात है कि, साङ्ख्यशास्त्रके सिद्धान्तानुसार अनुमान प्रमाण भी एक बुद्धि-वृत्ति ही है। यहाँ व्याप्य, बोध्य, कार्य, शक्ति आदिको देखनेसे जो व्यापक, बोधक, कारण और शक्तिमान्‌का तद्रूप बुद्धिमें परिणाम होता है, उसे अनुमान प्रमाण कहा जाता है। अनुमान प्रमाणसे जो निश्चित ज्ञान होता है, उसका नाम अनुमा और अनुमिति आदि है।

अनुमान तीन प्रकारका होता है,—पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतोदृष्ट। कारणको देखकर कार्यके अनुमानको पूर्ववत्, कार्यको देखकर कारणके अनुमानको शेषवत् और समानजातीय पदार्थको देखकर समान जातीय पदार्थके अनुमानको सामान्यतोदृष्ट कहा जाता है। कारणरूप मेघ और दूधको देखकर कार्यरूप वृष्टि और घृतका अनुमान पूर्ववत् है। कार्यरूप नदी-वृद्धिको देखकर कारणरूप (कहीं) वृष्टि होनेका अनुमान शेषवत् है। छेदनरूप क्रियाका कुठाररूप कारण रहना देखकर ज्ञान-रूप क्रियाके इन्द्रियरूप कारणका अनुमान सामान्यतोदृष्ट है। संसारमें जो कुछ प्रत्यक्ष या परोक्ष वस्तुएं हैं, वे सब इन्हीं तीनों अनुमानोंके द्वारा गोचर होती हैं। न्याय-दर्शन भी इन तीनों अनुमानोंको मानता है। इनपर उसमें सूक्ष्मातिसूक्ष्म विचार हैं।

विश्वमें कुछ ऐसे भी पदार्थ हैं, जिनका अस्तित्व अनु-

मानसे भी नहीं जाना जाता। उनके ज्ञानके लिये महर्षि कपिलने शब्द प्रमाण माना है। किसी भी योग्य वाक्य या शब्दको सुन लेनेके बाद उसके प्रति जो मनोवृत्ति होती है, उसका नाम शाब्द प्रमाण है। इसीका फल शाब्द बोध है। इसी शब्द प्रमाणसे स्वर्ग, नरक, अदृष्ट और देवता आदि जाने जाते हैं। शब्द दो तरहका होता है,—एक लौकिक और दूसरा अलौकिक। अलौकिक शब्द वेद है और लौकिक अन्यान्य शास्त्र। वेद स्वतः प्रमाण है और शास्त्र वेदानुयायी होनेपर प्रमाण हैं। फलतः सभी प्रमाणोंसे यह शब्द-प्रमाण बली है और इसमें भी वेद सर्वोच्च हैं। अनुमान या प्रत्यक्ष प्रमाणोंका ज्ञान गलत हो सकता है; परन्तु वेदका नहीं; क्योंकि, वह भ्रमप्रमाद-रहित और विशुद्ध-उपदेशमय है।

विज्ञानभिक्षु और वाचस्पति मिश्रमें, इन प्रमाणोंके लिये, बहुत सूक्ष्म मतभेद भी है। परन्तु इस छोटीसी पुस्तकमें मतभेद नहीं दिखाये जा सकते।

प्रायः सारे संसारमें वेदोंकी महिमा गायी जाती है—आज ही नहीं, न मालूम कितने ही वर्षों से। यूरोपीय तार्किक और

वेद और साङ्ख्य

ऐतिहासिक भी इतना मानते हैं कि, संसारमें वेद जैसी पुरानी पुस्तक दूसरी नहीं है। इधर प्राच्य विद्वान्, विशेषतः हिन्दू और हिन्दूशास्त्र, तो इसे नित्य तक मानते हैं। ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, दर्शन, स्मृति आदि जितने शास्त्र हैं, उन सबकी एकसी धारणा है। मनुजीके

कथनानुसार हमारे यहाँ वही आस्तिक है, जो वेदकी श्रद्धा करता है—वह ईश्वर तकको चाहे मानता हो या नहीं ! यही कारण है कि, ईश्वरका खण्डन करने वाला साङ्ख्यशास्त्र आस्तिक दर्शन माना जाता है ; क्योंकि वह वेदोंकी प्रतिष्ठा करता है।

चाहे जिस दृष्टिसे प्राचीन लोग मानते रहे हों ; परन्तु कोई इसे नित्य, कोई अनन्त, कोई अपौरुषेय और कोई ज्ञानमय मानते थे। यजुर्वेदके शतपथब्राह्मणमें लिखा है, 'स्वयं ब्रह्माने ही तीनों वेदोंको बनाया है। वेद नित्य और सब पदार्थोंके आकर हैं।' * तैत्तिरीय ब्राह्मणमें लिखा है, 'स्वयं परमात्माने ही वेदोंको रचा।'† मनुजीने अपनी स्मृतिमें स्पष्ट कहा है कि, वेद अपौरुषेय, अप्रमेय और नित्य हैं। इसपर कुछ लोग यह भी कहते हैं कि, यह सब खयाली पुलाव हैं। संसारमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं, जो नित्य या अभ्रान्त हो। फिर भी जो वेद या जो शब्द ग्रन्थाकारमें प्रकाशित है, वह कब नित्य या अपौरुषेय हो सकता है ? इसपर निष्ठावान् हिन्दू उत्तर देते हैं, 'पुस्तकरूप वेद कभी नित्य नहीं हो सकते, वे विनाशी हैं ; परन्तु ज्ञानरूप वेद नित्य हैं ; क्योंकि ज्ञान नित्य है। इसी ज्ञानका शुद्धरूपमें, ऋषियोंके अन्तःकरणमें, पहले पहल उदय हुआ है। इसके

---

* शतपथब्राह्मण, ६।१।१।८ और १०।४।२।२१ देखिये।

† तैत्तिरीयब्राह्मण, ३।३।१०।१ देखिये।

बाद उन्हीं ऋषियोंने मंत्ररूपमें वेदोंका निर्माण किया है। अन्तको वे मन्त्र पुस्तकाकार हुए हैं।' इस तरहके सैकड़ों वादविवाद और उत्तर-प्रत्युत्तरके बाद सभी आर्य पुरुष वेदोंको अपौरुषेय मानते हैं।

साङ्ख्यके लिये, वेदोंको अपौरुषेय माननेमें, कुछ अड़चन है। कारण यह है कि, वह ईश्वरको मानता ही नहीं,—उसकी सृष्टि होती है पुरुष और प्रकृतिके संयोगसे। उसका पुरुष भी कुछ करने वाला नहीं है, निष्क्रिय है; केवल प्रकृति ही काम करने वाली है। इसलिये साङ्ख्यकार वेदको ईश्वरकृत नहीं मान सके हैं। इधर वे उसे मनुष्यकृत भी नहीं कह सके! अन्तको वे बोले,—'वेद न तो अपौरुषेय है, न पौरुषेय ही। जो बुद्धि-पूर्वक निर्मित शास्त्र है, उसे पौरुषेय कहा जाता है; परन्तु वेदमें ऐसी बुद्धिकृति नहीं है।' यदि कोई यह कहे कि, मुक्त पुरुष वेदकी रचना कर सकता है, तो वह भी ठीक नहीं; क्योंकि, मुक्त पुरुषको कुछ करनेकी इच्छा हो नहीं हो सकती। यदि उसे इच्छा हो गयी, तो वह शास्त्रानुसार बद्ध हो गया। इधर जो बद्ध जीव है, उसकी शक्ति भी सीमाबद्ध है। इसलिये वैसा पुरुष वेद-रचना कर ही नहीं सकता। इसी तर्क-प्रकरणमें साङ्ख्याचार्य यह भी कह गये हैं कि, ईश्वर भी वेद नहीं बना सकता; क्योंकि, सुना जाता है, ईश्वर बिलकुल निस्पृह हैं। जिसे स्पृहा या कोई इच्छा ही नहीं है, वह वेद या किसी पदार्थकी रचना करने क्यों बैठने लगा?

महर्षि कपिल कहते हैं, वीज और अंकुरकी तरह वेद अनादि है। जैसे, यदि कोई पूछे, वीजसे अंकुर हुआ है या अंकुरसे वीज? अंकुर वीजका कारण है या वीज अंकुरका? इन प्रश्नोंका उत्तर देना असम्भव है; किसीका भी आदि ठीक करना असम्भव है; उसी तरह वेदका भी आदि बताना सम्भव नहीं। ब्रह्माण्डकी लयावस्थामें वेद वीजरूप और सृष्टि-अवस्थामें अंकुररूप रहता है।

अपौरुपेय शब्दका अर्थ है नित्य। साङ्ख्य वेदको नित्य नहीं मानता; क्योंकि, वेद पुरुप द्वारा उच्चारित और कार्य है। संसारमें देखा जाता है कि, जो कार्य है, वह अनित्य है। इसलिये वेद नित्य नहीं है। साथ ही वह पुरुपके केवल उच्चारण मात्रसे पौरुपेय भी नहीं कहला सकता। संसारमें पौरुपेय वही शास्त्र है, जो बुद्धिपूर्वक या विचारपूर्वक रचा गया है। परन्तु वेद तो उस सुपुप्ति-दशाका निःश्वासरूप है, जहाँ विचारकी पहुँच ही नहीं है।

साङ्ख्य कहता है, प्रकृतिके प्रथम पुत्र हैं ब्रह्मा और प्रलय-दशामें उनके रहनेका स्थान है विराट् महत्तत्त्व। इसी महत्तत्त्वको वेदान्त माया कहता है और प्रकृतिका यही प्रथम कार्य है। इससे ही चराचरकी सृष्टि होती है। इसीके भीतर, प्रलय-दशामें, पूर्व सृष्टिके वेदका संस्कार वचा हुआ रहता है। सृष्टिके समय अदृष्ट द्वारा, ब्रह्माके पाससे, निःश्वासकी तरह स्वयं यही संस्कार या वेद उत्पन्न होता है। उत्पत्तिके समय

ब्रह्माको आवेश भर होता है ; इसीसे कुछ लोग वेदोंका कर्त्ता ब्रह्माको मान बैठते हैं। साङ्ख्य कहता है, वेद प्रकृतिका साक्षात् आदेश है ; इसलिये उसमें यथार्थ ज्ञान उत्पन्न करनेकी शक्ति अनिवार्य और अबाध है। फलतः किसीका कार्य न होनेके कारण या स्वयं अपनी शक्तिसे ही अभिव्यक्त होनेके कारण वेद स्वतः प्रमाण हैं। यही तात्पर्य साङ्ख्यके इस सूत्रका है—

"निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतःप्रामाण्यम्।"

प्रकृतिमें बोध्य, बोध और बोधक, तीनों भाव रहते हैं। इन शब्दोंका यथाक्रम अर्थ है, ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञानदाता। साङ्ख्य-मतमें वेद बोधक या विशुद्ध ज्ञानदाता हैं। इस तरह साङ्ख्य-दर्शनमें वेद अनादि, स्वतःप्रमाण, कर्त्तृरहित और बोधक है।

हम पहले ही कह आये हैं कि, जो पदार्थ अतीन्द्रिय हैं या जिनका प्रत्यक्ष नहीं होता, उनका अनुमान होता है। इस विशाल विश्वको देखकर इसके कारणका

सत्कार्यवाद

अनुमान होता है। कोई इसका कारण परमाणु मानता है, कोई शून्य, कोई ईश्वर और कोई प्रकृति। इस विषयपर दर्शनशास्त्रमें खूब खूब मतभेद है।

असद्वादी बौद्ध लोग कहते हैं कि, असत्, अभाव या शून्यसे संसारकी उत्पत्ति हुई है। इनका मत है कि, बीजसे अंकुरकी उत्पत्ति नहीं होती ; बल्कि गर्मी और जलके संसर्गसे, बीज-का नाश होने पर, अंकुरकी उत्पत्ति होती है। इसलिये सिद्ध हुआ कि, बीजका अभाव ही अंकुरकी उत्पत्तिका कारण है ;

बीज नहीं। इस दृष्टान्तसे बौद्ध लोग सभी जगह अभावसे भावकी उत्पत्ति मानते हैं।

साङ्ख्य कहता है, यह सिद्धान्त भ्रमात्मक है। यह ठीक है कि, बीजके विनाशके बाद अंकुर पैदा होता है; परन्तु बीजके सभी अंशों या अवयवोंका विनाश नहीं होता—वे बीज-नाशके बाद भी रहते हैं। उन्हींसे अंकुरकी उत्पत्ति होती है। यदि अभावसे भावकी उत्पत्ति मानी जाय, तो तिलसे दूध और दूधसे तेल क्यों नहीं पैदा होता? इसलिये अभावसे भावकी उत्पत्ति नहीं होती,भावसे ही भावकी उत्पत्ति होती है।

विवर्त्तवादी वेदान्तिक कहते हैं कि, असलमें संसार कुछ नहीं है। जैसे रस्सीको देखकर, कभी कभी, भ्रमवश आदमी उसे साँप समझ बैठता है, वास्तवमें वह रस्सी साँप नहीं रहती, वैसे ही संसारके न रहते हुए भी लोग ब्रह्ममें संसारकी कल्पना कर डालते हैं! जो भ्रम या अविद्या-दोष रज्जु या रस्सीमें साँप दिखाता है, वही ब्रह्ममें विश्व। यही अन्य वस्तुमें अन्यरूप ज्ञान है, जिसका नाम विवर्त्त है। यही विवर्त्त मनुष्योंको दुःखकी चक्कीमें पीस रहा है। परन्तु साङ्ख्याचार्य वेदान्तकी इस दलीलको नहीं मानते। वे कहते हैं,—रज्जुमें साँपका भ्रम अवश्य हो जाता है; परन्तु सजग होकर देखनेपर पीछे यह भी मालूम हो जाता है कि, 'यह तो साँप नहीं है; रस्सी है; मैं भ्रान्त हो गया था।' परन्तु ब्रह्मके सम्बन्धमें ऐसी बात नहीं घटती। इसलिये संसारका ज्ञान भ्रमात्मक कहना

भूल है। वास्तवमें यदि वेदान्तिक देखें, तो उन्हें मालूम होगा कि, यह कार्यरूप जगत् किसी कारणका परिणाम या विकार भर है। असलमें जैसे सोनेसे कुण्डल और सूतसे कपड़ा अलग नहीं है, वैसे ही यह कार्यात्मक जगत् भी अपने कारणसे भिन्न नहीं है—केवल कारणके अवस्थान्तरगमनसे कार्यकी सृष्टि होती है। इससे यह भी स्पष्ट है कि, यदि कारणसे कार्य भिन्न नहीं है' तो अपनी उत्पत्तिके पहले भ., सूक्ष्मरूपमें, कार्य था। बीजको अंकुररूप करनेमें सहायता पहुँचाने वाले जल और गर्मी आदि केवल प्रकाशक या अभिव्यञ्जक हैं। इस तरह साङ्ख्यमें परिणामवाद या विकारवादका अवलम्बन कर अपना सत्कार्यवाद स्थापित किया गया है। सत्कार्यवाद वह है, जिसमें कार्य सदा सत् रूपमें रहता है। साङ्ख्याचार्यों को विकारवादी, परिणामवादी और सत्कार्यवादी कहा जाता है।

इधर नैयायिक और वैशेषिक आचार्यों ने सत्कार्यवादकी एक-एक युक्तिका खण्डन कर डाला है। वे लोग सत् पदार्थसे असत्की उत्पत्ति मानते हैं। कहते हैं, जगत्का मूल कारण अर्थात् परमाणु सदा सत् या विद्यमान रहता है। इसी सत्से असत् या पहले अविद्यमान कार्यकी उत्पत्ति होती है। साथ ही कारणसे कार्य सदा भिन्न है; क्योंकि, कार्योत्पत्तिके पूर्व भी कारण विद्यमान था और कार्य असत् या अविद्यमान। ये दोनों दार्शनिक आरम्भवादी कहे जाते हैं; क्योंकि, ये सभी कार्य परमाणुसे ही समारब्ध या उत्पन्न मानते हैं।

इस युक्ति पर साङ्ख्याचार्य कहते हैं, यदि अपनी उत्पत्तिके पहले कार्य अविद्यमान था, तो वह उत्पन्न होनेपर भी अविद्यमान या असत् ही रहता। कारण यह है कि, कोई भी पदार्थ जैसा—जिस अवयवमें—पहले रहता है, उसीमें पीछे भी रहता है। यह कभी नहीं देखा गया है कि, नीला पीला हो जाय या पीला नीला। जो नील पीतसे बिलकुल भिन्न है, उसे लाख कारीगर भी पीला नहीं पैदा कर सकते। इसपर नैयायिक-वैशेषिक कहते हैं कि, जैसे पकानेके पहले मिट्टीका घड़ा श्यामवर्ण का रहता है और पकानेके बाद रक्तवर्णका हो जाता है, वैसे ही पहले कार्य नहीं रहता और पीछे आ जाता है। इसके उत्तरमें साङ्ख्यवादी कहते हैं, 'तुम्हारा यह उदाहरण ही हमारा सत्कार्यवाद सिद्ध कर रहा है; क्योंकि अपनी श्यामावस्था और रक्तावस्था—दोनों ही अवस्थाओंमें घट सत् या विद्यमान रहता है; परिवर्त्तन होता है उसके साँवलेपन और लालपनमें। घटके जो ये दोनों धर्म हैं, वे विद्यमान पदार्थका ही आश्रयकरके रह सकते हैं—असत् या अविद्यमान पदार्थका नहीं। इस लिये यह बात सिद्ध हुई कि, घट अपनी उत्पत्तिके पहले, मृत्तिकारूपमें भी विद्यमान था, कभी असत् नहीं था। यह बात तो बिलकुल ही असम्भव है कि, अपनी उत्पत्तिके पहले घट असत् था और उसका कोई धर्म नहीं था।

इस पर नैयायिक कहते हैं कि, यदि कार्य बराबर रहता ही है, तो कारणके व्यापारकी कोई जरूरत नहीं है। इसक

उत्तर साङ्ख्य देता है कि, यह आपत्ति निरर्थक है ; क्योंकि, सत्‌रूप कार्यके बराबर रहने पर भी वह कारण-व्यापार द्वारा अभिव्यक्त वा प्रकाशित होता है। कारण-व्यापारके पहले कार्य अनभिव्यक्त रहता है। अतः कार्यकी अभिव्यक्तिके लिये कारण-व्यापार परम आवश्यक है। इसका उदाहरण लीजिये। यह सभी जानते हैं कि, कारणरूप तिलमें कार्यरूप तेल, गोस्तनमें दूध और धान्यमें चावल है ; परन्तु विना कारणमें व्यापार किये तेल, दूध और चावलकी अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। पेरने पर ही तिलसे तेल, कूटनेसे ही धान्यसे चावल और दूहनेसे ही गौसे दूध निकलता है। इस लिये यह बात सिद्ध है कि, बराबर सत्-रूप कार्यके रहने पर भी कारण-व्यापार द्वारा उसकी अभिव्यक्ति होती है।

साङ्ख्याचार्य लोग कहते हैं, सत्‌से सत्‌की उत्पत्तिके सैकड़ों उदाहरण हैं ; परन्तु असत्‌से सत्‌की उत्पत्तिका नाम लेनेको भी उदाहरण नहीं। वास्तवमें जो असत् है, उसकी न तो कहीं उत्पत्ति ही सुनी गयी, न उत्पत्ति सम्भव ही है। आदमीको सींग, कछुएको रोम और आकाशमें कमल होना असम्भव है—सत् नहीं असत् हैं—इसलिये कभी भी इनकी उत्पत्ति नहीं सुनी गयी है। फलतः यह बात निश्चित हुई कि, कारण-व्यापारसे भी सत्‌की ही अभिव्यक्ति हो सकती है,असत्‌की नहीं। साथ ही एक बात और भी है। जिस कारणसे जिस कार्यका सम्बन्ध है, उससे वही पैदा हो सकता है—

दूसरा नहीं। कारणरूप सूतके साथ कार्यरूप कपड़ेका या कारण रूप मिट्टीके साथ कार्यरूप घड़ेका सम्बन्ध है; इसीसे सूत-से वस्त्र और मिट्टीसे घड़ा पैदा या प्रकट होता है; परन्तु सूतसे घड़ेका और मिट्टीसे कपड़ेका कार्य-कारण सम्बन्ध नहीं है; इस-लिये कभी सूतसे घड़ा और मिट्टीसे कपड़ा नहीं पैदा हो सकता।

साङ्ख्यकारिकाकी ६ वीं कारिका है :—

"असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम्।"

इस एक ही कारिकामें सत्कार्यवादको स्थापित करनेके लिये कई अपूर्व युक्तियाँ कही गयी हैं। इसका भावार्थ पढ़ने पर सब युक्तियाँ ध्यानमें बैठ जायँगी। इस तरहका भावार्थ है;— जो असत् है, वह नहीं किया जा सकता। जैसे आसमानमें फूल नहीं है; इसलिये वह आजतक वहाँ प्रकट नहीं किया जा सका। दूसरी युक्ति; प्रत्येक कार्यके लिये निर्दिष्ट उपादान-का ग्रहण करना होता है। जैसे तैलरूप कार्यके लिये निर्दिष्ट तिलरूप उपादान-कारण ग्रहण किया जाता है, अनिर्दिष्ट या अनियत बालू आदि नहीं। तीसरी युक्ति; सबसे सब नहीं होता। जैसे तिलसे तेल ही होता है, दूध नहीं। चौथी युक्ति; जिसमें जो शक्तिरूपसे अवस्थित है, उससे वही पैदा होता है। जैसे बीजमें वृक्ष ही शक्तिरूपसे छिपा रहता है; इसलिये बीजसे वृक्ष पैदा किया जा सकता है, कोई दूसरी वस्तु नहीं। पाँचवीं युक्ति; अमुक वस्तु

अमुक कार्यका कारण है और अमुक वस्तु अमुक कारणका कार्य है—ऐसी कार्य-कारणकी शृङ्खला देखी जाती है। इस शृङ्खलाका मतलब यह है कि, जिस किसी वस्तुका जो कोई कारण या कार्य नहीं हो सकता। इस नियत परिपाटीको देखते-देखते यह बात स्थिर हो गयी है कि, सारे कार्य कारणमें अव्यक्त-रूपसे छिपे रहते हैं और वे ही अवसर पाकर व्यक्त होते हैं। इस लिये यह बात बिल्कुल असम्भव है कि, अमुक वस्तु थी ही नहीं और हठात् कहींसे टपक पड़ी।

इस तरह सभी शास्त्रोंके मतवादोंका खण्डन कर साङ्ख्यने सत्कार्य्यवाद स्थापित किया हैं। यह सत्कार्यवाद दर्शनशास्त्रका बहुत उच्च और युक्तिपूर्ण सिद्धान्त माना जाता है। इसीसे इसका कुछ विस्तृत विवरण सुनाना यहाँ आवश्यक माना गया है।

यहाँ यह भी ध्यानमें रखनेकी बात हैं कि, सत्कार्यवादियोंके सिद्धान्तमें अव्यक्त अवस्थासे व्यक्त अवस्थामें आनेका ही नाम आविर्भाव या उत्पत्ति है। हठात् कहींसे कोई वस्तु नहीं आ जाती। आगेकी अवस्थाएँ जैसे जैसे आती जाती हैं, वैसे ही वैसे पहलेकी अवस्थाओंका तिरोभाव होता जाता है। इसी तिरोभाव, परिवर्त्तन या अव्यक्त दशामें गमनका नाम विनाश है। इसके सिवा कभी किसीका आत्यन्तिक विनाश भी नहीं होता। साङ्ख्यमें शरीरके लिये ये ही उत्पत्ति और विनाश, जन्म और मरण कहाते हैं।

साङ्ख्यशास्त्रमें प्रमेय या पदार्थका नाम तत्त्व है। मूल और विज्ञेय तत्त्व दो हैं,—एक पुरुष और द्वितीय प्रकृति। इनमें पुरुष सदा कूटस्थ या मूलस्थ और परिणाम-रहित है तथा प्रकृति परिणामिनी है। पुरुष चेतन और प्रकृति जड़ है। पुरुष-तत्त्वमें कोई विभाग नहीं है और प्रकृतिमें चौबीस विभाग हैं। इस तरह साङ्ख्यके सब प्रमेय पचीस हैं। योगमें ईश्वर भी एक तत्त्व हैं; इसलिये उसमें छब्बीस तत्त्व माने गये हैं। अस्तु।

साङ्ख्यका पदार्थ-विभाग

इसी प्रकृतिके परिणामसे संसारकी सृष्टि और प्रलय होते हैं। प्रकृतिका यह परिणाम या परिवर्त्तन दो तरहका है,—स्वरूप-परिणाम और विरूप-परिणाम। जब प्रकृतिका स्वरूप-परिणाम होता है, तब जगत्‌की सृष्टि होती हैं और विरूप-परिणामके समय जगत्‌का प्रलय होता है।

साङ्ख्यके सब तत्त्व चार विभागोंमें विभक्त हैं,—१ मूल प्रकृति, २ प्रकृति-विकृति, ३-केवल विकृति और ४ अनुभय-रूप।* प्रकृति शब्दका अर्थ उपादान कारण और विकृति शब्दका अर्थ कार्य है। मूल प्रकृतिका एक नाम प्रधान भी है। यह किसीका कार्य नहीं है—इसका कोई कारण नहीं है। इसीसे इसे 'मूल प्रकृति' कहा जाता हैं। यदि इसका भी कोई कारण माना जाय, तो उस कारणका भी कारण मानना पड़ेगा! फिर

---

* मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त। षोड़शकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः। साङ्ख्यकारिका, ३।

उसका भी कारण मानना पड़ेगा! इस तरह कारण गिनते-गिनते कुछ निश्चय नहीं हो सकेगा! इसे दार्शनिक लोग 'अनवस्थादोष' कहते हैं। फलतः ज्यादा पचड़ा न बढ़ा कर साङ्ख्य प्रकृतिको ही स्वतःसिद्ध कारण मानता है। प्रकृति-विकृति सात हैं,—१ महत्तत्त्व, २ अहङ्कार तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध आदि ५ तन्मात्राएँ। ये सातो कारण भी हैं और कार्य भी। विकृति सोलह हैं,—१ श्रवण, २ त्वचा, ३ नेत्र, ४ जिह्वा, ५ नासिका, ६ वाक्,७पाणि, ८ पाद, ९ पायु, १० उपस्थ, ११ मन, १२ आकाश, १३ वायु, १४ अग्नि, १५ जल और १६ पृथिवी। ये सोलहो किसीके कारण नहीं हैं, केवल कार्य हैं। अनुभयरूप पुरुष है। वह न तो विकृति है और न प्रकृति ही।

चेतनता और पुरुष

कुछ लोगोंके मतसे शरीरका गुण ही चेतनता है। वे शरीरको ही अधिकरण, स्वतन्त्र, द्रव्य और धर्मी मानते तथा चेतनता या आत्माको आधेय, परतन्त्र, गुण और धर्म मानते हैं! वे कहते हैं, जैसे किसी स्वतन्त्र खम्भेका परतन्त्र गुण (उसकी लम्बाई) उसके साथ ही सदा रहता है और खम्भेके विनष्ट होनेपर लम्बाईका भी विनाश हो जाता है,उसी तरह गुणी(शरीर)के साथ गुण(चैतन्य) रहता तथा उसीके साथ विनष्ट हो जाता है। वे लोग यह भी कहते हैं कि, जैसे तण्डुल-चूर्ण, गुड़ आदिके मेलसे बने हुए मद्यमें स्वयं नशा करनेकी शक्ति आ जाती है, उसी तरह पृथिवी, जल और अग्नि आदि भूतोंके मेलसे रचित शरीरमें स्वयं चैतन्य-

गुण आ जाता है। फलतः आत्मा या चेतनता शरीरका स्वाभाविक धर्म है,—संसारमें कोई स्वतन्त्र चेतनता अलग नहीं हैं!

इस तर्कावलीका साङ्ख्य उत्तर देता है,—भौतिक देहका स्वाभाविक धर्म चैतन्य नहीं है; क्योंकि, प्रत्येक भूतमें चेतनता नहीं देखी जाती। * जिस पदार्थका जो धर्म है, वह सदा उसके साथ देखा जाता है; चाहे पदार्थोंका समुदाय रहे या एकदेश रहे। जैसे प्रत्येक जड़ पदार्थका धर्म स्थानावरोध या जगह छेकना है—चाहे वह जड़ पदार्थ बड़ा हो या छोटा, जर्रा हो या पहाड़; परन्तु वह अवश्य कुछ न कुछ स्थान छेकेंगा ही। परन्तु जड़के धर्म या गुण माने हुए चैतन्यमें यह बात नहीं पायी जाती। चैतन्य वहीं देखा जाता है, जहाँ शरीर है। भौतिक शरीरके सिवा वह अन्यान्य प्रत्येक भूतमें नहीं देखा जाता। इसलिये चैतन्य देहका स्वाभाविक धर्म नहीं है।

महर्षि कपिल और भी कहते हैं,—यदि चैतन्य देहका धर्म होता, तो किसीकी कभी मृत्यु ही नहीं होती! † देखा जाता है कि, चैतन्यके अभावके विना मृत्यु नहीं होती और यदि वह चैतन्य शरीरका धर्म होता, तो कभी भी वह शरीरसे अलग ही नहीं हो सकता। जैसे आगका स्वाभाविक धर्म (गर्मी) कभी उससे अलग नहीं होता; उसी तरह शरीरमें सदा चेतनता भी

---

* न सांसिद्धिकं चैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः। साङ्ख्यसूत्र।

† प्रपञ्चमरणाद्यभावश्च। साङ्ख्यसूत्र।

रहती, जिससे त्रिकालमें भी शरीरका विनाश नहीं होता। इसलिये चैतन्य देहका स्वाभाविक धर्म या गुण नहीं है।

महर्षि कपिलने मदिरावाली बातका भी मुंहतोड़ उत्तर दिया है। उन्होंने कहा है, मदशक्तिकी तरह चैतन्य कहींसे हठात् आया हुआ गुण नहीं है। इसका कारण यह है कि, जिन जिन आधारोंमें सूक्ष्मरूपसे जो-जो गुण रहते हैं, उन उन आधारोंके इकट्ठा करनेपर उन उन गुणोंका विकास होता है।* चावल और गुड़ आदि प्रत्येकमें पहलेसे ही नशेकी शक्ति, सूक्ष्म रूपसे, स्थित रहती है, जिससे कि, उनका सांहत्य (मेल) करनेपर मादकता विकसित हो जाती है। परन्तु चेतनताके उदाहरणमें यह बात नहीं देखी जाती ; क्योंकि, देहके उपादान भूतोंमें या शुक्र-शोणितमें चेतनता नहीं देखी जाती। इसलिये यह स्पष्ट है कि, भूतोंके कार्य (शरीर) में चेतनता नहीं उत्पन्न हो सकती। इसके साथ ही यह भी बात है कि, कारण-गुणके अनुसार ही कार्य-गुणका प्रादुर्भाव होता है। इसलिये कारणरूप भूतोंमें चैतन्याभाव रहनेके कारण उनके कार्यरूप शरीरमें भी चैतन्यका अभाव स्वयंसिद्ध है।

इतनी बातें समझनेके बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि, चैतन्य शरीर, जड़ या भूतका धर्म नहीं है, वह उस पदार्थका धर्म है, जो जड़से स्वतन्त्र और कार्यकारी पदार्थ है। वह कार्यकारी इसलिये है कि, ब्रह्माण्डके किसी भी जड़ पदार्थमें काम

---

* मदशक्तिवच्चेत् प्रत्येकपरिदृष्टेः सांहत्ये तदुद्भवः। साङ्ख्यसूत्र।

करनेकी शक्ति नहीं देखी जाती और जब तक जड़में चैतन्य रहता है, तभी तक उसमें कार्यकारिणी शक्ति देखी जाती है। इसपर कितने ही लोग यह आक्षेप करते हैं कि, कुल्हाड़ीमें भी काम करनेकी शक्ति देखी जाती है; इसलिये उसमें भी चैतन्य या उसका अधिकरण मानना चाहिये। परन्तु यह आक्षेप निर्मूल है; क्योंकि, क्रियाका कारण इच्छा है और इच्छा कुल्हाड़ी या किसी भी जड़रूप कारणमें नहीं देखी जाती। फलतः जिसमें स्वातन्त्र्य और इच्छाशक्ति है, वही चेतन है—किसी-किसी मतमें वह चैतन्य है और उसके अधिष्ठानका नाम चेतन है। अस्तु।

यहां यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि, साङ्ख्य चैतन्यको, जड़ और चेतनके संयोगसे, व्यक्त हुआ पदार्थ मानता है। साङ्ख्य इसी चैतन्यके अधिष्ठानको कर्त्ता-धर्त्ता मानता है और उसके मतमें यही अधिष्ठान जीव भी है। इससे बिल्कुल स्वतन्त्र विशुद्ध चेतनको साङ्ख्य पुरुष कहता है।

साङ्ख्य पुरुषको अनादि, सूक्ष्म, सर्वगत, चेतन, निर्गुण, नित्य, द्रष्टा, भोक्ता, अकर्त्ता और अप्रसवधर्मी मानता है। देहका एक नाम 'पुर' है और उसीमें सोया हुआ मालूम पड़नेसे साङ्ख्य आत्माको पुरुष कहता है। आत्मा या पुरुषकी उत्पत्ति अथवा अभिव्यक्ति ही नहीं हुई है; इसलिये उसे अनादि कहा जाता है। वह इन्द्रियोंसे देखा नहीं जाता; इसलिये सूक्ष्म है। वह पूर्ण है; इसलिये उसे सर्वगत कहा जाता है। सुख, दुःख आदिको

वह समझता है और जड़ शरीरको चेतित करता है ; इसलिये वह चेतन है। सत्त्व, रज और तम नामके तीनों गुणोंसे अतीत होनेके कारण वह निर्गुण है। वह उत्पन्न और उत्पादक नहीं है ; इसलिये नित्य है। वह प्रकृति और प्राकृतिक पदार्थों-को देखता या प्रकाश करता है ; इसलिये वह द्रष्टा है। सुख, दुःखका भोग करनेके कारण वह भोक्ता है। वह कुछ कार्य नहीं करता ; इसलिये अकर्त्ता है। पुरुषसे कभी कुछ उत्पन्न नहीं हुआ है ; इसलिये वह अप्रसवधर्मी है। उसी पुरुषको अक्षर, ब्रह्म, क्षेत्रज्ञ, प्राणी, जीव आदि भी कितने ही शास्त्र कहते हैं। यहां यह बात भी खयाल करनेकी है कि, साङ्ख्यका पुरुष सदा एकरूप रहता है ; इसलिये वह किसीका उपादान कारण नहीं है।

पुरुष सचेतन और ज्ञाता आदि सब कुछ है ; परन्तु निर्गुण होनेके कारण कर्मके साधन उसके पास नहीं हैं। इधर प्रकृति काम करनेवाली है ; परन्तु जड़ या अचेतन होनेके कारण वह काम करना ही नहीं जानती। इस तरह अंधी प्रकृति और लँगड़े पुरुषको संसार-रचनाके लिये एक दूसरेकी सहायता लेनी पड़ती है। जैसे अन्धेके कन्धेपर लँगड़ा बैठकर, आपसकी सहायतासे, दोनों रास्ता तै कर लेते हैं, वैसे ही प्रकृति और पुरुषका संयोग हो जानेपर सृष्टिके सब कार्य हो जाते हैं। *

जैसे नाटककी रंगभूमिमें, दर्शकोंके मनोरञ्जनार्थ, एक ही नटी,

* पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः। साङ्ख्यकारिका, २१।

विविध विमोहक रूप बना कर नाचती है, वैसे ही पुरुषके पुरुषार्थ और उसके लाभके लिये प्रकृति भी अनेक रूप बना-बना कर नाचा करती है। * प्रकृतिके इसी नाचको देखकर, मोहसे भूल जानेके कारण, पुरुष प्रकृतिके गुण-स्वभावको अपना ही मान बैठता और इस प्रकार वह अपनेको फँसा कर मुक्तिसे वञ्चित रह जाता है। पुरुष सदा कार्यसे परे और निर्गुण है। प्रकृति उसका दर्पण है। जब वह दर्पण (बुद्धिरूप) स्वच्छ हो जाता है, तब उसमें पुरुष अपना सच्चा स्वरूप देखने लगता और उसे बोध हो जाता है कि, 'मैं प्रकृतिसे, सुख, दुःख, कर्त्तृत्व आदिसे, भिन्न हूं, मैं सदा ज्ञानमय और सदा मुक्त हूँ।' पुरुषको जब इस प्रकारका सात्त्विक ज्ञान हो जाता है, तब उसके सामने प्रकृति अपना नाचना-खेलना बिलकुल बन्द कर देती है! अपना और प्रकृतिका तत्त्व पहचाने हुए ऐसे ही पुरुषको लोग शास्त्रोंमें ज्ञाता और कृतकृत्य कहते हैं। †

साङ्ख्यवादियोंका कहना है कि, सभी शरीरोंमें एक पुरुष नहीं है, प्रत्येक शरीरमें अलग-अलग पुरुष हैं। उनके मतसे जब प्रत्येक मनुष्यका जन्म, मृत्यु और जीवन अलग-अलग हैं और जब कोई दुःखी और सुखी है, तब यही मानना उचित है कि, प्रत्येक आत्मा या पुरुष मूलसे ही भिन्न है और उसकी

---

* साङ्ख्यकारिका, ४९।

† महाभारत, शान्तिपर्व, १९४, ५८, २४८, ११ और ३०६—३०८ तथा वेदान्तभाष्य १।१।४ देखिये।

संख्या अनन्त है। फलतः सांख्यमें पुरुष शब्दके उच्चारणसे असङ्ख्य पुरुषोंके समावेशका ही बोध किया जाता है। कुछ साङ्ख्यवादी यह भी कहते हैं कि, एक ही पुरुष माननेसे एक पुरुषके मुक्त होते ही संसारके सारे शरीरधारी विमुक्त हो जायँगे, जिससे विश्वकी लीला ही समाप्त हो जायगी! इस लिये अनन्त पुरुष मानना ही उचित है। यहाँ सांख्य और वेदान्तमें बड़ा अनैक्य है।

जिस पुरुषको तत्त्व-ज्ञान नहीं होता, वह जन्ममरणके चक्कर से छुट्टी नहीं पा सकता—नाना योनियोंमें घूमा करता है। इधर जिसे तत्त्व-ज्ञान हो जाता है, उसे भी प्रारब्ध कर्मके या पूर्व संस्कारके कारण शरीर धारण किये रहना पड़ता हैं। *

सांख्यके मतसे स्वर्ग अनित्य हैं; इसलिये जिसे जन्म-मरणसे छुट्टी पानी है, उसे संन्यास लेनेके सिवा दूसरा कोई रास्ता नहीं है। महर्षि कपिलको यह वैराग्य, जनमते ही, मिला था। परन्तु यह स्थिति सब लोगोंको जन्मसे ही नहीं प्राप्त हो सकती; इसलिये तत्त्व-विवेकसे प्रकृति और पुरुषकी भिन्नताको पहचान कर प्रत्येक पुरुषको अपनी बुद्धि शुद्ध कर लेनी चाहिये। बुद्धिके शुद्ध हो जानेपर उसमें ज्ञान, वैराग्य आदि गुण उत्पन्न हो जाते हैं और अन्तमें पुरुषको कैवल्य मिल जाता है। सांख्यके मतानुसार धर्मसे स्वर्गकी प्राप्ति होती और ज्ञान तथा वैराग्यसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। कैवल्य प्राप्त करनेपर

---

* सांख्यकारिका १८,४४,४५, ६७।

ही मनुष्यके अशेष दुःख विनष्ट होते हैं। कैवल्यका अर्थ अकेलापन या प्रकृतिके साथ संयोग न होना है। सांख्यवादियोंके कथनानुसार प्रकृतिके वियोगसे ही पुरुषको मोक्ष प्राप्त होता है। उस दशामें पुरुष त्रिगुणातीत, शान्त और ज्ञानमय हो जाता है। इसीमें उसकी कृतकृत्यता है। भगवान् शङ्कराचार्यका भी यही सिद्धान्त है। *

गीता (१३।१९—३४) में भी सांख्यवादियोंके प्रकृति-पुरुषका विशेष वर्णन है। गीताके चौदहवें अध्यायमें (२२—२७) त्रिगुणातीत अवस्थाका वर्णन है। परन्तु वह वर्णन सांख्यके विचारसे ठीक ठीक नहीं मिलता। जो हो, इसमें तो सन्देह ही नहीं कि, साङ्ख्यके युक्तिवादका आश्रय सभी शास्त्रोंने लिया है।

सांख्यशास्त्रमें ऐसा एक मूलतत्त्व है, जो अनादि, नित्य, असीम, जड़ और परिणामी है तथा जिसके अव्यक्त, प्रधान एवं प्रकृति आदि तीन नाम खूब प्रचलित हैं। सांख्यवादी कहते हैं, जो इस विश्वका मूल कारण या उपादान है, उसीका एक नाम प्रकृति रखा गया है। † अत्यन्त सूक्ष्म या अतीन्द्रिय होनेके कारण उसका एक नाम अव्यक्त है; परन्तु किसी-किसीके मतमें इस व्यक्त

सांख्यकी प्रकृति

---

* प्रकृतिरिह मूलकारणस्य संज्ञामात्रम्।

† देखिये,—वेदान्तसूत्र, शंकरभाष्य, २।१।३।

विश्वकी अव्यक्त अवस्था होनेके कारण उसका नाम अव्यक्त है। जैसे बीजमें वृक्ष छिपा रहता है, वैसे ही उसमें, विश्वके छिपे रहनेके कारण, उसका प्रधान नाम भी है। उसीसे यह दृश्य, विशाल ब्रह्माण्ड, सृष्ट हुआ है; इसलिये उसका नाम प्रकृति है। प्रकृतिके ही नाम, दूसरे शास्त्र, माया, जगद्योनि, अज्ञान, ईश्वरकी इच्छाशक्ति और सृजनशक्ति आदि रखे हुए हैं। अत्यन्त सूक्ष्म होनेके कारण प्रकृति इन्द्रियोंसे नहीं देखी जाती; परन्तु जैसे कपड़ेको देखकर उसके कारणरूप सूतका अनुमान किया जाता है, वैसे ही संसारको देखकर उसके कारण, प्रकृतिका अनुमान होता है। इसलिये अन्तःकरणकी प्रज्ञा द्वारा यह गोचर हैं।

यह स्पष्ट देखा जाता है कि, जिस पदार्थकी प्रकाशावस्था देखी जाती है, उसकी कभी न कभी अप्रकाशावस्था भी देखी जाती है। जैसे प्रत्येक कार्यका कारण होता हैं,उसी तरह प्रत्येक व्यक्त पदार्थकी अव्यक्त दशा भी होती है। जैसे दूधमें घी। जिस समय दूधमें ही घी रहता है, उस समय उसकी अव्यक्तावस्था, अप्रकाश-दशा अथवा कारणात्मा रहती है तथा जिस समय वह, मथानीसे मथनेके वाद, घी हो जाता है,उस समय उसकी व्यक्तावस्था, प्रकाशदशा और कार्य्यात्मा हो जाती है। इस तरह विश्वके प्रत्येक पदार्थकी ये दो दशाएँ होती हैं। अव समझनेकी वात यह है कि, जिस पदार्थकी व्यक्तावस्था या कार्यदशाका नाम सृष्टि, संसार या जगत् है, उसी पदार्थकी

अव्यक्तावस्था या कारण-दशाका नाम अव्यक्त, प्रकृति तथा प्रधान आदि है। इसी बातको हमारे शास्त्र, विभिन्न रीतियोंसे, समझा रहे हैं। मनुजी इस पदार्थका नाम तम रखते हैं, ईश्वर-कृष्ण अव्यक्त रखते हैं, महर्षि कपिल सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणकी साम्यावस्था रखते हैं, गीतामें इसे भगवान् अव्यक्त कहते हैं और अन्यान्य शास्त्र इसका बीज नाम बताते हैं। *

सांख्यके मतसे समूची सृष्टि त्रिगुणात्मिका है। विश्वमें ऐसा कोई तत्त्व नहीं, वस्तु नहीं, जिसमें :सत्त्व, रज और तम नामके तीनों गुण नहीं रहते हों—चाहे किसीकी कहीं कमी-वेशी ही क्यों न हो। ये तीनों गुण क्रमशः सुखात्मक, दुःखात्मक और मोहात्मक हैं। सत्त्वपदार्थ लघु, प्रकाशक और ज्ञानवान् है। रजोगुण क्रियाशील वा स्पन्दवान् है। तमोगुण गुरु और आच्छादक है। ये सब गुण दीपक की तरह अपना अपना कार्य स्वयं ही कर लेते हैं। तीनों परस्परमें सहायक और आपसके अधीन हैं। इनमेंसे कोई भी गुण कभी भी दूसरेको छोड़कर अलग नहीं रह सकता। जैसे अनल और तैल बिलकुल विभिन्न

* आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्। मनुस्मृति।
व्यक्तविपरीतमव्यक्तम्। साङ्ख्यकारिका।
सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः। साङ्ख्यसूत्र।
अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत! गीता।
यथाश्वत्थकणिकायामन्तर्भूतो महाद्रुमः।
निष्पन्नो दृश्यते व्यक्तमव्यक्तात् सम्भवस्तथा।

पदार्थ हैं ; परन्तु परस्परमें मिलकर रूप-प्रकाशका कार्य करते हैं, वैसे ही विभिन्न धर्मो होनेपर भी तीनों गुण मिल कर सृष्टिका कार्य कर लेते हैं।

यहाँ यह बात नहीं भूलनी चाहिये कि, जैसे वैशेषिक आदि दर्शन गुणको परतन्त्र और द्रव्याश्रित मानते हैं, वैसे इन गुणोंको साङ्ख्य नहीं मानता। साङ्ख्य इन्हें द्रव्य मानता है। असल बात तो यह है कि, साङ्ख्य द्रव्यसे पृथक् गुणको मानता ही नहीं ; उसके मतमें गुणोंका समुदाय ही द्रव्य है। साङ्ख्यके मतानुसार सभी गुण बल, बाधा, सत्ता, ज्ञान, प्रकाश आदिसे सदा सम्बद्ध और सबके नियामक हैं। कुछ लोग कहते हैं कि, जैसे तीन बार पिरोई हुई, तीन तन्तुओंकी, रस्सीको भी लोग गुण कहते हैं, वैसे ही पुरुषका बन्धन करने :वाली रज्जुका गुण रखनेके कारण इन तीनोंको भी लोग गुण ही कहा करते हैं।

अब यह बात स्पष्ट समझमें आ जायगी कि, विश्वके प्रत्येक पदार्थमें तीनों गुणोंके रहनेके कारण उनके मूल उपादान प्रकृतिमें भी तीनों गुण रहते हैं। बल्कि इतना कहना भी ठीक नहीं है ; क्योंकि, वास्तवमें तीनों गुणोंके समुदायके सिवा प्रकृति कोई दूसरा पदार्थ ही नहीं है। इसीलिये प्रकृतिका एक नाम 'त्रिगुणात्मिका' भी पड़ गया है। यह भी बात ध्यान देनेकी है कि, सृष्टि-दशामें जैसे तीनों गुण व्यक्त रहते हैं, वैसे प्रलयदशा या अव्यक्त अवस्थामें नहीं। अव्यक्त अवस्थामें ये बिलकुल साम्य

अर्थात् तुल्यवली और तुष्णीम्भावसे स्थित रहते हैं। इसीसे महर्षि कपिलने कहा है,—"सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः।"

जीवोंके अदृष्टके अनुसार, जब इस साम्यदशाका भङ्ग होता है, तब परिणामिनी सृष्टिका आरम्भ होता है। जैसे बादलका जल, एकरूप और एकरस होने पर भी, भूमि और बीजाश्रयकी विभिन्नताके कारण, पदार्थोंके विभिन्न स्वच्छ और पीले रूप तथा मधुर और अम्ल आदि रस बनाता है, उसी तरह सत्त्व, रज आदि गुण भी, अपनी कमीवेशी तथा प्रावल्य-दौर्वल्यके अनुसार भिन्न-भिन्न पदार्थोंकी सृष्टि कर डालते हैं।

इस तरह साङ्ख्यकी प्रकृति त्रिगुणात्मिका, सर्वशक्तिमती, सर्वव्यापिनी और निःसीम है। उसके एक-एक पर्देमें अनेकानेक ग्रहोपग्रह विराज रहे हैं; अनन्त विश्व चक्कर काट रहे हैं। उसकी असीमताकी भावना करना भी असम्भवसा है!

उसी प्रकृतिका उल्लेख कठ (३।११), मैत्रायणी (६।१०), श्वेताश्वतर (४।१०, ६।१६), गीता :(१८।२०,१३।३०, ६।१०) आदिमें है।

महर्षि कपिलके मतमें सृष्टिके लिये पुरुष और प्रकृतिका संयोग ही मुख्य है। किसी किसी साङ्ख्यवादाके मतमें पुरुष-संयोग और किसी-किसीके खयालसे पुरुष ही सृष्टिका निमित्त कारण या बनाने वाला है। यह लिखनेकी तो शायद जरूरत ही नहीं कि, साङ्ख्यकी प्रकृति सृष्टिका केवल उपादान

कारण भर है। साङ्ख्योंका कहना है कि, जैसे वसन्त ऋतुमें पहले वृक्षोंमें नये-नये पत्ते दीख पड़ते और उनमें क्रमशः फूल तथा फल आने लगते हैं, उसी तरह प्रकृति-पुरुष-संयोग-रूप वसन्तके आते ही प्रकृतिकी मूल साम्यावस्था विनष्ट हो जाती और उसके विविध गुणोंका विकास होने लगता है। पहले पहल प्रकृति अपनी मूल साम्यावस्थामें एकबारगी ही निश्चल रहती है। अदृष्ट, प्रारब्ध या भाग्य द्वारा सर्व-प्रथम पुरुषका प्रकृति पर प्रतिबिम्ब पड़ता है, जिससे उसमें चञ्चलता पैदा हो जाती है। प्रकृतिकी वही प्रथम व्यक्तावस्था है और उसीका नाम साङ्-ख्यमें महत्तत्त्व है। महत्तत्वके बाद ही प्रकृतिमें विशेष फूल-पत्ते लगते हैं। यह सिद्धान्त आज कल यूरोपमें खूब मान्य है।

प्रकृति-पुरुषके संयोगसे जो प्रकृतिमें प्रथम स्पन्दन या कम्पन होता है, उसीका साङ्ख्यमें महत्तत्त्व नाम है। सृष्टिके पहले, जब तीनों गुणोंका साम्य रूप भङ्ग होता है, तब भविष्य जगत्के अंकुर-स्वरूप सात्त्विक प्रकाश आविर्भूत होता है। इसीको महर्षि कपिलने "प्रकृतेर्महान्" कहा है।

महत्तत्त्व

यह महत्तत्त्व प्रकृतिगत सत्त्व द्रव्यका प्रकाश भर है; इसलिये यह भी अत्यन्त सूक्ष्म और निराकार है। सृष्टिके समय सब पदार्थ स्थूल और विनाशके समय सब पदार्थ सूक्ष्म रूपमें चले जाते है। इसी नियमके अनुसार यह महत्तत्त्व प्रकृतिसे कुछ स्थूल होता है और इसीसे इसका नाम 'व्यक्त' है।

इसका महत् नाम इसलिये पड़ा है कि, यह सृष्टिमें सबसे बड़ा तत्त्व है । कुछ लोगोंके मतमें यही मानस सृष्टि भी है। दर्शन-शास्त्रमें इसीके महत्, ज्ञान, मति, आसुरी, प्रज्ञा, ख्याति, बुद्धि, महान्, महत्तत्त्व, बुद्धितत्त्व, अन्तःकरण, मन आदि और विभिन्न शास्त्रोंमें ब्रह्मा, हिरण्यगर्भ, जीवघन तथा समष्टि जीव, समष्टि सूक्ष्मशरीर आदि नाम हैं। यहां मन इन्द्रिय नहीं है, यह उससे विलक्षण एक तत्त्व है।

शास्त्रोंमें इस तत्त्वका इस रीतिसे वर्णन किया गया है,—

"दैवात् क्षुभितधर्मिण्यां तस्यां योनौ परः पुमान् ।
वीर्यमाधत्त साऽसूत महत्तत्त्वं हिरण्मयम् ॥"

इसका मतलब यह है कि, परमात्मा या मायावी प्रभुने साम्य-भङ्ग करनेवाली प्रकृति या मायाको चित्प्रभा-रूप वीर्य धारण कराया, जिसने प्रचुर प्रकाशवाला महत्तत्त्व पैदा किया। सब जगह बात एक ही है, वर्णन-शैली भिन्न-भिन्न है। यह प्रकाश सूर्य, चन्द्र आदिकी किरणोंके समान नहीं होता; यह ज्ञान-स्वरूप प्रकाश है। सुषुप्तिका भान होते ही जैसे चैतन्यकी स्फूर्त्ति होती है, वैसे ही सत्त्व, रज आदिका साम्य भंग होते ही सूक्ष्म जगत्का प्रकाशक महत्तत्त्व पैदा हो जाता है। प्रकृति और महत्तत्त्वको समझनेके लिये सुषुप्ति और सुषुप्ति-भंग, ये दो शब्द बहुत बढ़िया हैं। प्रकृति (महाप्रलयकी) सब विश्वोंकी सुषुप्ति-स्थानीय है और सत्त्व आदि गुणोंका साम्य-भङ्ग, जगदंकुर आदि सुषुप्ति-भङ्गकी पूर्वभाविनी दशा है। जिस समय प्रलय

होता है, उस समय पहले स्थूल प्रपञ्चकी स्थूलता नष्ट होती है, बाद सूक्ष्म प्रपञ्च सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म मूल कारण, प्रकृति, में प्रवेश करता है। *

एक विद्वान्‌ने महत्तत्वको इस रीतिसे समझाया है,—चित्प्रभाकी बढ़तीके कारण अप्रकाशका अभिभव हो जानेपर जो प्रकाश उदित होता है, उसका नाम व्यञ्जना या जगच्चित्रकी सूक्ष्म रेखा है। उसीका नाम महत्तत्त्व भी है। †

चित्प्रभा विकीर्ण करनेवाला पुरुष महाप्रलयमें भी रहता है; परन्तु उसका कुछ चेतनीय न रहनेके कारण, रहना न रहनेके बराबर ही रहता है। भला कोई आलोकनीय पदार्थ न रहे, तो आलोकसे क्या जरूरत ?

जो हो। यह महत्तत्त्व ही आगे चलकर विविध शरीरोंमें व्यष्टि बन जाता है, जिसे साङ्ख्य अन्तःकरण कहता है। किसी किसी साङ्ख्याचार्यके मतसे अन्तःकरणके जिस भागमें निश्चयात्मिका वृत्ति पैदा होती हैं, उसे ही बुद्धि कहा जाता और अधिकांश लोगोंके मतसे बुद्धिके सिवा अन्य कोई महत्तत्त्व ही इस शरीरमें नहीं है। यह महत्तत्त्व सर्वकार्य-व्यापक है।

---

* महाप्रलयके वर्णनमें मनुजीने भी "प्रसुप्तमिव सर्वतः" और प्रलयावसानमें "अव्यक्तं व्यञ्जयन्निदम्" आदि साङ्ख्यके अनुसार ही लिखा है।

† विश्वमात्मगतं व्यञ्जन् कूटस्थो जगदङ्कुरः।
स्वतेजसा जितं तीव्रमात्मप्रच्छादनं तमः॥

इस महत्तत्वकी उत्पत्तिमें एक वड़ा भारी रहस्य है। वह यह है कि, जैसे किसी भी कामको करनेके पहले मनुष्यको बुद्धि या इच्छा हुआ करती है, उसी तरह अपना विस्तार करनेके लिये पहले पहल प्रकृतिको भी बुद्धि होती है। हाँ, दोनोंमें कुछ अन्तर अवश्य है। सचेतन होनेके कारण मनुष्य अपनी बुद्धिको जानता है और जड़ रहनेके कारण प्रकृतिको महत्तत्व या अपनी बुद्धिका ज्ञान नहीं होता। प्रसिद्ध पश्चिमी विद्वान् हेक्लने भी "The Riddle of the Universe" में लिखा है कि, जड़ पदार्थोंमें भी प्रायः मनुष्यों जैसी बुद्धि-शक्ति या इच्छा-शक्तिका मानना आवश्यक है; क्योंकि, इसके विना उनमें गुरुत्वाकर्षण, लौहचुम्बकमें आकर्षण और रसायन-क्रियामें अपसारण आदि नहीं हो सकते। इस खयालसे भी प्रकृतिसे अस्वयंवेद्य बुद्धिकी उत्पत्तिका, सांख्यवादियोंका, सिद्धान्त तर्क-सम्मत विदित होता है। यहाँ यह वात भी स्पष्ट रीतिसे जान लेनी चाहिये कि, प्रकृतिके बुद्धितत्त्व और मनुष्यकी बुद्धिमें केवल ऊपरी भेद है; किन्तु मूलमें दोनों एक ही हैं। धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य आदि बुद्धिकी आठ वृत्तियाँ हैं। इनमें पहलेकी चार सात्त्विक और बादकी चार तामसिक हैं। परन्तु यह ध्यानमें रखना चाहिये कि, बुद्धिकी असाधारण वृत्ति 'निश्चय' है।

सत्त्व, रज और तमका परिणाम होनेके कारण आगे चल कर बुद्धितत्त्व अनेक रूप धारण कर लेता है। इन गुणोंके

परिणाम, विभिन्न रीतियोंसे, होते चले जाते हैं, जिससे इस बुद्धितत्त्वसे अनन्त पदार्थ हो जाते हैं। हाँ, अव्यक्तसे उत्पन्न यह बुद्धितत्त्व भी अत्यन्त सूक्ष्म अवश्य है; परन्तु प्रकृतिकी तरह यह अव्यक्त नहीं है; इसका ज्ञान हो सकता है। फलतः अत्यन्त सूक्ष्म होने पर भी प्रकृतिके सामने यह स्थूल और व्यक्त ही माना जाता है। प्रकृतिका एकत्व भंग कर अनेकत्व फैलानेवाला तत्त्व यही है।

अहंकार

अनेकता उत्पन्न करनेवाला सबसे बड़ा पदार्थ अहङ्कार है। जब तक 'मैं' और 'तू' का भाव नहीं पैदा होता, तबतक एकता नहीं भंग होती। इसीलिये साङ्ख्य बुद्धि-तत्त्वसे अहंकारकी ही उत्पत्ति मानता है और अहंकारको बुद्धितत्त्वकी तरह एक नहीं, अनेक मानता है। तीनों गुणोंका परिणामात्मक-समुदाय बुद्धि एक है और अहङ्कार सात्त्विक या वैकारिक, राजसिक या तैजस तथा तामसिक या भूतादि भेदसे तीन तरहका है। यह भी यहाँ समझनेकी बात है कि, हम समष्टि-बुद्धितत्वकी ही यहाँ चर्चा कर रहे हैं। एक बात और है। वह यह कि, मनुष्यमें प्रकट होनेवाला अहङ्कार और वह अहंकार, जिसके कारण पेड़, पत्थर, पानी आदि पदार्थ एक ही मूल (प्रकृति) से उत्पन्न होते हैं—दोनों एक ही जातिके हैं। भेद इतना ही है कि, मनुष्यको इसका ज्ञान होता है और वह 'मैं' 'मैं' 'तू' 'तू' कहता है; परन्तु जड़ताके कारण दूसरेमें अहंकारका ज्ञान नहीं होता। फलतः

अहंकारका मूल सब जगह समान ही है। विशेषतः यही अहंकार प्रकृतिको खण्डित और सावयव करता है। अहंकार बुद्धिका ही एक भाग है और यह निश्चित सिद्धान्त है कि, जब तक बुद्धि नहीं होती, तबतक अहंकार नहीं होता। इस लिये साङ्ख्योंने बुद्धिके बाद अहंकारकी ही सृष्टि मानी है।

मूल अहंकार सर्वपुरुषावलम्बी और शरीरस्थ व्यष्टि अहंकार एकपुरुषावलम्बी है। पुरुषका जो बुद्धि-प्रतिबिम्बन होता है, वह पुरुष-प्रकाशक और अहंशब्दका बोध्य है। प्रकृतिके प्रथम परिणाम (बुद्धि) की अपेक्षा द्वितीय परिणाम (अहंकार) अत्यन्त विलक्षण है और इसीसे वह बुद्धिसे बिलकुल भिन्न गुणकासा तत्त्व भी है। पहले अहंकार एक रहता है, पश्चात् शरीरादि द्वारा विच्छिन्न हो जाता है। पहलेको 'समष्टि अहंकार' और दूसरेको 'व्यष्टि अहंकार' कहा जाता हैं। विच्छिन्न हो जानेपर वह अन्तःकरणमें निरूढ़ हो रहता है। कुछ सांख्योंके सिद्धान्तसे महत्तत्त्व, अन्तःकरण और अहंकार, तीनों मूल द्रव्यके केवल परिणाम भर हैं। अहंकारसे ही ममकार या ममताकी उत्पत्ति है। अहंकारकी वृत्ति या धर्म अभिमान है।

प्रकृति, बुद्धि और अहंकारको समझानेके लिये अज्ञान, ज्ञान और ज्ञानकार्य—ये तीन उपमा-शब्द बहुत ही ठीक हैं। अज्ञानमयी प्रकृति अव्यक्त रहती है, इन्द्रिय-क्रिया (स्पन्दन) द्वारा सत्त्वकी अभिवृद्धि होनेपर निश्चय-ज्ञानात्मिका बुद्धि पैदा होती है और ज्ञानके बाद उसके कार्यरूप 'मैं' का जन्म होता है। इसी

बातको समझानेके लिये महर्षि कपिलने "महदाख्यमाद्यं कार्यम्" और "चरमोऽहंकारः" आदि सूत्रोंकी अवतारणा की है।

कुछ लोग अहङ्कारका नाम तैजस, अभिमान, भूतादि और धातु आदि भी रखते हैं।

अहङ्कारकी उत्पत्तिके बाद पञ्चतन्मात्राओं और एकादश इन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है। इस समय प्रकृतिकी विकाशावस्था कुछ प्रकट रूप धारण करती हैं। तामसिक अहङ्कारसे पञ्चतन्मात्राओं और सात्त्विक अहङ्कारसे एकादश इन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है। राजसिक अहङ्कार दोनोंकी सहायता भर करता है। प्रथम महत्तत्त्वको दुग्धसा समझना चाहिये और तन्मात्राओं तथा इन्द्रियोंको क्रमशः छांछ और जलसी। भोग करनेके लिये जैसे हमलोग कई भोग्य पदार्थोंकी सृष्टि करते हैं, वैसे ही हिरण्यगर्भ (महत्तत्त्व), अपने अहङ्कारकी सहायतासे, भोगके लिये संकल्प कर तन्मात्राओं और इन्द्रियोंकी सृष्टि करता हैं। शायद यह लिखनेकी आवश्यकता नहीं कि, समष्टि अहङ्कार ही तन्मात्राओं और इन्द्रियोंकी सृष्टि करता है, हमलोगोंका व्यष्टि अहङ्कार नहीं। उदाहरणके लिये पृथिवी आदि समझना चाहिये। महापृथिवी ही स्थावर, जङ्गम आदिकी सृष्टि कर सकती है, ढेला (लोष्ट्र) नहीं।

तन्मात्राएँ और इन्द्रियां

पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पांच कर्मेन्द्रियोंके अतिरिक्त साङ्ख्य मनको भी एक इन्द्रिय ही मानता है ; इसलिये उसके मतमें ग्यारह

इन्द्रियाँ हैं। दसों इन्द्रियों और मनमें यही भेद है कि, मनमें सत्त्वगुणकी विशेष मात्रा रहती है और इन्द्रियोंमें रजोगुणकी अधिकता रहती है। मन दोनों तरहकी इन्द्रियोंको सहायता भी देता है। किसी-किसीके मतमें अन्तःकरण ही का नाम मन है। मनकी असाधारण वृत्ति सङ्कल्प करना है।

तन्मात्राओंके अपर नाम भूतसूक्ष्म और अविशेष भी हैं।* वेदान्तियोंके मतसे पाँचों तन्मात्राएँ अपञ्चीकृत पञ्चमहाभूत हैं। कुछ लोगोंके मतसे ये ही नैयायिकों और वैशेषिकोंके परमाणु भी हैं। परन्तु कुछ लोगोंका इससे विपरीत खयाल हैं। वे कहते हैं कि, पाँच अणुओंकी एक तन्मात्रा मानना ही युक्तियुक्त है। यहाँ यह भी कह देना उचित है कि, नैयायिक, वैशेषिक आदि परमाणुवादियोंके विचारसे आकाशका परमाणु (या तन्मात्रा) नहीं है। इनके मतसे आकाश एक सूक्ष्म और अखण्ड पदार्थ है।

तन्मात्रा शब्दका अर्थ है—'केवल वही'। इस लिये शब्द-तन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, रसतन्मात्रा औप गन्ध-तन्मात्रा आदि पाँचों तन्मात्राओंसे केवल उनके मूल रूपोंका ही बोध होता है। इस रीतिसे शब्दतन्मात्रामें केवल एक अनभि-व्यक्त या अविशेष शब्दके सिवा शब्दके उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत, निषाद आदि

---

* अविशेषका अर्थ यहां अप्रकटरूपविशेष है।

प्रभेद नहीं रहते। ये सब भेद आकाशमें ही रहते हैं। महर्षि कपिलके मतसे तन्मात्राओंका लौकिक प्रत्यक्ष नहीं होता।

तन्मात्राओंकी उत्पत्ति धीरे-धीरे होती है। पहले शब्द-तन्मात्रा या सूक्ष्म आकाशकी उत्पत्ति होती है। पश्चात् स्थूल आकाशकी उत्पत्ति होती है। हिरण्यगर्भ द्वारा अहङ्काराधिष्ठित स्थूलाकाशमें विकार उत्पन्न होनेपर स्पर्शतन्मात्रा या सूक्ष्म वायुकी उत्पत्ति होती है। इस तरह क्रमशः वायुसे रूपतन्मात्रा, रूपतन्मात्रासे अग्नि, अग्निसे रसतन्मात्रा, रसतन्मात्रासे जल,जलसे गन्धतन्मात्रा और गन्धतन्मात्रासे पृथिवीकी उत्पत्ति होती है। इस स्थान तक की सारी सृष्टि केवल शब्द प्रमाण-गोचर और सूक्ष्म हैं।

सांख्यशास्त्रमें इन्द्रियाँ दो तरहकी हैं, एक बाह्य और एक आन्तर। बाहरी इन्द्रियाँ दस और भीतरी एक है। इन्द्रियोंका एक नाम 'काम' भी है; क्योंकि इनकी सहायतासे क्रिया और ज्ञानकी सिद्धि होती है। बाहरी इन्द्रियोंका नाम बाह्यकरण और भीतरीका अन्तःकरण है। चक्षु, कर्ण, नासा, जिह्वा और त्वचा आदि पाँच इन्द्रियोंका नाम ज्ञानेन्द्रियाँ और वाक्, पाणि, पाद, पायु तथा उपस्थ आदि कर्मेन्द्रियाँ है। सबका नाम बाह्येन्द्रिय और बाह्यकरण भी है। विद्यमान वस्तुओंका ग्रहण बहिरिन्द्रियोंसे और त्रिकाल-ग्रहण अन्तरिन्द्रियसे होता है। बहिरिन्द्रियाँ केवल अपने-अपने विषयका ही ग्रहण करती हैं। जैसे चक्षु रूपके सिवा अन्यका गृहण नहीं कर

सकती। इधर अन्तरिन्द्रिय (मन) सभी विषयोंका ग्रहण कर सकती है। इस इन्द्रियकी इसी सामर्थ्यसे मनुष्य भूत, भविष्य आदिका ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इसी सामर्थ्यसे अनुमान-प्रमाण भी कार्य-वाहक होता है।

यहाँ यह बात खूब ध्यानमें रखनी चाहिये कि, मनुष्यके स्थूल कान, नाक आदि इन्द्रिय नहीं हैं, ये इन्द्रियोंके केवल गोलक या अधिष्ठान-स्थान भर हैं। हाँ, इनके भीतर अदृश्य-शक्ति-रूपसे इन्द्रियाँ अवश्य रहती हैं।

अन्यान्य दर्शनोंके मतसे एक बार एक ही इन्द्रियको ज्ञान हो सकता है और साङ्ख्यवादियोंके मतसे एक साथ कई इन्द्रियोंका ज्ञान होना भी सम्भव है।

तन्मात्रोत्पत्तिको 'निरिन्द्रिय-सृष्टि, और इन्द्रियोत्पत्तिको 'सेन्द्रिय-सृष्टि' भी कहा जाता है।

साङ्ख्योंका मत है कि, एकादश इन्द्रियोंके सिवा अधिक इन्द्रियाँ ही नहीं हो सकतीं। यद्यपि शब्दके कण्ठ, तालव्य गान्धार आदि, रूपके सफेद, काला, नीला आदि और खट्टा, मीठा, तीखा आदि अनेक भेद हैं; परन्तु मूल रूप और रस आदि एक ही हैं। इसी तरह इन इन्द्रियोंकी ऐसी ही रचना ही हुई है कि, एक इन्द्रियसे एक ही ज्ञान हो सकता हैं। जैसे आँखसे सुगन्ध मालूम नहीं हो और कानसे रूप नहीं देखा जा सकता। इस तरह ग्यारह विष ग्यारह मूल इन्द्रिय हैं। कर्णेन्द्रियसे शब्द, त्वचा या चम

स्पर्श, नेत्रसे रूप, जीभसे रस और नाकसे गन्धका ज्ञान होता है। मनसे विवेचनीय पदार्थोंका ज्ञान होता है। इसके सिवा ज्ञानेन्द्रियोंसे गृहीत संस्कारोंको निर्णयार्थ उन्हें बुद्धिके सामने उपस्थित करना और बुद्धिके निर्णयानुसार कर्मेन्द्रियोंसे काम लेना भी मनका ही कार्य है। इसीसे मन उभयात्मक कहाता है। वाक् या वचन, पाणि या हाथ, पाद या पैर, पायु या गुदा और उपस्थ या लिङ्ग आदि जो पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं—इनसे ज्ञान नहीं होता, ये अपने अपने कर्म भर करती हैं। इनकी वृत्तियाँ क्रमशः कथन, लेना-देना, विहरण-गमन, त्याग और आनन्द आदि हैं। गीताके १३।५ और वेदान्तके, शारीरक भाष्य, २।४।५।६, में भी एकादश इन्द्रियोंको स्वीकार किया गया है।

इस बातका निर्णय होना कठिन है कि, पहले तन्मात्राओंकी उत्पत्ति हुई है या पहले इन्द्रियोंकी। कोई-कोई साङ्ख्यवादी तो पहले त्वचाकी उत्पत्तिको ही प्रधान मानते हैं। कुछ पश्चिमी आधिभौतिकवादी विद्वान् इस मतको खूब महत्त्व देते हैं। डार्विन साहबकी भी कुछ ऐसी ही राय है। वे सचक्षु और चक्षूरहित, दो तरहके प्राणियोंमेंसे चक्षुवालोंको ही चिरस्थायी मानते हैं।

बुद्धिसृष्टिका नाम प्रत्ययसर्ग और भूत-भौतिक सृष्टिका नाम तन्मात्रसर्ग है।

साङ्ख्याचार्य कहते हैं, वाह्येन्द्रियाँ ग्राम्याध्यक्ष, मन जिला-

धीश, बुद्धि मन्त्री और पुरुष महाराजाके समान हैं। जैसे कर आदि वसूल कर ग्राम्याध्यक्ष जिलाधीशकी, जिलाधीश मन्त्रीकी और मन्त्री महाराजाकी सहायता करता या अपना कर्मफल अर्पण करता है, वैसे ही सारी इन्द्रियाँ अपने अपने विषयोंकी आलोचना कर उन्हें मनके पास उपस्थित करतीं, मन, सङ्कल्प-पूर्वक, उन्हें बुद्धिके पास ला रखता तथा बुद्धि निश्चय करके पुरुषका भोग और अपवर्ग सम्पादित करती है।

साङ्ख्यके मतसे बुद्धि, अहङ्कार और इन्द्रियोंकी वृत्तियोंका एक साथ होना सम्भव है—यह बात पहले भी कही गयी है। साङ्ख्य दृष्टान्त देता है, घोर अन्धकारमें, पलक मारने भर विजलीकी चमक होनेपर, यदि मनुष्य भैरव रव करते और विकराल मुँह बाये बाघ देखता है, तो वह उसी दम भाग खड़ा होता है। इस स्थलमें इन्द्रियोंकी आलोचना, मनका सङ्कल्प, अहंकारका अभिमान, बुद्धिका निश्चय और पादका उल्लम्फन आदि सब वृत्तियाँ एक ही साथ पैदा हो जाती हैं!

जिसके पास बहिरिन्द्रिय-ग्राह्य एक-एक असाधारण गुण है और जिसके परिणाम या परस्पर-सम्बन्धसे स्थावर, जङ्गम आदिकी सृष्टि होती हैं, उसको साङ्ख्यशास्त्र महाभूत कहता है। ये महाभूत पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश आदि पाँच ही हैं, छठा महाभूत संसारमें नहीं है। इसका कारण यह है कि, ऊपर जो महाभूतोंके लक्षण लिखे गये हैं, वे इन्हीं पाँचोंमें घट जाते हैं। इन पाँचोंका

पञ्च महाभूत

नाम 'विशेष' भी है। विशेष शब्दका अर्थ है स्थूल। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि जो पाँच सूक्ष्म या अविशेष भूत हैं, उन्हींसे इनकी उत्पत्ति हुई है। वास्तवमें शब्दादिके घनीभाव ही आकाशादि हैं; इस लिये इनका नाम विशेष या स्थूल है।

पूर्व भूतके बाद पर भूतकी अर्थात् पूर्व भूत आकाशके पश्चात् परभूत वायुकी उत्पत्ति हुई है; इस कारण पूर्व भूतके गुण पर भूतमें भी रहते हैं। जैसे आकाशमें केवल शब्द, वायुमें शब्द और स्पर्श, तेजमें शब्द, स्पर्श और रूप, जलमें शब्द, स्पर्श, रूप और रस तथा पृथिवीमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध आदि पाँचों गुण रहते हैं। आकाश अवकाश देता है, वायु ढोती और चक्कर बनाती है, जल पिघलाता है, तेज तपाता है और पृथिवी धारण करती है। सूक्ष्म इन्द्रियोंके सङ्गसे ये ही शरीर-रक्षा भी करते हैं। इन भूतोंमें कोई सुखकर है, कोई दुःखकर और कोई लघु है तथा कोई गुरु। तैत्तिरीयोपनिषद् (२।१) में इनकी उत्पत्तिका क्रम इस प्रकार बताया गया है,—परमात्मासे आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्नि या तेजसे जल, जलसे पृथिवी और पृथिवीसे वनस्पतियाँ आदि उत्पन्न हुई हैं। उपनिषद्का यह वर्णन साङ्ख्य-विज्ञानके ऊपर ही निर्भर है। भास्कराचार्यका भी यही मत है (निरुक्त, १४।४)। वनस्पति आदिकी उत्पत्ति पञ्च-महाभूतोंके मिश्रणसे हुई है। वेदान्ती लोग इस मिश्रणक्रियाको पञ्चीकरण कहते हैं। पञ्चीकरणसे ही अन्न, लोक, पत्र, पुष्प और

अण्डज, जरायुज, स्वेदज, उद्भिज्ज आदि सब चराचर उत्पन्न हुए हैं।

परन्तु उपनिषदोंमें इसके विपरीत, तेज, जल और पृथिवी या त्रिवृत्करणसे ही विविध सृष्टि मानी गयी है। छान्दोग्योपनिषद्के छठे अध्यायमें इसका विस्तृत विवेचन किया गया है। किन्तु अन्यान्य कई उपनिषदों और ग्रन्थोंमें साङ्ख्यके मतानुसार पञ्च महाभूतोंका ही विवरण है। उदाहरणार्थ, प्रश्नोपनिषद् (४।८), बृहदारण्यकोपनिषद् (४।४।५), श्वेताश्वतरोपनिषद् (२।१२), वेदान्तसूत्र (२।३।१—१४), गीता (७।४,१३।५) और महाभारत, शान्तिपर्व, (१८४—१९६) देखिये। इसके सिवा श्वेताश्वतरोपनिषद् (४।५) की "अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः" श्रुति तो साङ्ख्योंका प्रधान अस्त्र ही है।

साङ्ख्यके मतानुसार शरीर दो तरहका है। एकका नाम सूक्ष्म और एकका स्थूल है। बुद्धि, अहङ्कार, ... इन्द्रियाँ और पञ्चतन्मात्राएँ, इन ... तत्त्वोंका सूक्ष्म शरीर और पञ्चमहाभूतोंका

शरीरसृष्टि

माता-पिता द्वारा, स्थूल शरीर होता है। सूक्ष्म शरीर आ... सृष्टिमें ही पैदा होता और महाप्रलय वा मुक्ति होने तक रहता है ... इस लोकसे परलोक जाने-आनेका कार्य यही सूक्ष्म शरीर ... है। यह कभी मरता-जीता भी नहीं है। मरने-जीनेका कार्य स... शरीरके ही जिम्मे है। मनीषी विज्ञानभिक्षुके मतसे एक अ...

शरीर भी हैं, जो लोकान्तर-गमनके समय जीवका आश्रय-स्थल रहता हैं। विना आश्रयके कभी लिङ्ग-शरीर नहीं रहता। स्थूल शरीरके सूक्ष्म अंशसे ही यह बना है। सूक्ष्म शरीरका ही नाम लिङ्गशरीर भी है। प्राकृतिक प्रलय या मोक्षमें लीन होनेके कारण या आत्माका अनुमापक और भोगका प्रधान उपकरण होनेके कारण इसका 'लिङ्गशरीर' नाम पड़ा है। इसी लिङ्ग-शरीरमें सुख, दुःखका भोग होता है। विलकुल जड़ होनेके कारण स्थूल शरीरको सुख-दुःखका उपभोग नहीं होता। हाँ, यह अवश्य है कि, जिस समय सूक्ष्म शरीरके साथ स्थूल शरीरका संयोग रहता है, उस समय उसका भोग स्पष्ट होता है और उसके वियोगकालमें भोग अस्पष्ट हो जाता है।

हिरण्यगर्भ या महत्तत्त्वका उपाधि-रूप लिङ्गशरीर प्रथम एक ही उत्पन्न हुआ; काल पाकर वह विभिन्न हो गया। यहाँ साङ्ख्यवादी उदाहरण देते हैं कि, जैसे एक ही, पिताके, लिङ्ग-शरीरके अंशसे पुत्र-पुत्री आदिके अनेक लिङ्गशरीर उत्पन्न होते हैं, वैसे ही एक ही, हिरण्यगर्भके, शरीरसे अंश-क्रमानुसार, विविध लिङ्गशरीर उत्पन्न और विभक्त होते हैं। जैसे विना आश्रयके चित्र नहीं उतरता, उसी तरह विना आश्रयके यह शरीर भी नहीं रहता। जैसे जोंक दूसरे तिनकेको पकड़ कर पहले तिनकेको छोड़ती है, यही बात सूक्ष्म शरीरकी भी है। वह भी हर हालतमें आश्रित ही रहता है।

साङ्ख्यसूत्रोंमें लिखा है कि, किसीके मतसे स्थूल शरीर

पाञ्चभौतिक, किसीके मतसे चातुर्भौतिक और किसीके मतसे एकभौतिक है। इन मतोंमें एकभौतिक शरीर ही अधिक युक्तिसङ्गत माना गया है ; क्योंकि, सभी जगह यही देखा जाता है। जैसे मनुष्य-देहमें पार्थिव भाग ही विशेष हैं ; अन्य चारों सहायक भर हैं, उसी तरह सूर्य और चन्द्रलोकमें प्रायः, क्रमशः, तेजश्शरीर और जलशरीर ही होते हैं अर्थात् उनमें तेज और जलकी ही प्रधानता होती है ; अन्य भूत सहायक भर होते हैं।

साङ्ख्यदर्शनके तृतीय अध्यायमें चौदह भेदोंमें भौतिक सृष्टि विभक्त है। ब्राह्म, प्राजापत्य, ऐन्द्र, पैत्र, गान्धर्व, याक्ष, राक्षस और पैशाच आदि आठ देव-जातीय शरीर भी माने गये हैं। पशु, पक्षी, मृग, सरीसृप और स्थावर आदि पाँच तिर्यग्-जातीय देह कही गयी है। मनुष्य-शरीर एक ही तरहका माना गया है।

कुछ लोग योनिज और अयोनिज नामके दो तरहके शरीर मानते हैं और कुछ लोग जरायुज, अण्डज, स्वेदज तथा उद्भिज्ज आदि भेदसे चार तरहके।

सूक्ष्मशरीरका, धर्म द्वारा, उर्द्ध्वगमन होता और अधर्म द्वारा अधोगमन। ज्ञान द्वारा उसे अपवर्ग मिलता और अज्ञान द्वारा बन्धन। वह वैराग्य द्वारा प्रकृतिमें विलीन होता और अवैराग्य द्वारा संसारमें आता है। ऐश्वर्य द्वारा उसे सफलता मिलती और अनैश्वर्य द्वारा विफलता। इस तरह कर्मानुसार वह फल-भोग करता रहता है। साङ्ख्यमें तो नहीं, परन्तु महाभारतके सावित्री-उपाख्यानमें यह वर्णन पाया जाता है कि,

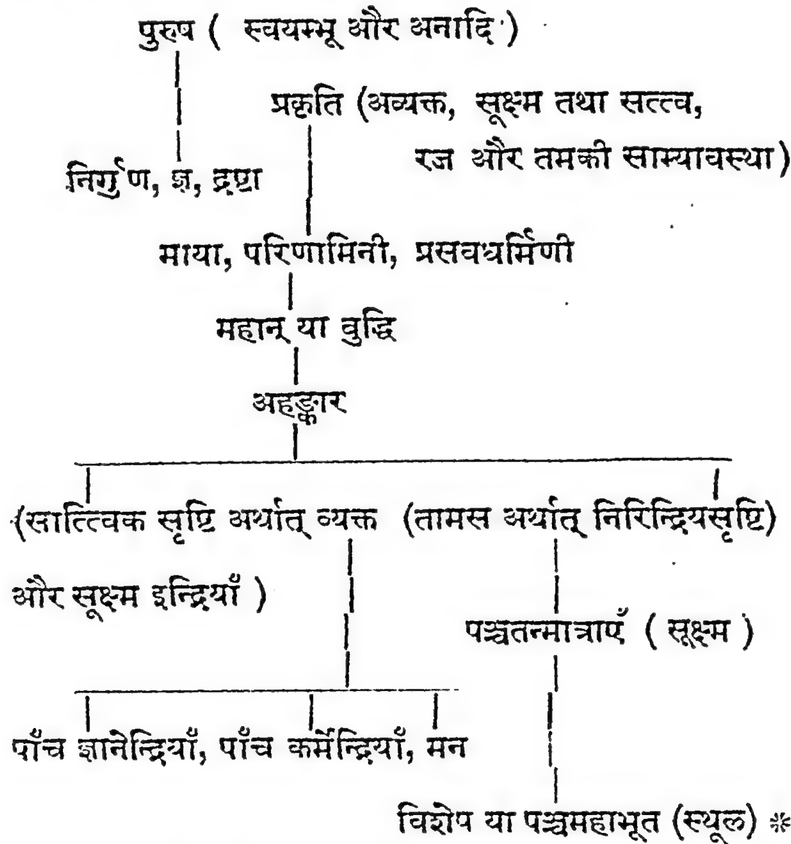
सत्यवान्के स्थूल शरीरमेंसे अँगूठेके बराबर एक पुरुष (सूक्ष्म शरीर) को यमराजने बाहर निकाला। * इससे स्पष्ट विदित होता है कि, शास्त्रोंमें लिङ्गशरीर अँगूठेके बराबर माना जाता है।

सूक्ष्मशरीरके मानवयोनिमें आने बाद रेतोबिन्दुसे क्रमशः कलल, बुद्बुद, मांस, पेशी और स्थूल इन्द्रियोंकी जैसी सृष्टि साङ्ख्यकारिका (४३) में मानी गयी है, वैसी ही गर्भोपनिषद् और महाभारत (शान्तिपर्व, ३२०) में भी।

---

* अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं निश्चकर्ष यमो बलात्। महाभारत, वनपर्व, २९७।१६।

स्पष्ट रीतिसे समझमें आनेके लिये अब तकके वर्णित साङ्ख्यतत्त्व नीचेके ब्रह्माण्डवृक्षमें क्रमबद्ध दिखाये जाते हैं,—



साङ्ख्यवादियोंने प्राणको स्वतन्त्र तत्त्व नहीं माना है। वे

---

* पुरुषको छोड़कर प्रकृतिके जो तेईस विकार हैं, उनमें बुद्धि, अहंकार तथा ग्यारह इन्द्रियाँ केवल शक्ति या गुण हैं और तन्मात्राएँ तथा महाभूत—ये दस द्रव्यात्मक विकार हैं।

इसे मन, बुद्धि और अहङ्कारकी एक साधारण वृत्ति मानते हैं।

प्राण, काल और दिक्

पिंजड़ेका पक्षी जब हिलने लगता है, तब जैसे पिंजड़ा भी हिलने लगता है, वैसे ही शरीरस्थ इन्द्रियोंके कार्यमें लगते ही श्वास-प्रश्वास चलने लगते हैं। * कर्मानुसार प्राणवायुके अपान, समान, उदान और व्यान आदि नाम पड़ गये हैं। प्राण नासाग्र, हृदय, नाभि और पादाङ्गुष्ठमें, अपान पृष्ठ, पाद, पायु, उपस्थ, कृकटिका और पार्श्वमें, समान हृदय, नाभि और समस्त सन्धियोंमें, उदान हृदय, कण्ठ, तालु, मस्तक और भ्रूमध्यमें तथा त्वचा या चमड़ेमें—एक तरहसे सारे शरीरमें—व्यान नामकी वायु रहती है। उधर प्राणको वेदान्त स्वतन्त्र तत्त्व मानता है। महर्षि कणादने भूत, भविष्य आदिके व्यवहारके लिये काल तथा पूर्व, पश्चिमके व्यवहारके लिये दिक्को स्वतन्त्र पदार्थ माना है। इस पर साङ्ख्याचार्य कहते हैं कि, जिन भूत, भविष्य आदि कालकी उपाधियोंसे आगत-अनागतका व्यवहार होता है, उनसे ही हमें भूतादिका ज्ञान हो जायगा; इसलिये कालको स्वतन्त्र पदार्थ माननेकी कोई आवश्यकता नहीं है। यही उत्तर दिशाके बारेमें भी है। विज्ञान-भिक्षुके मतसे तो उपाधि-सम्पन्न आकाशके सिवा दिक् और काल कोई पदार्थ ही नहीं हैं!

---

* सांख्यकारिका, २९।

मुख्यतः साठ पदार्थोंका विवेचन रहनेके कारण साङ्ख्यका एक नाम "षष्टितन्त्र" भी है,—यह बात पहले भी कही गयी है। ईश्वरकृष्णने अपनी "साङ्ख्यकारिका"के अन्तमें कहा है कि, 'षष्टितन्त्र' नामक साठ प्रकरणोंके एक प्राचीन और विस्तृत ग्रन्थका भावार्थ सत्तर आर्या-पद्योंमें, इस ग्रन्थमें, दिया गया है इससे भी मालूम होता है कि, साठ पदार्थोंकी विवेचना ही साङ्ख्यका खास विषय है।

षष्टितन्त्र और विविध वृत्तियां

इन साठ पदार्थोंकी गणना इस प्रकारसे की गयी है,—५ विपर्यय, २८ अशक्तियाँ, ६ तुष्टियाँ, ८ सिद्धियाँ, ३ गुण, १ पुरुष, १ प्रकृति, १ बुद्धि, १ अहङ्कार, १ तन्मात्रा, १ इन्द्रिय और १ भूत। तन्मात्राओं, इन्द्रियों और भूतोंकी, समुदायरूपसे, एक-एक संख्या ही मानी गयी है। पीछेकेगुणादि दस पदार्थोंका एक नाम 'मौलिकार्थ' भी है। पहलेके ५० पदार्थ बुद्धितत्त्वके प्रभेद भर हैं। इसीसे वे मौलिकार्थ नहीं कहलाते।

साङ्ख्यशास्त्रमें प्रधानतः पाँच वृत्तियाँ हैं,—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। प्रमाण तीन तरहका है,—प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द, जिनका वर्णन पहले ही किया जा चुका है। विपर्यय शब्दका अर्थ भ्रम है। विकल्पसे तात्पर्य है वस्तुशून्य शाब्दिक ज्ञानका। निद्रा माने अज्ञानमयी सुषुप्ति। स्मृतिका अर्थ संस्कारवादी ज्ञान है। नैयायिकोंके मतमें दो बुद्धि-वृत्तियाँ हैं, एक स्मृति और द्वितीय अनुभव। स्मृतिके अन्तर्गत प्रत्यक्ष,

अनुमान, उपमान और शब्द—ये चार प्रमाण हैं। अनुभव माने स्वयमनुभूत ज्ञान है।

विपर्यय पाँच प्रकारका होता है, जिसके नाम अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश हैं। अनात्मामें आत्मबुद्धि करना अविद्या है। इस लक्षणसे जाना जाता है कि, आध्यात्मिक भ्रान्ति ही का नाम अविद्या है। इसी अविद्यासे जन्म-मरणका प्रवाह चलता है। प्रकृति, पुरुष, अहङ्कार और पञ्चतन्मात्राओंमें आत्मख्याति करनेके कारण अविद्या आठ तरहकी मानी जाती है। प्रकृतिमें आत्मबुद्धि तमोऽविद्या, महत्तत्त्वमें आत्मबुद्धि मोहाविद्या, अहङ्कारमें महामोहाविद्या, शब्दमें तामिस्राविद्या और शेष तन्मात्राओंमें आत्मबुद्धि करनेवाली अन्धतामिस्राविद्या कहाती है।

मैं सिद्ध हूँ, मैं ज्ञानी हूँ इत्यादि मिथ्याभिमानको अस्मिता कहा जाता है। अणिमा, लघिमा आदि आठ तरहके ऐश्वर्यों-का मिथ्याभिमान करानेवाली अस्मिता भी आठ प्रकार की है।

सुखका पक्षपात करनेवाली वृत्ति राग कहाती है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध आदि पाँचोंमें सुखाभिमान करनेके कारण पाँच तरहका राग है। शब्दादि विषय दिव्य और अदिव्य भेदसे दस तरहके भी होते हैं। उस हालतमें राग भी दस तरहका होता है।

दुःख-विपक्षताका नाम द्वेष है। आठ ऐश्वर्यों और शब्दादि दस विषयोंमें द्वेष होनेके कारण अठारह तरहका द्वेष होता है।

भयका नाम अभिनिवेश है। उक्त अठारह पदार्थोंमें विनाश-भय होनेके कारण अभिनिवेश भी अठारह प्रकारका है।

तुष्टिके दो भेद हैं, आध्यात्मिक और बाह्य। आध्यात्मिक तुष्टि चार प्रकारको है, प्रकृतितुष्टि, उपादानतुष्टि, कालतुष्टि और भाग्यतुष्टि। आत्मज्ञान प्रकृतिका ही कार्य है, मैं उसका कर्त्ता नहीं, मैं कूटस्थ हूँ। इस भावनासे जो तुष्टि होती है, उसका नाम प्रकृति-तुष्टि और 'अम्भ' है। संन्यास-रूप उपादानके ग्रहणसे जो तुष्टि होती है, उसका नाम उपादान-तुष्टि और 'सलिल' है। संन्यास ग्रहण करनेपर, ध्यानाभ्यास द्वारा, जो तुष्टि होती है, उसका नाम कालतुष्टि और 'मेघ' है। भाग्य ही मुख्य है, उद्योग करके क्या होगा, भाग्य होनेपर आप ही ज्ञान हो जायगा। इस भावनासे जो तुष्टि होती है, उसका नाम भाग्यतुष्टि और 'वृष्टि' है। तुष्टियोंके ये लक्षण विज्ञानभिक्षुके मतानुसार हैं। वाचस्पतिमिश्रके मतसे तुष्टियाँ केवल असत् उपदेशसे होती हैं।

वाह्यतुष्टियाँ विषय-वैराग्य-जन्य होती हैं। अर्जन, रक्षण, क्षय, भोग और हिंसाका दोष देखकर (पाँच तरहसे) विषय वैराग्य होता है। उपार्जन करना विषम क्लेश है, वह सह्य नहीं, ऐसी भावना कर जो विषयसे विरक्त होते हुए परितुष्ट हो जाते हैं, उनके परितोषका नाम 'पार' है। उपार्जन करना तो सहज है, उपार्जित पदार्थकी रक्षा करना ही क्लेशकर है, इस भावनासे विषयसे विरक्त होनेपर जो परितोष होता है,

उसका नाम 'सुपार' है। जो पदार्थ भोग और अन्यान्य कारणोंसे क्षीण हो जाता है, उसके लिये इतना क्लेश करनेकी क्या जरूरत है। इस भावनासे जो विषय-विमुख होकर सन्तुष्ट होते हैं, उनकी सन्तुष्टिका नाम 'पार-पार' है। भोग्य पदार्थके न मिलनेपर ही दुःख होता है; इसलिये भोग्य पदार्थोंका त्याग करना ही उत्तम है। इस भावनासे जो विषय-विरागी परितुष्ट होता है, उसकी परितुष्टिका नाम 'अनुत्तमाम्भ' है। सर्वत्र ही हिंसादोष है; इसलिये विषय मात्र ही त्याज्य है। इस भावनाके पक्षपातियोंकी तुष्टिका नाम 'उत्तमाम्भ' है। इस तरह ये पाँच वाह्य तुष्टियाँ बतायी गयी हैं। यहाँ यह भी ध्यानमें रखनी चाहिये कि, ये सबकी सब तुष्टियाँ बुद्धिके दोष हैं।

सिद्धियाँ आठ प्रकारकी हैं,—प्रमोदसिद्धि, मुदितसिद्धि, मोदमानसिद्धि, अध्ययनसिद्धि, शब्दसिद्धि, ऊहसिद्धि, सुहृत्प्राप्तिसिद्धि और दानसिद्धि। पहलेकी तीन सिद्धियाँ दुःखविघातक हैं। चिन्ता, ज्वर आदि दुःखोंका विनाश करनेवाली प्रमोदसिद्धि, बाघ, साँप आदिके दुःखोंको विनष्ट करने वाली मुदितसिद्धि और बिजली, आग आदिके दुःखोंको विनष्ट करनेवाली मोदमानसिद्धि कहाती है। ये ही तीनों सिद्धियाँ मुख्य हैं।

गुरुमुखसे शास्त्राध्ययन कर ज्ञान-लाभका नाम अध्ययनसिद्धि और 'तार' है। दूसरेके मुँहसे शास्त्र-श्रवण कर या स्वयं शास्त्रालोचना कर ज्ञानलाभ करनेका नाम शब्दसिद्धि और 'सुतार' है। पूर्वजन्मके अभ्यास द्वारा, विना उपदेश पाये ही,

स्वयं तत्त्व-तर्क करनेका नाम ऊहसिद्धि और 'तारतार' है। अकारण आये हुए किसी ज्ञानीके उपदेशसे ज्ञान-लाभ करनेका नाम सुहृत्प्राप्तिसिद्धि और 'रम्यक' है। किसी ज्ञानीको धन-दान कर उससे ज्ञान-लाभका नाम दानसिद्धि और 'सदामुदित' है। ये पाँचों गौणसिद्धियाँ हैं। विज्ञानभिक्षुके ये ही सिद्धि-लक्षण हैं। वाचस्पति मिश्रके मतसे अन्यविध सिद्धि-लक्षण हैं। प्रत्ययसर्ग या बुद्धिसृष्टिमें सिद्धियाँ ही उपादेय हैं। सिद्धियोंका उपार्जन एक मुख्यसा पुरुषार्थ-साधन है।

अशक्तियाँ अठाईस प्रकारकी हैं। पञ्च ज्ञानेन्द्रियों, पञ्च कर्मेन्द्रियों और मनके विनाश, विकलता तथा अपूर्णताके कारण बुद्धिका ह्रास करनेवाली ग्यारह अशक्तियाँ हैं। सिद्धियों और तुष्टियोंके विपरीत आठ असिद्धियों और नौ अतुष्टियोंके योगसे सतरह अशक्तियाँ हैं। इस तरह सब मिल कर ये अठाईस प्रकारकी होती हैं।

साङ्ख्यवादियोंने इन अशक्तियों, विपर्ययों और तुष्टियोंको हेय या त्याज्य बताया है। ये सब पुरुषार्थ-साधनमें अड़चनें हैं।

सृष्टिदशामें प्रकृतिसे जैसे क्रमशः चराचर उत्पन्न होते हैं, उसका विवरण किया जा चुका ; अब चराचरके लयका जिक्र छेड़ना आवश्यक है। सृष्टि-रचनाके परिणाम-क्रमका जो विवरण दिया गया है, उसके ठीक विपरीत क्रमसे सब व्यक्त पदार्थ प्रकृतिमें विलीन हो जाते

सृष्टिका लय

हैं। पहले पञ्च महाभूतोंमेंसे पृथ्वीका लय जलमें, जलका अग्निमें, अग्निका वायुमें, वायुका आकाशमें, आकाशका तन्मात्राओंमें, तन्मात्राओंका अहङ्कारमें, अहङ्कारका बुद्धिमें और बुद्धि का लय प्रकृतिमें हो जाता है। साङ्ख्यशास्त्रमें, कहीं भी, इस बातका उल्लेख नहीं है कि, सृष्टि-रचनाके बादसे प्रलय होनेके समय तक कितना समय लगता है। इससे मालूम होता है कि, अन्यान्य ग्रन्थोंके सिद्धान्तको ही, इस विषयमें, इसने मान लिया है। मनुसंहिता (१।६६—७३), भगवद्गीता (८।१७) और महाभारत (शान्तिपर्व, २३१) में ब्रह्मा महाराजके दिन भर तक सृष्टि-समय रहता और इतने ही का उनका रात्रि-समय वा सृष्टिका प्रलय-समय रहता है। मनुष्योंके ठीक चार अरब, बत्तीस करोड़ वर्षोंका ब्रह्माका एक दिन और इतने ही की रात्रि होती है। इस तरह सृष्टिकी उत्पत्ति हो जाने पर उसका लय या संहार होने तकका, बीचका, समय चार अरब, बत्तीस करोड़ वर्षोंका होता है। इधर पुराणोंमें इसके विरुद्ध और ही काल-निर्देश है। वे चार तरहके प्रलय मानते हैं। विष्णु-पुराणके तीसरे अध्यायमें इन प्रलयोंका बढ़िया वर्णन है।

त्रिविध दुःख

साङ्ख्यके मतसे संसारमें जितने तरहके दुःख हो सकते हैं, वे सब तीन भागोंमें विभक्त हैं,—आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक। इनमें आध्यात्मिक दुःख दो प्रकारका है,—शारीर और मानस। देहके सभी रोगोंको शारीर दुःख माना जाता है और काम, क्रोध,

लोभ, भय आदिसे उत्पन्न दुःखको मानस। पशु, पक्षी और स्थावर आदिसे प्राप्त दुःखको आधिभौतिक दुःख कहा जाता है। यक्ष, राक्षस, अग्नि आदिसे उत्पन्न दुःखका नाम आधिदैविक दुःख है। इन त्रिविध दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति ही साङ्ख्यशास्त्रका पुरुषार्थ या मुक्ति है। यही बात साङ्ख्यशास्त्रके प्रथम सूत्रमें कही गयी है,—"अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः।"

साङ्ख्यवादी कहते हैं कि, यदि संसारमें ये दुःख नहीं रहते, तो शास्त्राध्ययन और धर्म करनेकी जीवोंकी प्रवृत्ति ही नहीं होती। किन्तु बात इसके विपरीत है। प्राणिमात्र दुःखका अनुभव करते हैं, स्वभावतः ये दुःखसे बचनेके लिये नाना यत्न भी करते हैं। यह यत्न भी मनुष्यका स्वाभाविक धर्म है। इधर दुःखनिवृत्तिके लिये ही साङ्ख्यशास्त्रकी अवतारणा की गयी है। इसलिये बाध्य होकर जीवोंको शास्त्र-वचनमें श्रद्धा करनी ही पड़ती है। यह बात मानी हुई है कि, अपने स्वार्थकी बातको मनुष्य बड़े ही ध्यानसे सुनता और तदनुसार करता है तथा अपने स्वार्थके विरुद्ध बातोंको वह 'पागलका प्रलाप' समझता है। फलतः शास्त्र-श्रद्धाकी ओर लोगोंकी प्रवृत्ति अनिवार्य है।

कुछ लोगोंके विचारसे शास्त्रोपदिष्ट साधन कष्ट-साध्य हैं और लौकिक साधन सुलभ हैं। इसलिये लौकिक साधनोंको ही विशेषतः प्रयोगमें लाना चाहिये। वे कहते हैं, सद्वैद्यके उपदेशानुसार औषधका व्यवहार करनेसे जब कि, शरीर-दुःख,

सात्त्विक भोजन आदि करनेसे मानस दुःख और नीतिशास्त्रकी कुशलताके साथ एकान्त तथा निरापद् स्थानमें रहनेसे आधि-भौतिक दुःख एवं मणि-मन्त्र आदिकी सहायतासे आधिदैविक दुःख विनष्ट हो सकते हैं, तब कष्टकर शास्त्रीय उपायोंकी आव-श्यकता ही क्या है? यह कहा भी जाता है कि, यदि घरके कोनेमें ही मधु मिल जाय, तो फिर जङ्गलोंमें भटकनेकी क्या जरूरत? यदि यों ही अपना मनोरथ सिद्ध हो जाय, तो काहेको अपनी खोपड़ी खराब की जाय? *

इस पर साङ्ख्यका यह वक्तव्य है कि, यद्यपि लौकिक उपाय सुननेमें बड़े मधुर लगते हैं, कुछ-कुछ उनसे दुःख भी दूर हो जाते हैं; परन्तु सूक्ष्म विचार करने पर उनकी असारता स्पष्ट प्रमाणित हो जाती हैं। देखा जाता है कि, औषध, भोजन, निरापद् स्थान और मन्त्र आदिसे आध्यात्मिक आदि दुःखोंकी क्षणस्थायिनी ही निवृत्ति होती है। यह प्रत्यक्ष है कि, भूख लगने पर यदि भोजन कर लिया जाता है, तो कुछ समयके लिये तो जरासा सुख मिल जाता है; परन्तु फिर भूख लगने पर दुःख आ उपस्थित हो जाता है। यही बात सभी लौकिक उपायोंमें देखी जाती हैं। परन्तु शास्त्रीय उपाय—विवेकज्ञान—हो जाने पर सदाके लिये दुःख-निवृत्ति हो जाती है। विचारसे यह बात

---

* अर्के चेन्मधु विन्देत किमर्थं पर्वतं व्रजेत्, इष्टस्यार्थस्य संसिद्धौ को विद्वान् यत्नमाचरेत्।

स्थिर है कि, मिथ्याज्ञान, अतत्त्वमें तत्त्वज्ञान, ही दुःखका आदि कारण है। जो बात आत्माका धर्म नहीं है (विशुद्ध-चेतन आत्माका दुःख भोगना और अधर्म करना आदि काम नहीं है) उसे भी लोग उसका धर्म मान बैठते हैं ! इसी कारण दुःखोत्पत्ति होती है। किन्तु विवेक-ज्ञान, तत्त्वका सत्यज्ञान, एक ऐसा शस्त्र है, जिससे दुःख-वृक्षकी जड़, सदाके लिये, काटी जा सकती है। जड़ कट जाने पर फिर शाखा-पल्लव-रूप छोटे-मोटे दुःख आप ही, सदाके लिये, अनन्त निद्रामें सो जायँगे। अतः दुःखकी अत्यन्त निवृत्तिका एक मात्र उपाय है अपने स्वरूप, अपने नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव रूपको पहचानना या विवेक-ज्ञान।

मीमांसकोंका सिद्धान्त है कि, यज्ञ करके स्वर्गको प्राप्त करना ही दुःख-निवृत्ति और मुक्ति पाना है। उनके मतसे विवेक-ज्ञानकी अपेक्षा यह उपाय सहजसाध्य भी है। इस पर साङ्ख्यवादी कहते हैं कि, मीमांसकोंका यह सिद्धान्त भ्रामक है। पहला कारण यह है कि, यज्ञ करनेमें जीव-वध करना पड़ता है और यह मानी हुई बात है कि, जीव-वध करना पाप है; उससे दुःख-वृद्धि ही होगी, दुःखनिवृत्ति नहीं।

स्वर्ग और दुःख-निवृत्ति

वेदोंमें लिखा है, "मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि" अर्थात् किसी भी प्राणीका वध नहीं करना चाहिये। इधर यज्ञ करनेके लिये "अग्निषोमीयं पशुमालभेत"—अर्थात् अग्निषोमीय पशुकी

हिंसा की जाय—लिखा है। इस वाक्यका तात्पर्य यह है कि, पशु आदिकी हिंसा विना यज्ञ सम्पन्न नहीं होता ; इस लिये यदि यज्ञका सम्पादन करना हो, तो हिंसा करनी ही चाहिये। इस तरह इस उपदेशसे जाना जाता है कि, यज्ञ करनेसे जो पुण्य होगा, वह उसमें किये गये पापसे छिप जायगा—कमसे कम कुछ न कुछ पाप होगा ही। इस लिये यह बात स्पष्ट है कि, यज्ञ-कर्त्ताको पुण्य करनेके कारण जहाँ सुख मिलेगा, वहाँ उसे कुछ न कुछ पाप करनेके कारण दुःख भी मिलेगा। आश्चर्य है कि, इस तत्त्वको जान कर भी लोग स्वर्गकी मोहिनी शोभापर आसक्त हो जाते और यज्ञ कर दुःखका उपार्जन कर बैठते हैं! फलतः स्वर्गप्राप्तिसे दुःखनिवृत्ति नहीं हो सकती।

यहाँ यह बात भी ध्यानमें रखनेकी है कि, अधिक पुण्य-कर्म करनेके कारण स्वर्गमें किसीको अधिक विहार-विलास करनेको मिलता है और कम यज्ञानुष्ठान या पुण्यकर्म करनेके कारण किसीको वहां कम विहार-विलास करनेका मौका हाथ लगता है। इसलिये अल्प-सुख-भागी अधिक सुखभागियोंके विलास-वैभवको देख कर स्वभावतः जला करते हैं, जिससे उन्हें स्वर्गमें भी दुःख मिलता है।

अत्यन्त दुःखनिवृत्तिमें स्वर्ग-प्राप्तिके कारण न होनेमें एक सबसे जबर्दस्त बाधा यह पड़ती है कि, स्वर्ग स्वयं विनाशी है, अचिरस्थायी है। स्वर्ग केवल एक तरहका सुख भर है या स्वर्ग सुखमय है। सुख उत्पन्न होता है, इसलिये उसका

अवश्य विनाश भी होता है। इसपर मीमांसक कहते हैं कि, विवेकज्ञान भी उत्पन्न होता है; इसलिये वह भी विनाशी होना चाहिये। इसका उत्तर साङ्ख्य यह देता है कि, हमारा विवेकज्ञान अभावरूप है; इसलिये वह विनाशी नहीं; क्योंकि, जो अभावरूप है, उसका विनाश नहीं होता। जैसे घटविनाश अभावरूप है; इसलिये विनाशका कभी विनाश नहीं होता। परन्तु मीमांसकोंका स्वर्ग भावरूप है, वरं वह एक लोक है और वहाँ सुखके सब सामान हैं; इसलिये कभी न कभी सृष्टिके समय उत्पन्न स्वर्गका अवश्य विनाश होगा। इसीसे लिखा है,—"ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।" अर्थात् स्वर्गगामी पुरुष उस विशाल स्वर्गलोकका भोग कर, पुण्य क्षीण होनेपर, मर्त्यलोक लौट आते हैं। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि, जैसे लौकिक उपायोंसे सदाके लिये दुःख नहीं हट सकता, वैसे ही वैदिक उपायोंसे भी। इस कारण यह बात माननी ही पड़ेगी कि, एक मात्र प्रकृति-पुरुषके विवेकज्ञानसे ही अत्यन्त दुःखनिवृत्ति हो सकती है, अन्यान्य किन्हीं उपायोंसे नहीं। आगेकी लाइनें पढ़नेसे यह बात और भी स्पष्ट हो जायगी।

साङ्ख्य-प्रवर्त्तक महर्षि कपिलने श्रुतियों, युक्तियों और अपने ज्ञान द्वारा निश्चय किया है कि, पुरुष वास्तवमें असङ्ग है, वह विशुद्ध और मुक्त चेतन है; केवल अज्ञान द्वारा मनुष्य उसमें प्रकृतिका कर्तृत्व और बुद्धिका देहाभिमान आरोपित करता है। महर्षिका सिद्धान्त है,—

"—न बध्यते, न मुच्यते, नापि संसरति कश्चित्।
संसरति, बध्यते, मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः ॥"

तात्पर्य यह है कि, न तो पुरुषका बन्धन होता है, न उसकी मुक्ति होती है और न वह संसारी ही है। संसार, बन्धन, मोक्ष आदि सब प्रकृतिके हैं और अज्ञानवश सब लोग पुरुषका ही बन्धन या मोक्ष मानते हैं। बुद्धिरूपमें आयी हुई प्रकृति अपने सात प्रलोभनों (धर्म, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य) द्वारा पुरुषको बद्ध करती या उसे सुख-दुःखका भागी बनाती है और अपने एकरूप, ज्ञान, द्वारा उसे मुक्त या भोगविवर्जित करती है।

कैवल्य या मुक्ति

पहलेके कहे गये पचीस तत्त्वों और विशेषतः पुरुषतत्त्वका निरन्तर अभ्यास करते-करते ज्ञानका उदय होता है। इससे पुरुषका मानस-साक्षात्कार होता है। इससे पहले "नास्मि" अर्थात् 'मैं करने वाला नहीं हूँ,' ऐसा ज्ञान होता है, जिससे पुरुषका कर्तृत्व विनष्ट हो जाता है। इसके पश्चात् आप ही आप "न मे" अर्थात् 'मेरा कुछ नहीं' का ज्ञान होता है, जिससे पुरुषका भोगाभिमान विनष्ट होता है। इसके अनन्तर "नाहम्" अर्थात् 'मैं नहीं हूँ' का ज्ञान हो जाता है, बन्धनका कारण 'मैं-पन' ही विलुप्त हो जाता है। यही उच्च कोटिका ज्ञान है : इसके प्राप्त होते ही पूरा प्रकृतिभाव लुप्त हो जाता है और 'केवलपन' या ज्ञानमय पुरुष रह जाता है। यही आत्म-साक्षात्कार या विवेकज्ञान है।

यहाँ यह भी लिखना आवश्यक है कि, यह ज्ञान भी प्रकृति-का एक परिणाम या प्रस्फुरण है; परन्तु यह बात अवश्य है कि, यह प्रकृतिका वहिर्मुख परिणाम नहीं, अन्तर्मुख या पुरुषाभिमुख परिणाम है। इसका एक नाम विलोमपरिणाम भी है। साङ्ख्य कहता है कि, अनुलोम (वहिर्मुख) परिणामसे या क्रमविकाशसे सृष्टि, बन्धन या भोग होता तथा अन्तर्मुख या विलोम-परिणाम अथवा सङ्कोचसे सृष्टिका अदर्शन, भोगविनाश और मोक्ष होता है। इस तरह केवल इसी विवेकज्ञानसे मुक्ति होती है, जिसे श्रुति कहती है,—"ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः।" 'या विना ज्ञानके मुक्ति कहां!'

परन्तु यह बात जरूर है कि, यह ज्ञान किसीको शीघ्र और किसीको देरसे होता है—जैसा अधिकारी और साधन रहे। साधारणतः यह दीर्घकालापेक्षित ही है। यही बात सांख्यके "अधिकारित्रैविध्यान्न नियमः" सूत्र और "बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते", इस गीता-श्लोकमें भी है।

इस ज्ञानका अभ्यास करनेकी दशामें शरीरसे, "नास्मि"के समय बुद्धिसे, "न मे"के समय मनसे और "नाहम्"के समय अहङ्कारसे पुरुषकी भिन्नतांका स्थायी अनुभव हो जाता है। इसके प्राप्त होते ही पुरुषको प्रकृति अपने धर्म, अधर्म आदिके माया-जालमें नहीं बाँधती और पुरुष भी सब कर्त्तव्य-अकर्तव्यसे उदासीन होकर प्रकृतिकी लीला देखने लगता है। ज्ञानका ऐसा ही बल है। पहले भी प्रकृति और पुरुष थे और

अब भी रहते हैं; परन्तु पहले पुरुष उसकी विकट मायामें फँसा था और अब वह केवल, निर्लिप्त तथा उदासीन है। जो प्रकृति उसे मनमाने नाच नचाती थी, अब वह ज्ञानवली पुरुषको देख कर, लज्जाके मारे, अपने नवाभिनव प्रलोभन लिये छिप जाती है!

तत्त्वज्ञानके बाद मरण-समय तक पुरुषकी जीवन्मुक्तावस्था रहती और उसके बाद उसे विदेह-मुक्ति मिलती है। जैसे कुम्भकार द्वारा दण्डसे चाक चला देने पर, दण्ड हटा लेने पर भी, कुछ काल तक वह चाक चला करता है, उसी तरह प्रारब्ध कर्म का दण्ड चला देने पर जब तक उसका वेग रहता है, तब तक, ज्ञान हो जाने पर भी, पुरुषको शरीरधारण करना ही पड़ता है। इसी धारणावस्थामें पुरुष जीवन्मुक्त रहता है। शरीर रहने पर भी वह उसमें समासक्त नहीं होता। वह शरीर से वैसे ही निर्लिप्त रहता है, जैसे कमलका पत्ता जलसे। प्रारब्ध कर्मका भोग करते-करते वह कर्म क्षीण हो जाता और यथासमय पुरुषका शरीर भी क्षीण हो जाता है। इसके पहले ही, ज्ञान द्वारा, पुनर्जन्मका कारण अज्ञान विनष्ट ही हुआ रहता है। इस कारण अन्तको पुरुषको ऐकान्तिक और आत्यन्तिक, दोनों तरहका कैवल्य या मोक्ष मिल जाता है। ऐकान्तिकका शब्दका यहां मतलब है अवश्यम्भावी और आत्यन्तिकका दुःख-भयकी अनुत्पत्ति। इसी मोक्षका नाम ब्रह्मनिर्वाण है।

यह मोक्ष कहीं दूसरे स्थानसे नहीं आता या इसके लिये

कहीं जानेकी जरूरत भी नहीं पड़ती। जब और जहां पूर्ण आत्मज्ञान होगा, उसी क्षण और उसी स्थान पर मोक्ष धरा हुआ है। असलमें मोक्ष आत्माकी ही शुद्धावस्था हैं; वह कोई निराली स्वतंत्र वस्तु या स्थल नहीं है। इसी बातका निर्देश शिवसंहिता (१२।३२) में किया गया है,—

"मोक्षस्य न हि वासोऽस्ति न ग्रामान्तरमेव वा।
अज्ञानहृदयग्रन्थिनाशो मोक्ष इति स्मृतः।"

मतलब यह कि, मोक्ष कहीं रखा हुआ नहीं है और न उसके लिये कहीं जानेकी ही जरूरत है। वास्तवमें हृदयकी अज्ञान-ग्रन्थिका विनाश हो जाना ही मोक्ष है। यही बात अन्यान्य शास्त्रोंमें भी है। 'पूरा आत्मज्ञान प्राप्त होते ही, आप ही आप, मोक्ष प्राप्त हो जाता है।' (गीता, ५।५३), 'जिसने ब्रह्मको जाना, वह ब्रह्म हो जाता है।' (मुण्डकोपनिषद्, ३।२।६) आदि वचनों को देखने से हमारी बात सुपुष्ट होती है। इसी पूर्णावस्थाका नाम ब्रह्मीभूत, त्रिगुणातीत, स्थितप्रज्ञ और ब्रह्मस्थिति है। यही अवस्था कभी बृहदारण्यकोपनिषद् (१।४।१०)के "अहं ब्रह्मास्मि" के अभ्याससे, कभी पातञ्जलके योगमार्गसे और कभी साङ्ख्यके विवेक-ज्ञानसे प्राप्त होती है। जिसे यह प्राप्त हो जाय, वही पुरुष इस विशाल विश्वमें कृतकृत्य तथा धन्य है। साथ ही इसे प्राप्त करनेमें ही मनुष्यजीवनकी सार्थकता है। इसी अवस्थामें पहुँचे हुए पुरुषकी स्थितिका वर्णन भक्तवर ज्ञानेश्वर महा-राजने अपनी "ज्ञानेश्वरी" (१२।१३) में किया है:—

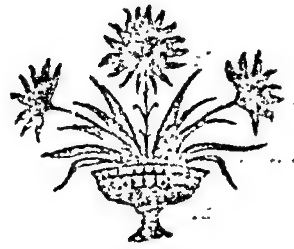
"पृथिवीके समान वह इस बातका भेद बिलकुल नहीं जानता कि, उत्तमका ग्रहण करना चाहिये और अधमका त्याग करना चाहिये। जैसे कृपालु प्राण इस बातको नहीं सोचते कि, राजाके शरीर को चलाऊँ और रंकके शरीरको गिराऊँ, जैसे जल यह भेद नहीं करता कि, गौकी तृष्णा बुझाऊँ और व्याघ्र के लिये विष बन कर उसका नाश करूँ, वैसे ही सब प्राणियोंके विषयमें जिसकी एकसी मित्रता है, जो स्वयं कृपाकी मूर्त्ति है, जो 'मैं' और 'मेरा' का व्यवहार नहीं जानता और जिसे सुख-दुःखका भान तक नहीं होता, वही सिद्धावस्थाको पहुँचा हुआ पुरुष है।" वास्तवमें दर्शनशास्त्रसे जो कुछ अमर फल मिलनेवाला है, वह यही है।

साङ्ख्यदर्शनके सम्बन्धमें जो कुछ मुख्य वक्तव्य था, वह ऊपर कहा जा चुका। ऊपरके विवरणके सिवा उसमें थोड़ी मनोरञ्जक

विविध विषय

और उपदेशप्रद कहानियाँ एवं दृष्टान्त भी हैं, जिनसे वैराग्य और ज्ञानका पथ, बहुत कुछ, प्रशस्त होता है। इनसे साङ्ख्य सूत्रोंका महत्त्व और भी बढ़ गया है और उनकी यह एक विशेषता भी है। बौद्धदर्शन, वैशेषिकदर्शन और वेदान्तदर्शनका साङ्ख्यमें खुल्लमखुल्ला खण्डन भी है। प्रसङ्गतः अन्यान्य मतवादोंका भी उसने खण्डन किया है। आत्माको वेदान्त सच्चिदानन्दरूप मानता है और साङ्ख्य केवल सच्चिद्रूप। साङ्ख्य कहता है कि, यदि मुक्तावस्थामें आनन्दमय आत्मा रहेगी, तो अद्वैतवादका

आप ही आप खण्डन हो जायगा। इसका कारण यह है कि, जहाँ आनन्द रहता है, वहाँ उसका भोक्ता भी रहता है। संसारमें यही देखा जाता है। इस तरह आनन्दको मुक्ति-दशामें माननेसे वहाँ उसका भोग-कर्त्ता भी मानना ही पड़ेगा। इस लिये यह बात स्पष्ट है कि, दो तत्त्वोंके रहनेसे अद्वैतवाद खण्डित हो जायगा। इसी तरहकी कई युक्तियोंसे साङ्ख्य-दर्शनके छठे अध्यायमें वेदान्तका खण्डन किया गया है। यह भी बात नहीं भूलनी चाहिये कि, साङ्ख्यके मतसे कर्म मात्र बन्धनका कारण है। इसलिये उसके मतसे निष्काम कर्मसे भी मुक्ति नहीं होती—मुक्तिका एकमात्र रास्ता संन्यासी होकर विवेकज्ञान प्राप्त कर लेना है।





योगदर्शनके प्रणेता—महर्षि पतञ्जलि।

महर्षि पतंजलि ।

(जीवनवृत्तान्त, विविध वक्तव्य और पातञ्जल महाभाष्य ।)

योग-सूत्रकार महर्षि पतञ्जलिका ठीक-ठीक परिचय देना बड़ा ही दुस्तर कार्य है। उनके समय-निरूपणपर जो कुछ लिखा गया है, विशेषतः यूरोपीय पण्डितोंने आज तक जो कुछ अटकलें लगायी हैं, वह प्रायः आनुमानिक हैं। एक-एक कर सभी अटकलें लिखी जाती हैं।

विद्वद्वर चक्रपाणिदत्तने, अपनी चरक-टीकामें, लिखा है कि, महर्षि पतञ्जलिने, मनोमल हटानेके लिये योगदर्शन, वाग्दोष दूर करनेके लिये व्याकरण-महाभाष्य और काय-कलुषता मिटानेके लिये वैद्यकशास्त्रकी रचना की है। प्रसिद्ध सरस्वती-सेवक महाराजा भोजने जो योगसूत्रों पर वृत्ति बनायी है, उसमें भी इसी बातका मण्डन किया गया है। विख्यात विद्वान् षड्-गुरुशिष्यजीने भी कात्यायनकी वेदानुक्रमणिकाके भाष्यमें लिखा है कि, महाभाष्यकार, वैद्यकप्रणेता और योगदर्शनाचार्य पतञ्जलि एक ही हैं। इन उक्तियोंके सिवा महाभाष्य (६।१।२ आह्निक) में "वातिकं पैत्तिकं श्लैष्मिकं सान्निपातिकम्", "दधि-

अपुसम्प्रत्यक्षो ज्वरः", "नड्वलोदकं पादरोगः," "घृतभोजनमारोग्यस्यादिः" (६।४।४) आदि जो वचन लिखे गये हैं, उनसे कई विद्वानोंने निश्चित किया है कि, वैद्यक और व्याकरणके पतञ्जलि एक ही थे। गोनर्द वंशमें उत्पन्न होनेके कारण इनका एक नाम गोनर्दीय भी है। गोनर्दका उल्लेख "राजतरङ्गिणी"में है और जहाँ राजतरङ्गिणी बनी है, कहते हैं, वहीं व्याकरण-महाभाष्य भी सुरक्षित था। फलतः कुछ लोगोंके मतसे व्याकरण, वैद्यक और योगके पतञ्जलि एक ही माने जायँ, तो कोई हर्ज नहीं।

पतञ्जलिके फणी, फणिभर्त्ता, अनन्त, अनन्तदेव, शेष, चूर्णीकृत्, गोणिकापुत्र और वररुचि आदि अनेक नाम हैं। पातञ्जल-महाभाष्यका एक नाम "फणिभाष्य" भी है, जिसका उल्लेख नैषधचरितके द्वितीय स्वर्गमें है। महाभाष्य (१।३।३) में गोणिकापुत्र और उसके (१।१।५)में गोनर्दीय कहकर पतञ्जलिने अपना परिचय दिया है। हेमचन्द्रके "अभिधान-चिन्तामणि" में भी गोनर्दीय और चूर्णीकृत् शब्दोंका नामोल्लेख है। शब्दरत्नावलीमें पतञ्जलिका वररुचि नाम लिखा है। काशिका (१।१।७५) में भी गोनर्दीय शब्द है। डाक्टर भाण्डारकारके मतसे वर्त्तमान गोँडा जिले के इसी नामके एक गाँवमें पतञ्जलिका जन्म हुआ था। इसी गाँवका प्राचीन नाम गोनर्द भी था। महाभाष्य (३।१।२।२६) में लिखा हैं कि, पुष्पमित्रने एक यज्ञ किया था, जिसमें अनेक याजकोंने याजन किया था। भाण्डारकरके मतसे ये पुष्पमित्र ईस्वी सनके प्रायः पौने दो सौ वर्ष पूर्व राज्य करते थे। इनकी

सभामें गोनर्दीयको सभी ऐतिहासिक उपस्थित हुआ मानते हैं। जो हो, कुछ लोगोंका यहाँ इतना ही मतलब है कि, यदि योगदर्शनवाले पतञ्जलिके फणी, गोणिकापुत्र और गोनर्दीय आदि नाम ऐतिहासिक मानते हैं, तब यह बात कही जा सकती है कि, व्याकरणवाले पतञ्जलि, योगदर्शनके पतञ्जलि और वैद्यकके उद्धारकर्त्ता पतञ्जलि एक ही व्यक्ति थे।

एक बात और है। यह कि, महाभाष्यके "अथ शब्दानुशासनम्" और योगके "अथ योगानुशासनम्"—इन दोनों वाक्योंके अनुशासन शब्दसे भी लोगोंका अनुमान होता है कि, दोनों पतञ्जलि एक ही थे और उन्होंने एक ही ढंगसे दोनों ग्रन्थोंका प्रारम्भ किया था।

१—इन तर्कोंपर कुछ लोग कहते हैं कि,योगसूत्रों पर महर्षि वेदव्यासका जो भाष्य है, वह पाणिनिके बहुत पहलेका है और इधर पाणिनिके प्रायः दो सौ वर्ष बाद पतञ्जलिने व्याकरण-महाभाष्य बनाया था। इस लिये महाभाष्यकार और योग-सूत्रकार पतञ्जलि एक नहीं हो सकते।

२—अन्य लोग यह कहते हैं कि, जिन कात्यायनके वार्त्तिकोंका महाभाष्यमें विवरण दिया गया है, उन्होंने अपने वार्त्तिकोंमें, स्थल-स्थलपर, योगशास्त्रके अनेक शब्दों और महर्षि पतञ्जलि (६।१।६४) का भी उल्लेख किया है। इससे मालूम होता है कि, योगवाले पतञ्जलि कात्यायनसे पहले हुए और

कात्यायन-वार्त्तिक पर भाष्य बनाने वाले वैयाकरण पतञ्जलि पीछे। सुतराम्, दोनों पतञ्जलि एक नहीं थे।

३—एक दल कहता है, बृहदारण्यकोपनिषद्में जिन काप्य पातञ्जलका उल्लेख है, वे ही योगाचार्य पतञ्जलि हैं और उनके बहुत पीछे वैय्याकरण,पतञ्जलि हुए हैं। अतः दोनों दो व्यक्ति हैं।

४—इसके सिवा वैयाकरण पतञ्जलिका समय, डाक्टर वेवरके मतमें * ईस्वी सन्की प्रथम शताब्दि, प्रोफेसर पेटर्सनके मतमें † पाँचवीं शताब्दि और डाक्टर गोल्डस्टकर तथा डाक्टर भाण्डारकरकी रायमें सन् ईस्वीसे पूर्व द्वितीय शताब्दि है। इधर श्वेताश्वतर, गर्भ, निरालम्ब, योगशिखा, योगतत्त्व आदि अथर्ववेदीय उपनिषदोंमें योगकी खूब चर्चा भी है; इसलिये अनुमान होता है कि, योगप्रवर्त्तक पतञ्जलि बहुत ही प्राचीन हैं। फलतः दोनों पतञ्जलि विभिन्न व्यक्ति हैं।

५—मैक्समूलरके खयालसे भी दोनों पतञ्जलि दो हैं। उनका विचार है कि, जब कि, हिन्दुओंमें हिरण्यगर्भ और विष्णु आदि नामोंके ग्रन्थ-प्रणेता हो सकते हैं, तब क्या कारण है कि, दूसरे पतञ्जलिने योगदर्शन न बनाया हो? ‡

इसी तरहकी कुछ और भी, दो पतञ्जलि होनेकी,दलीलें हैं।

---

* Dr. weber's endische studien (for 1873)

† Prof. Peterson On the date of Patanjali (gournal of the Bomby Branch of the Royal Asiatic society, Vol. XVI. P. 189.)

‡ Dr. Goldstucker's Panini and Manava Kalp Sutra

अब इन युक्तियोंका खण्डन सुनिये। पहले तो आज तक इसी बातका निर्णय नहीं हो सका कि, पहले व्यास हुए या पहले पाणिनि। अपनी इण्डियन फिलासफीके ११७वें पेजमें प्रो० मैक्समूलरने अटकल लगायी है कि, यदि ईस्वीसे पूर्व पाँचवीं शताब्दिमें व्यास हुए हों, तो आश्चर्य नहीं। 'गीतारहस्य' में लोकमान्य तिलकने जो कुछ प्रमाण उद्धृत कर महाभारतका काल-निर्णय किया है, उससे भी सन् ईस्वीसे पूर्व पाँचवीं शताब्दिके लगभग ही व्यासके होनेका अनुमान किया जा सकता है। इधर एशियाटिक सोसाइटीकी बम्बई-शाखाके जरनलके सन् १८८५ ईस्वी वाले अङ्कमें डाक्टर रामकृष्ण भाण्डारकरने लिखा है कि, 'सन् ईस्वीसे पूर्व ८ वीं शताब्दिमें पाणिनि विद्यमान थे। निरुक्तकार यास्क पाणिनिके पीछे हुए हैं।' इन बातोंसे तो व्यासके पीछे पाणिनिका होना संदेहास्पद है। इस बातको लोग यह कहकर टाल देते हैं कि, "जब कि, पाणिनिने अपनी अष्टाध्यायी (४।३।११०) में पाराशर्य शब्दका उल्लेख किया है, तब कैसे यह माना जाय कि, वेदव्यास से पहले पाणिनि हुए हैं!" इनका यह कहना, स्थूलदृष्टिसे, कुछ कुछ सत्य भी है। परन्तु इस सूत्रसे इस बातका निर्णय नहीं हो सकता कि, मृत व्यक्तिका ही पुस्तकमें उल्लेख हो सकता है।

(Preface. P. 228—230) and Dr. Bhandarkar in Indian Antiquary, Vol. I. P. 302, II P. 70.

❀ See The six systems of Indian Philosophy, P. 313.

यह कोई बात नहीं है। अपने समयके विद्वान्का भी पुस्तक-प्रणेता अपनी पुस्तकमें उल्लेख कर सकता है। दूसरी बात यह है कि, पुराणोंको देखनेसे कितने ही पराशर और पाराशर्य-का भी पता चलता है। इसलिये सम्भव है कि, पाणिनिने किसी दूसरे ही पाराशर्यका उल्लेख किया हो, जिन्होंने कोई दूसरा ही भिक्षुसूत्र रचा हो। तीसरी बात यह है कि, वेदव्यास भगवान्के अवतार थे, पतञ्जलि अनन्तदेवके और पाणिनि सिद्ध योगी। इसलिये इनका कई सौ वर्ष जीना भी सम्भव है। जब कि, काश्मीरके इतिहाससे यह जाना जाता है कि, वहाँके एक विशुद्धाचारी राजाने तीन सौ वर्ष जी कर राज्य चलाया था, तब कोई कारण नहीं कि, वेदव्यास आदिका कई सौ वर्ष जीना या समयानुसार अवतार ग्रहण करना नहीं माना जाय। जब कि, साधारण योगके प्रभावसे ही कितने ही योगी सैकड़ों वर्ष जी सकते हैं, तब योगाचार्य पतञ्जलिका दीर्घ काल तक जीना क्यों न माना जाय?

एक जबर्दस्त युक्ति यह भी है कि, पाणिनिने कहीं भी पतञ्जलि, पातञ्जल या पातञ्जल दर्शनके किसी भी पारिभाषिक शब्दका उल्लेख नहीं किया है। इससे विदित होता है कि, पाणिनिके पीछे ही, ईसासे पूर्वकी दूसरी शताब्दिमें ही, पतञ्जलि हुए थे और तभी उन्होंने महाभाष्य एवं योगदर्शन बनाया था। यदि पाणिनिके पूर्व वे हुए रहते, तो पाणिनिने उनका अवश्य उल्लेख किया होता।

कात्यायनके वार्त्तिकोंमें पतञ्जलि और योगकी बातोंका उल्लेख देख कर शङ्का करनेका कुछ कारण नहीं है ; क्योंकि, सम्भव है, अपने समकालीन पतञ्जलिका उन्होंने उल्लेख किया हो ; कारण, कात्यायनके वचनोंसे पतञ्जलिकी अनुपस्थिति नहीं प्रमाणित होती।

बृहदारण्यकके काप्य पातञ्जल दूसरे थे ; क्योंकि, योगाचार्य पतञ्जलिका उसमें या अन्यान्य किन्हीं उपनिषदोंमें नामोल्लेख तक नहीं है और प्रायः सभी स्थलोंपर याज्ञवल्क्य मुनि ही योगाचार्य बताये गये हैं।

श्वेताश्वतर आदि कई उपनिषदोंमें जो योगका विवरण है, वह या तो वेदोंके आधार पर दिया गया है या महर्षि याज्ञवल्क्यके योगका विवरण है। यदि पातञ्जल योगका विवरण रहता, तो महर्षि पतञ्जलिका, कहीं न कहीं, अवश्य नाम-निर्देश रहता।

वेबर और पेटर्सन साहबकी युक्तियोंकी अपेक्षा गोल्डस्टकर साहब और डाक्टर भाण्डारकरकी युक्तियाँ ही समीचीन मानी जाती हैं। इसलिये लोगोंका अनुमान है कि, यही, अर्थात् सन् ईस्वीसे पहलेकी दूसरी शताब्दि ही, दर्शनोंका रचना-काल है और इसी समय महर्षि पतञ्जलिने योगसूत्र, व्याकरण-महाभाष्य एवं वैद्यकशास्त्रके कई ग्रन्थोंकी रचना की थी। अनुमानसे यही बात युक्तियुक्त भी मालूम पड़ती है। जो हो, महर्षि पतञ्जलिके विषयमें आजकल जो अनुकूल-प्रतिकूल

युक्तियां चल रही हैं, उन सबका संग्रह कर देना हमने अपना कर्त्तव्य समझा है ; तथ्यका पता लगाना इस विषयके अधिकारी ऐतिहासिकोंका काम है।

महर्षि पतञ्जलिके जन्मके वारेमें विलक्षण किस्वदन्ती प्रचलित है। कहा जाता है, लोकहितार्थ, सर्पाकारमें, वे पाणिनि मुनिके हाथपर, स्वर्गसे गिर पड़े थे। पाणिनिजीकी अञ्जलिमें वे पतित हुए थे ; इसीसे उनका नाम पतञ्जलि पड़ गया। जो हो, परन्तु इसमें तो सन्देह ही नहीं कि, पतञ्जलिके माता-पिता का कहीं भी पता नहीं चलता। उनकी जन्मभूमिका अनुमान गोंड़ा या गोंदा नामक गाँव लगाया जाता है।

ब्रह्माण्डपुराण (अनुषङ्गपाद, ६५।४३) में लिखा है कि, सामवेदकी कौथुमशाखाके प्रवर्त्तक कुथुमि मुनिके पुत्र पराशर ऋषिके पौत्र एक वड़े ही विद्वान् पतञ्जलि थे। उनका दूसरा नाम "कौथुम पाराशर्य" था। उनके पिताका नाम "प्राचीन योग" था। परन्तु ऐतिहासिकोंके मतसे यह वर्णन या तो रूपक है या वे पतञ्जलि कोई दूसरे ही थे।

महर्षि पतञ्जलिके वनाये योगदर्शन, आर्यपञ्चाशीति, महाभाष्य और कुछ वैद्यक ग्रन्थोंका नाम लिया जाता है। यों तो सभी ग्रन्थ उत्तम कोटिके हैं ; परन्तु जनतामें योगदर्शन और महाभाष्यकी प्रसिद्धि ही विशेष है। अपना विषय समझ कर योगदर्शनका विस्तृत परिचय आगे चलकर दिया ही जायगा ; तव तक यहाँ पातञ्जल महाभाष्यके सम्वन्धमें दो-चार शब्द लिखे जाते हैं।

संस्कृत-साहित्यमें महाभाष्य सुदृढ़ स्तम्भ है। संस्कृत ही नहीं, संसारमें ऐसी कोई भाषा नहीं, जिसमें ऐसा विमल-विचार-मूलक ग्रन्थ रचा गया हो। डाक्टर

पातञ्जल महाभाष्य

गोल्डस्टूकर आदि कुछ लोगोंकी राय है कि, पाणिनिके सूत्र-मतका खण्डन कर मुनिवर कात्यायनने जो पाण्डित्यपूर्ण वार्त्तिक बनाये थे, उनके आक्रमणोंसे बचानेके लिये ही पतञ्जलिने महाभाष्यकी रचना की थी। परन्तु विचार करनेपर यह बात प्रामाणिक नहीं सिद्ध होती। वास्तवमें पाणिनि-सूत्रोंके परिशिष्टरूप कात्यायन-वार्त्तिक हैं। पाणिनिके जो जो मत आर्ष और तत्कालके व्याकरणोंसे विरुद्ध जान पड़े, उन सबकी समालोचना कर सामञ्जस्य स्थापित करनेके लिये ही कात्यायनने वार्त्तिकोंकी रचना की थी। वार्त्तिकोंको पढ़नेसे यही बात स्पष्ट मालूम होती है।

इधर सूत्र-वार्त्तिकोंका तात्पर्य, संसारको समझानेके लिये, विस्तृतरूपसे महर्षि पतञ्जलिने महाभाष्य-प्रणयन किया था। एक तरहसे कहा जाय, तो यह भी कह सकते हैं कि, वार्त्तिक और महाभाष्यका उद्देश्य एक ही है—दोनोंने ही सामयिक भाषाके साथ सामञ्जस्य कर पाणिनि-मतका प्रचार किया है। जैसे पाणिनि-मतको प्रचलित संस्कृत-साहित्यका पूरा अनुगत बनानेके लिये कात्यायनने अभावपूरक वार्त्तिक बनाये, वैसे ही वार्त्तिकोंके अभाव, उनसे छूटे हुए प्रचलित प्रयोगोंकी पूर्ति,के लिये पतञ्जलिने महाभाष्य रचा। इसीसे पतञ्जलिने कहीं कहीं

वार्त्तिककारके मतकी कड़ी आलोचना भी की है। महाभाष्यकी भाषा बड़ी ही सरल, मधुर, सरस और सालङ्कार है।

संस्कृतभाषाकी प्रकृति, उसका वैज्ञानिक संगठन आदिका विस्तृत और मौलिक विचार करनेके कारण महाभाष्य बहुत प्रकाण्ड ग्रन्थ हो पड़ा है। इसीसे इसका नाम "महा-भाष्य" रखा गया है। इस विराट् ग्रन्थरत्नका अध्ययन करनेके लिये संस्कृतभाषामें बहुत बढ़ा हुआ ज्ञान चाहिये। इस ग्रन्थमें प्रसंगानुसार भारद्वाजीय, सौनाग, कुणरवाड़व, वाड़व, सौम्य भगवान्, (कारिकाकार) व्याघ्रभूति और (श्लोकवार्त्तिककार) कात्यायन आदि वैयाकरणोंका भी उल्लेख है। इस उल्लेखसे जान पड़ता है कि, ये वैयाकरण पतञ्जलिके समयमें या उनसे पहले खूब विख्यात थे।

इस ग्रन्थपर बड़े-बड़े आक्रमण भी हुए हैं। भर्त्तृहरिने, अपने "वाक्यपदीय" नामक ग्रन्थमें, लिखा है कि, "बहुत पहले वैजि, सौभर और हर्यक्ष आदि कुछ शुष्क तार्किकों तथा द्वेषियोंने महाभाष्यको खण्ड-खण्ड कर फेंक दिया था। एक नहीं, इन लोगोंको जितने महाभाष्यके ग्रन्थ मिले, वह सब इन्होंने फाड़ डाले थे। अन्तको ऐसी अवस्था आयी कि, भारत भरमें केवल एक ही ग्रन्थ, दाक्षिणात्य पण्डितोंके पास, रह गया। कुछ विद्वानोंने पर्वतसे इसी ग्रन्थको ले आकर जनतामें प्रचार किया। बहुत प्रचार हो जाने पर फिर एक बार चन्द्राचार्य आदिने इसे नष्ट-भ्रष्ट किया। पश्चात् हमारे गुरु महाराजने इस

ग्रन्थरत्नका संग्रह कर विश्वमें प्रचार किया।" राजतरङ्गिणी (१।१७६) में लिखा है, "जिस समय काश्मीरके राजा अभिमन्यु थे, उस समय आचार्योंने विभिन्न देशोंसे विद्यालाभ कर इसका प्रचार किया।" अभिमन्युके समय महाभाष्यका प्रचार होनेपर भी कुछ समय तक फिर इसका पठन-पाठन बन्द हो गया था और यह पुनः नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया था। इसके अनन्तर, राजतरङ्गिणीके ही कथनानुसार, सन् ईस्वीकी ८वीं शताब्दिमें, काश्मीराधिपति मतादित्यने विच्छिन्न महाभाष्यका उद्धार कर अपने राज्यमें इसका प्रचार किया। इस तरह अनन्त विघ्न-बाधाओंसे बच कर, आर्यजातिके सौभाग्यसे, आज तक यह ग्रन्थ वर्त्तमान है। अब इसके विलुप्त होनेकी कोई आशा नहीं है; क्योंकि, मुद्रायन्त्रके समयमें यह बात असम्भवसी है।

महाभाष्य पर कैयट, शेषनारायण, नृसिंह, भर्त्तृहरि, रामकृष्णानन्द, लक्ष्मण, शिवरामेन्द्र सरस्वती, सदाशिव आदिकी अनेक टीकाएँ हैं। सबमें कैयटका "भाष्य-प्रदीप" ही विशेष प्रसिद्ध और सम्मान्य है। इस भाष्य-प्रदीपके ऊपर भी अनन्तभट्ट, अन्नम्भट्ट, ईश्वरानन्द, नागेश, नारायण, नीलकण्ठ दीक्षित, प्रवर्तकोपाध्याय, रामचन्द्र सरस्वती और हरिराम आदिकी सुपाठ्य टीका-टिप्पनियाँ हैं। नागेश या नागोजी भट्टके "महाभाष्यप्रदीपोद्योतकर" के ऊपर भी वैद्यनाथपायगुण्डेकी "छाया" नामक एक बड़ी ही सुन्दर वृत्ति है।

योगदर्शन।

(नामकरण, योगदर्शनके प्रामाणिक ग्रन्थ, उनके भाष्य, टीकाएं आदि, पाद-विवरण, विविध योग, योगदर्शन और ईश्वर, चित्तवृत्तियां और चित्तैकाग्रता, आत्मा, क्लेश, कर्म, विपाक और आशय, अभ्यास और वैराग्य, कारण और परिणाम, ऐश्वर्य या सिद्धियां और उनकी प्राप्ति, योगके मुख्य आठ अङ्ग, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा और ध्यान, समाधिप्रकरण, संयममहिमा, कैवल्य, विविध विषय, गीता और योगदर्शन, योगी, योगियोंके कर्त्तव्य, योगिसम्प्रदाय, योगियोंका योगबल।)

योगशब्दके कई अर्थ हैं। इनमें संयोग या मेल, युक्ति, उपाय, ध्यान, सङ्गति, प्रयोग, उपयुक्तता, सम्बन्ध, कर्मकौशल आदि विशेष प्रचलित हैं। किन्तु इनमेंसे एक अर्थ भी यहाँ हमें ग्रहण नहीं करना है। योग-

नामकरण

दर्शनमें दुनिया भरके विषयोंसे अन्तःकरणकी वृत्तिको रोक देनेका नाम ही योग है। प्रायः योग शब्दका यहाँ अर्थ समाधि है; क्योंकि यही एकमात्र चित्तकी कलुषताको धो कर उसे चिर शान्त बनानेका साधन है। योगदर्शनके दूसरे सूत्रमें योग-शब्दका यही लक्षण भी है। किसी किसी मतमें जीव और परमात्माके संयोगका नाम ही योग है।

साङ्ख्यदर्शनके अनुकूल ही योगदर्शनमें भी पदार्थ-विभाग रहनेके कारण, कुछ लोगोंके मतसे, इस दर्शनका साङ्ख्य-प्रवचन नाम ही विशेष उपयुक्त है। सचमुच साङ्ख्यने जिन मूल पचीस पदार्थोंको स्वीकार किया हैं, उन सबको, तत्तद्रूपमें ही योगदर्शनने स्वीकार कर लिया है। इन तत्त्वोंके सिवा योग-शास्त्रमें ईश्वरको भी एक अलग तत्त्व माना गया है। इस लिये पञ्चविंशतितत्त्ववादीकी जगह षड्विंशतितत्त्ववादी भी योगदर्शनका नाम पड़ गया है। इस दर्शनमें छब्बीसवाँ तत्त्व ईश्वर है। इस ईश्वरतत्त्वको स्वीकार करनेके कारण इस दर्शनका एक नाम सेश्वरसाङ्ख्य भी है।

इस दर्शनके कर्त्ता हैं महर्षि पतञ्जलि। इसलिये इसे पातञ्जल दर्शन भी कहा जाता हैं। कुछ विद्वानोंकी सम्मतिमें महर्षि पतञ्जलि योगशास्त्रके कर्त्ता या उपदेष्टा नहीं हैं; केवल प्रवर्त्तक, प्रचारक या अनुशासक भर हैं। इसीलिये उन्होंने अपने योगदर्शनके पहले सूत्रमें शासन (उपदेश) की जगह अनुशासन शब्द ही रखा है।

यद्यपि योगदर्शनको साङ्ख्यकी विषय-निर्वाचन-शैली या पदार्थविभाग स्वीकृत है, तो भी इसमें उन पदार्थोंके लक्षण-बोधक खास खास सूत्र नहीं हैं। योगका विवरण ही योग-दर्शन में विशेष रीतिसे है। योग-दर्शनमें योगका विवरण उसी रीतिसे है, जिस रीतिसे साङ्ख्यमें विवेक-ज्ञानका। यही कारण है कि, इस दर्शनका एक नाम योग-शास्त्र भी है।

यों तो योगदर्शनके ग्रन्थोंका ठिकाना नहीं है कि, वे कितने हैं; परन्तु आज कल विशेष प्रचलित कुछ ग्रन्थोंके नाम ये हैं,—

योगदर्शनके प्रामाणिक ग्रन्थ और उनके भाष्य, टीकाएं आदि

महर्षि-पतञ्जलि-कृत योगसूत्र, शंकराचार्यकृत अष्टाङ्गयोग, रामचन्द्र-परमहंसकृत तत्त्वबिन्दु, कुलमणिशुक्लकृत योगकल्पद्रुम, गोवर्द्धन-योगीन्द्रकृत योगचन्द्रिका, गदाधर-मिश्रकृत योगचिन्तामणि, आनन्दसिद्धकृत योगज्ञान, शुकदेवकृत योगतारावली, देवीसिंहदेवकृत योगप्रदीप, सनातनगोस्वामिकृत योगशतकव्याख्यान, विज्ञानभिक्षुकृत योगसारसंग्रह, आधारेश्वरकृत योगानुशासन, रामेश्वरभट्टकृत विवेकमार्त्तण्ड, ब्रह्मानन्दकृत षट्चक्रदीपिका, आदिनाथकृत हठयोग आदि। योगसूत्रोंपर आज कल इतने भाष्य, टीकाएं प्रचलित हैं,—व्यासकृत वैयासिक-भाष्य, वाचस्पति-मिश्रकृत तत्त्ववैशारदी, विज्ञानभिक्षुकृत योगवार्त्तिक, भोजदेवकृत राजमार्त्तण्ड, नागेशकृत भाष्यव्याख्या, अनन्तरचित योगसूत्रार्थ-चन्द्रिका, आनन्दशिष्यकृत योगसुधाकर, उदयंकरकृत योगवृत्ति-संग्रह, उमापति-त्रिपाठि-कृत योगसूत्रवृत्ति, क्षेमानन्ददीक्षितकृत नवयोगकल्लोल, गणेशदीक्षित-कृत पातञ्जलवृत्ति, ज्ञानानन्दरचित योगसूत्रविवृति, नारायणमिश्रकृत गूढार्थद्योतिका, भवदेवकृत पातञ्जलाभिनवव्याख्या, भवदेवकृत योगसूत्रवृत्तिटिप्पन, महादेवकृत योगसूत्रवृत्ति, रामानन्दसरस्वतीकृत योगमणिप्रभा, रामानुजकृत योगसूत्रभाष्य, वृन्दावन शुक्लरचित योगसूत्रवृत्ति, शिवशंकरकृत योगवृत्ति, सदाशिवरचित पातञ्जलसूत्रवृत्ति, राघवानन्दयतिकृत

पातञ्जलरहस्य, श्रीधरानन्दयतिकृत पातञ्जल-रहस्य-प्रकाश आदि। इनमें वैयासिक-भाष्य, तत्त्ववैशारदी, योगवार्त्तिक तथा राज-मार्त्तण्ड विशेष प्रचलित, प्रामाणिक और सुबोध हैं।

महर्षि व्यासने, अपने भाष्यमें कहीं भी नहीं लिखा है कि, इस भाष्यकी रचना मेरे द्वारा हुई है; परन्तु माधवाचार्य आदि प्रामाणिक और प्राचीन आचार्योंके कथनोंसे वेदव्यासका ही यह भाष्य मालूम होता है। इस भाष्यकी टीकाके प्रारम्भमें वाचस्पति मिश्रने जो मङ्गलाचरणका श्लोक लिखा है, उसमें उन्होंने भी इसे वेदव्यासकृत स्वीकार किया है। परन्तु कुछ लोगोंको माधवाचार्य, वाचस्पति मिश्र आदि जैसे असाधारण विद्वानोंका भी मत मान्य नहीं है। वे कहते हैं, यदि पतञ्जलि-दर्शनके भाष्यप्रणेता वेदव्यास रहते, तो वे अपनी ब्रह्ममीमांसा या वेदान्तदर्शनमें सांख्यदर्शनके खण्डनके बाद :"एतेनः योगः प्रयुक्तः" सूत्र द्वारा योगदर्शनका खण्डन नहीं करते। इस सूत्रसे मालूम पड़ता है कि, व्यासजी इस दर्शनको श्रुतिविरुद्ध समझते थे। अतः यह बात असम्भव है कि, वे श्रुति-विपरीत दर्शनका भाष्य लिख सकते।

परन्तु इस दलीलको कुछ लोग निःसार समझते हैं। उनके विचारसे इस सूत्र द्वारा व्यासजीने योगदर्शन या योगका खण्डन नहीं किया है; बल्कि योगदर्शनने जो सांख्यके अवैदिक पदार्थोंको स्वीकार किया है, उनका खण्डन किया है। उनके खण्डनसे व्यासजीका योग-निरास अभीष्ट नहीं समझना चाहिये; क्योंकि वे विषय योगशास्त्रमें गौणरूपसे ही स्वीकृत हुए हैं। योगसूत्रोंका

उपक्रम और उपसंहार देखनेसे भी यही बात मालूम पड़ती है कि, योगदर्शनका मुख्य प्रतिपाद्य योग और उसके अङ्गोपाङ्ग हैं तथा गौण विषय सांख्यके पच्चीस तत्त्वोंका स्वीकार है। इससे तो यह भी अनुमान किया जा सकता है कि, किसी विशेष कारणसे ही पतञ्जलिने सांख्य-सिद्धान्तोंको स्वीकार किया है, अन्यथा वे इस गौण सिद्धान्तावलीको भी स्वीकार नहीं कर सकते। विद्वानोंने वह विशेष कारण भी खोज निकाला है। यह कि, श्रुतिविरुद्ध होनेपर भी सांख्यकी पदार्थावली अध्यात्मविद्यामें उपयोगिनी है। जैसे न्याय, वैशेषिककी पदार्थावली बुद्धि-वैभवकी अभिवृद्धिके लिये उपयोगिनी है, वैसे ही सांख्यकी अध्यात्मज्ञानोपयोगिनी है। इसी विचारसे पतञ्जलिने उसकी पदार्थावली स्वीकृत की है। इसलिये यह स्पष्ट है कि, योगदर्शनका मुख्य विषय योग-प्रतिपादन और गौण या सहायक विषय महत् या अहंकार आदिका अङ्गीकार है। इस कारण "एतेन योगः प्रत्युक्तः" इस सूत्र द्वारा योगदर्शनके मुख्य विषयका खण्डन नहीं अपेक्षित है। इस सूत्रके प्रथम सूत्रोंका खण्डन पढ़नेसे भी यही बात विदित होती है। इस सूत्रके शंकर-भाष्यका भी यही तात्पर्य है। इसके सिवा "विद्यामेतां योगविधिञ्च कृत्स्नम्" और "त्रिरुन्नतम् स्थाप्य समम् शरीरम्" आदि वाक्योंसे वेदोंमें योगविधि और योगासनका विवरण देखकर यह भी जाना जाता है कि, योगदर्शन वेद-सम्मत है। वार्षगण्य और अनन्त-देव आदि योगाचार्योंने तो सांख्यकी जगह वेदान्तसिद्धान्तोंका ही अनुमोदन किया है। महाभारत तथा और और पुराणोंमें वेदव्यासने

योगदर्शनका उपदेश भी दिया है। यह सब देख-विचार कर विद्वानोंने निर्णय किया है कि, व्यासने योगदर्शनका समर्थन और उसके भाष्यका प्रणयन किया है। "एतेन योगः प्रत्युक्तः" सूत्र-पर वाचस्पतिकी भामती नामकी टीका प्रत्येक विद्वान्को देख कर इस विषयका सन्देह मिटा डालना चाहिये।

पतञ्जलिने योगदर्शनमें अध्यायकी जगह 'पाद'का व्यवहार किया है। चार पादोंमें पातञ्जल दर्शन समाप्त किया गया है। प्रथम पादका नाम समाधिपाद, दूसरेका साधनपाद, तीसरेका विभूतिपाद और चौथेका कैवल्य-पाद नाम है। प्रथम पादमें ५१ सूत्र, दूसरेमें ५५ सूत्र, तीसरेमें ५६ सूत्र और चौथेमें ३३ सूत्र हैं। सब मिलकर १९५ सूत्र हैं। सभी सूत्र बड़े ही सरल, बड़े ही सुन्दर और बड़े ही सरस हैं।

पाद-विवरण

प्रथम पादमें योगका उद्देश और लक्षण, वृत्तिलक्षण, योगोपाय और योगके अवान्तरभेद आदि विषय उपदिष्ट हैं। दूसरे पादमें क्रियायोग, क्लेश, कर्म, कर्मफल, यम, नियम आदि वर्णित हैं। तीसरे पादमें योगके अन्तरङ्ग अङ्ग, परिणाम, समाधि, ऐश्वर्य विवेकज्ञान आदि अभिहित हैं। चौथे पादमें मुक्तियोग्य चित्त, परलोकसिद्धि, आत्मसिद्धि, धर्ममेघसमाधि, जीवन्मुक्ति, विदेह कैवल्य आदि कथित हैं। इनके सिवा बीच-बीचमें, प्रसङ्गानुसार, अन्यान्य विषयोंका भी वर्णन है।

पहले ही कहा गया है कि, चित्तकी सारी वृत्तियोंको रोक लेनेका

नाम योग है। योगियोंका सिद्धान्त है कि, जिस समय सब अन्तः-करणकी वृत्तियाँ, (राग, द्वेष आदि) अपने

विविध योग

काबूमें आ जाती हैं, उस समय मनुष्यके अन्दरकी अव्यक्त शक्ति जाग जाती है, जिससे योगीको परम बलकी प्राप्ति हो जाती है। घेरण्डसंहितामें लिखा है, "नास्ति योगात् परं बलम्" अर्थात् योगसे बढ़ कर ब्रह्माण्डमें दूसरा बल नहीं है। विज्ञानभिक्षुने भी, अपने सांख्यप्रवचनभाष्यमें, लिखा है कि, "नास्ति योगसमं बलम्" मतलब कि, योगके समान कोई बल नहीं है। इसी तरह शास्त्रोंमें योगकी बड़ी-बड़ी महिमाएं गायी गयी हैं। परन्तु यह बात भी ध्यानमें रखनेकी है कि, दार्शनिक योगकी ही विशेष महिमा है। योग शब्दका अर्थ गीतामें कर्म-चातुरी, ज्योतिषमें कालविशेष और अन्यान्य कई स्थानोंमें केवल किया है। इस बात पर विशेष ध्यान रखना चाहिये। इसीसे जितने तरहके आज कल योग प्रचलित हैं, उन सबका हम यहाँ उल्लेख कर देते हैं।

पहले गीताको ही लीजिये। उसमें प्रधानतः निष्काम योगका ही उपदेश दिया गया है। परन्तु उसमें अन्यान्य योग भी विवृत हैं। गीताके दूसरे अध्यायमें सांख्ययोग, तीसरेमें कर्मयोग, चौथेमें ज्ञान-कर्मयोग, पाँचवेंमें कर्म-संन्यासयोग, छठेमें ध्यानयोग, आठवेंमें तारकब्रह्मयोग, नवेंमें राजगुणयोग, दसवेंमें विभूतियोग, बारहवेंमें भक्तियोग, तेरहवेंमें क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोग, चौदहवेंमें गुणत्रययोग, पन्द्रहवेंमें पुरुषोत्तमयोग और अठारहवेंमें सन्न्यासयोगका वर्णन है।

योगशास्त्रके अन्यान्य ग्रन्थोंमें इतने प्रकारके योग पाये जाते हैं,—राजयोग, राजाधिराजयोग, जपनियमयोग, अष्टाङ्गयोग, पञ्चाङ्गयोग, षडङ्गयोग, हठयोग, नेतियोग, दन्तियोग, धौतियोग गजकरिणीयोग, वस्तियोग, लौलिकयोग, मन्त्रयोग, लययोग, कपालभातियोग, पञ्चमकारादियोग आदि आदि। जो हो ; पर दर्शनशास्त्रमें तो क्रियायोग और ज्ञानयोग ही विशेष कथित हैं। तप, स्वाध्याय और ईश्वरध्यानका नाम क्रियायोग तथा प्रकृतिपुरुषके विवेक-ज्ञानका नाम ज्ञानयोग है। इन योगोंकी शिक्षाके लिये किसी एक खास गुरुकी आवश्यकता पड़ती है। सभी विद्वान् योगकी शिक्षा नहीं दे सकते ; केवल सिद्ध योगी ही भली भाँति योगोपदेशके अधिकारी हैं। योगके लिये आसनों और मुद्राओंका जानना भी अत्यन्त आवश्यक है। इसके सिवा देहके मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणि-पूरक, अनाहत, विशुद्ध, सहस्रार आदिका पूरा पूरा ज्ञान प्राप्त करनेकी भी पूरी आवश्यकता है। योगाभ्यासके समय सबसे जरूरी है, ब्रह्मचारी रहना। विना ब्रह्मचर्यके योग सीखना अपने पैरों कुल्हाड़ी मारना है ; क्योंकि पद-पद पर भ्रष्ट होनेकी आशंका बनी रहती है। दत्तात्रेयसंहितामें लिखा है कि, योगाभ्यासीको खाद्याखाद्यका भी खूब विचार रखना चाहिये। भूलसे भी कुपथ्य खा लेने पर योगानुष्ठान अविशुद्ध हो जाता है। कटु, अम्ल, रूक्ष, लवण और तेलका व्यवहार तो योगियोंके लिये बिलकुल विवर्जित है। गेहूं, धान, यव, घी, मिष्टान्न, दूध और बिना चूनेका कपूर वाला पान योगीको खाना चाहिये।

महर्षि पतञ्जलिके दर्शनमें ईश्वर माने गये हैं। वे मूल पुरुष और जीवात्माओंसे बिल्कुल पृथक् हैं। वे पूर्ण, अक्षय, विचित्र-शक्ति-सम्पन्न और किसी तरहके भी क्लेश, कर्म, कर्मफल आदिसे निर्लिप्त हैं। वे अपनी इच्छाके अनुसार प्रकृतिकी सृष्टि, स्थिति और प्रलय करते हैं। उन्हींकी कृपासे दुःखी जीव आनन्दमय बनते हैं।

योगदर्शन और ईश्वर

ईश्वरके अङ्गीकारमें महर्षि पतञ्जलिकी यह युक्ति है,—जिन पदार्थोंके अंश देखे जाते हैं, उनका कोई न कोई मूल भी अवश्य है। पहाड़, चौखट आदि पदार्थों का मूल एक वृक्ष अवश्य होता है। इसी तरह लहरियोंका सागर, किरणोंका सूर्य आदि भी अंश और मूलकी तरह उदाहरण हैं। इसलिये यह बात सिद्ध है कि, सभी अपूर्ण और न्यूनाधिक पदार्थोंका कोई पूर्ण और विश्राम स्थानीय तत्त्व रहता है। अपूर्ण और न्यून तिलसे आँवला बड़ा है और उसी, अपूर्ण, न्यून तथा अपेक्षाकृत अधिक बड़े आँवलेसे श्रीफल बड़ा है। इसी तरह तारतम्यानुसार एकसे दूसरा पूर्ण है। परन्तु इन सब अंशात्मक पदार्थोंका एक पूर्णमूल है, जो सबसे महान् है। उसे योगदर्शन पुरुष, आत्मा या चेतन कहता है। आत्मासे बड़ा तत्त्व कोई नहीं है।

दूसरी युक्ति यह है,—संसारमें जहाँ देखिये वहीं ज्ञानकी कमीवेशी है। एकके ज्ञानकी अपेक्षा दूसरेका ज्ञान बढ़ा-चढ़ा देखा जाता है। संसारमें देखा जाता है कि, देवदत्त नामक मनुष्य भूत, भविष्य और वर्त्तमानका जितना ज्ञान रखता है,

उससे दूना ज्ञान किसी यज्ञदत्त नामक व्यक्तिको है। विष्णुमित्र नामके मनुष्यका ज्ञान इससे भी बढ़कर है। उसलिये यह बात स्पष्ट है कि, ज्ञानका भी यथेष्ट तारतम्य है। अब यह बात बताने की कोई आवश्यकताही नहीं कि, इस तारतम्यका कहीं न कहीं अवश्य विश्राम और चरमोत्कर्ष भी होगा। जहाँ चरमोत्कर्ष होगा वही चेतन ईश्वर है।

तीसरी बात,—जगत्में ऐश्वर्यका भी तारतम्य देखा जाता है। जो ऐश्वर्य देव-नायकके पास है, वह देवके पास नहीं। इस तरह जहाँ ऐश्वर्यकी सबसे विशेष उत्कृष्टता है, वही ईश्वर है।

योगदर्शन कहता है कि, सबसे महान्, सर्वज्ञ और विचित्र-ऐश्वर्यशाली ईश्वर एक ही है; वह अनेक नहीं हो सकता। यदि कई ईश्वर हों तो, यह गड़ बड़ होगी कि, एक ही वस्तुके लिये दो ईश्वरोंकी दो इच्छाएँ, एक ही साथ होने पर, एककी इच्छा पूरी होगी कौर एककी अधूरी। यदि एक ईश्वर वृक्षको नया बनाना चाहेगा तो, दूसरा पुरातन; और, इच्छा पूरी होगी एकही ईश्वरकी! इधर यह अकाट्य अनुमान है कि, जिसकी इच्छा अपूर्ण रहती है, वह कभी ईश्वर नहीं हो सकता। वह अल्पज्ञ प्राणी हो सकता है। फलतः ईश्वर एक ही हैं, अनेक नहीं।

ईश्वरको क्लेश, कर्म, कर्मफल आदि छू तक नहीं सकते। ये ही सब भोगके भी कारण हैं। ईश्वर इनसे अलग हैं; इसलिये वे भोक्ता नहीं हैं। क्लेश आदि अन्तःकरणके धर्म हैं और अन्तः-

करणसे आत्मा या पुरुषका सम्बन्ध होनेसे जीवात्माको क्लेशादि भोगने ही पड़ते हैं। इधर ईश्वरको यद्यपि अन्तःकरण है, किन्तु वह सविशेष विशुद्ध हैं, और पुरुषोंकी तरह मलिन नहीं है; इसलिये उनमें क्लेश आदि नहीं हैं। साथ ही ईश्वरकी बुद्धि अनादि कालसे ही विशुद्ध है। इसलिये वे नित्य-मुक्त हैं। ईश्वर ब्रह्मा आदिके भी गुरु या शिक्षक हैं। ईश्वरकी कभी भी मृत्यु नहीं होती। और तो क्या, उनके ही हाथमें काल भी रहता है।

ईश्वरका सर्वश्रेष्ठ नाम 'ओं' है। इसलिये प्रत्येक योगाभ्यासी को ओंकारका जप और उसके अर्थका चिन्तन करना चाहिये। जप और चिन्तन करते-करते योगाभ्यासीकी योगबाधक व्याधियाँ विनष्ट होती हैं और उसे आत्मज्ञान मिलता है। योगदर्शनके प्रथम पादके तेईसवेंसे उनतीसवें सूत्रोंमें ये ही बातें कही गयी हैं।

अन्तःकरणका नाम योगदर्शनने चित्त रखा है। यह त्रिगुणात्मक है। इन तीनों गुणोंकी कमीवेशीके कारण चित्त अनेक रूप बनाता रहता है। इन रूपोंका नाम भूमि और वृत्ति भी है। यद्यपि चित्तकी अनन्त भूमियाँ हैं। किन्तु प्रधान पाँच ही हैं। क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। प्रायः चित्तकी सभी दशाएं इन्हीं पाँचोंकी शाखा-प्रशाखाएं हैं। भूमि का अर्थ अवस्था या Stage भी है।

जिस समय चित्त किसी एक विषयमें स्थिर नहीं रहता,

चित्त-वृत्तियां और चित्तैकाग्रता

हजारों पदार्थों में दौड़ा करता है, उस समय वह क्षिप्त कहाता है। जिस समय मन कर्त्तव्याकर्त्तव्यका खयाल न करके काम, क्रोधके वशमें आ जाता है, निद्रा-तन्द्राके अधीन हो जाता है और अन्यान्य अज्ञानमयी भीषण अवस्थाओंमें पड़ा रहता है, उस समय चित्त मूढ़ावस्थाका गिना जाता है। क्षिप्तावस्थासे विक्षिप्तावस्थाका थोड़ा ही प्रभेद है। वह यह कि, क्षिप्त चित्त जो एक विषयको छोड़कर दूसरे विषयको पकड़ता है, वह दो-चार क्षणके लिये स्थिर हो जाता है। उसी स्थिर दशाका नाम विक्षिप्त भूमि है। जिस समय चित्त किसी एक वस्तुका अवलम्बन कर निश्चल-निष्काम दीपशिखाकी भाँति स्थिर हो जाता है या जिस समय उसमें केवल सत्त्वभावका उद्रेक रहता है, उस समय चित्तकी एकाग्र अवस्था मानी जाती है।

इस एकाग्र अवस्थासे भी अत्यन्त उन्नत चित्तको निरुद्ध कहा जाता है। एकाग्रावस्थामें चित्त किसी एक अवलम्बनसे रहता है; परन्तु निरुद्धावस्थामें यह बात नहीं रहती। निरुद्धावस्थामें वह बिलकुल निश्चेष्ट हो जाता है। जैसे जले सूतकी रेखा भर रह जाती है, वैसे ही निरुद्ध चित्त प्रकृतिको प्राप्त कर शान्त हो जाता है। उस समय उसमें कोई चञ्चलता या अशान्ति नहीं रहती है।

इन चित्तकी पाँचों अवस्थाओंमेंसे पहलेकी तीन अवस्थाओंका योगमार्गसे जरा भी सम्बन्ध नहीं है। कुछ लोग कहते हैं कि, विक्षिप्त अवस्था योगमें कुछ सहायता दे सकती है; किन्तु यह

केवल भ्रम है ; क्योंकि, विक्षिप्त दशा तो ही चार क्षणोंके लिये होती है। फलतः एकाग्र और निरुद्ध अवस्थाएं ही योगोपयोगिनी हैं। इनमें भी, जैसा कि, कहा गया है, निरुद्ध भूमि ही श्रेष्ठ है ; इसलिये इसे ही पानेके लिये योगाभ्यासीको प्रयत्न करना चाहिये। पहलेकी तीनों अवस्थाओंको पहले दूर करना परम आवश्यक है। इसके बाद एकाग्रताका अभ्यास करते-करते निरुद्ध भूमिको प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। निरुद्ध अवस्थाको पा जानेपर आत्मा अपने रूपमें आ जाती है। उस समय कुछ कर्माकर्म नहीं रह जाता। योगीका यही अवस्था प्राप्त करना असली उद्देश है। एकाग्र चित्तके योगका नाम सम्प्रज्ञात और निरुद्धका असम्प्रज्ञात है।

अब चित्तकी वृत्तियोंकी ओर ध्यान दीजिये। चित्तकी वृत्तियाँ दो प्रकारकी हैं। एकका नाम क्लिष्ट और दूसरीका नाम अक्लिष्ट है। जिस वृत्तिसे धर्म-अधर्म या कर्म-अकर्मकी उत्पत्ति होती या जिससे क्लेश पहुंचता है, उसे क्लिष्ट और इसके विपरीत वृत्तिका नाम अक्लिष्ट है। साधारणतः राजस और तामस वृत्तियोंका नाम क्लिष्ट और सात्त्विकका नाम अक्लिष्ट है।

प्रायः अवस्था-विशेषको ही वृत्ति कहा जाता है। परन्तु भूमि और वृत्तिमें बहुत भेद है। जो हो, योगशास्त्रने चित्तकी पाँच वृत्तियाँ मानी है। इन वृत्तियोंके ये नाम हैं,—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। इन पाँचोंमें क्लिष्ट और अक्लिष्ट आदि दोनों वृत्तियाँ रहती हैं। इस तरह वृत्तियाँ दस तरह की हैं।

इन सब वृत्तियोंका पहले ही उल्लेख किया जा चुका है। योगके समय सभी वृत्तियोंका निरोध करना होता है।

योगाभ्यासके समय संशय, आलस्य, प्रमाद आदि जो होते हैं, उनसे अपने चित्तको डिगने नहीं देना चाहिये। ध्यानके समय यदि किसी तरफ चित्त चला जाय, तो उसे जबरदस्ती किसी एक उत्तम तत्त्वमें लगाना चाहिये। स्वभावतः मनुष्य-चित्त चञ्चल और अपरिष्कृत रहता है। इसलिये सावधानीसे उसे स्थिर और परिष्कृत बनाना चाहिये। चित्तकी स्थिरता और विशुद्धताके लिये भी योग-दर्शनमें उपाय बताये गये हैं। उनमें पहला उपाय है, दूसरेका सुख देखकर आप सुखी होना। दूसरेकी सुख-दशामें अपनी मित्रता जताना, ईर्ष्या न करना, चित्त-मल दूर करता है। द्वितीय उपाय, दूसरेके दुःखमें दुःखी होना। करुणा या परदुःख-कातरतासे चित्तका विक्षेपमल विनष्ट होता है। तृतीय, दूसरेका पुण्य देखकर हृष्ट होना। पर-पुण्यमें मुदित होनेसे डाह नामका चित्त-मल दूर होता है। चतुर्थ, पापीका पाप देखकर उदासीन होना। यद्यपि इस बातको हमारे अन्यान्य शास्त्र नहीं मानते। परन्तु योगशास्त्रके सिद्धान्तानुसार योगीके हकमें यही रास्ता अच्छा है।

इस तरह चित्तका मल धुल जानेपर और उसमें उचित स्थिरता आ जाने पर चित्तकी पूरी एकाग्रताके लिये प्राणायाम करना बहुत बड़ा साधन है। इसे, पोथी पढ़कर, कभी नहीं करना चाहिये ; गुरुमुखसे सुनकर विधिपूर्वक इसका अभ्यास करना

चाहिये। यदि प्राणायाम सिद्ध हो जाय, तो मनका कोई चाञ्चल्य हो न रहे। उस समय चित्त सुप्रसन्न, सुप्रकाश और एकाग्र-योग्य हो जाता है। इसके अनन्तर एक तरहकी सुन्दर प्रज्ञा उत्पन्न होती है, जिससे चित्त इतना वशी हो जाता है कि, उसे जिस किसी सूक्ष्मसे सूक्ष्म तत्त्वमें लगा दिया जाय, वह उसमें तुरत एकाग्र हो जाता है। इस तरह चित्तकी एकाग्रता धीरे-धीरे बढ़ने लगती है। चित्तमें पूर्ण एकाग्रता आ जानेपर हृदय कमलमें एक प्रकारकी ज्योति या आलोक प्रकटित होता है। इसके बाद वह निस्तरङ्ग सागरकी तरह प्रशान्त हो जाता है। इस दशाकी प्राप्ति हो जाने पर और किसी तरहका शोक नहीं रह जाता। इसीलिये इस 'आलोक'का नाम विशोक रखा गया है। इसीके अनन्तर समाधि होने लगती है।

महर्षि पतञ्जलिने, चित्तकी स्थिरताके लिये, एक और सुगम उपाय बताया है। वह यों है, जिस किसी विषयको देख कर मन सुप्रसन्न और प्रफुल्लित होता है, उसका ध्यान करना भी चित्तकी एकाग्रताके लिये उपयोगी है। इस तरह एक तत्त्वका अभ्यास करते-करते चित्त स्थिर-स्वभाव और एकाग्र हो जाता है। इस समय सूक्ष्मतम परमाणुसे लेकर महान् तत्त्व परमात्मातकमें चित्तकी एकाग्रता हो जाती है। अन्तको चित्त स्फटिक मणिकी तरह विशुद्ध हो उठता है।

कुछ योगी लोग कहते हैं कि, पहले किसी अपनी प्रिय स्थूल वस्तु, मूर्ति आदि—में चित्तको एकाग्र करना चाहिये। अनन्तर

मन, बुद्धि और अहंकार आदि सूक्ष्म तत्त्वोंमें चित्त लगाना चाहिये। इनमें स्थिरता प्राप्त कर चित्त जीवात्मामें विलीन होता है, जिससे क्रमशः सम्प्रज्ञात समाधिका लाभ हो जाता है।

पातञ्जल दर्शनमें आत्माको द्रष्टा, दृक्शक्ति, पुरुष, चितिशक्ति आदि कहा गया है। इस दर्शनमें पद्मपत्रकी तरह आत्मा निर्लिप्त है। परन्तु वह बुद्धिके सन्निधान या समीपतासे बुद्धिवृत्तियोंका अनुकरण करने वाला हो जाता है; जैसे जवा-पुष्पके सन्निधानसे स्फटिक मणि। वास्तवमें आत्माका कुछ धर्म-अधर्म नहीं है; बुद्धिमें ही ताप या दुःख उत्पन्न होता है। परन्तु बुद्धिसंयोगके कारण आत्मा ताप-दग्ध हो जाती है। इसी बातको महर्षि पतञ्जलिने इस तरह कहा है,—अपरिणामी आत्माके प्रतिबिम्बसे परिणामी बुद्धिद्रव्य चेतनायमान या चेतनतुल्य हो जाता है और बुद्धिकी प्रतिच्छायाके कारण आत्मा भी बुद्धिमय हो जाती है। इस तरह बुद्धि ज्ञान और पुरुषमें योग नामक धर्म आ जाते हैं। इस तरह आत्मा, दुःखी हो जानेपर, दुःखके विनाशके लिये श्रद्धा, नियमके साथ यम, नियम आदि योगाङ्गोंका अनुष्ठान करती या परमात्माका ध्यान करती है। अनुष्ठान या ध्यानके फलस्वरूप जिस समय आत्माको यह ज्ञान हो जाता है कि, विशुद्ध चेतन प्रकृति या बुद्धिसे बिलकुल अलग है, उस समय उसके अविद्या, राग, द्वेष आदि सब क्लेश दूर हो जाते तथा आत्माके पूर्वजन्मके सब कर्म-संस्कार जल जाते हैं। इसका फल यह होता है कि, आत्माका, जन्म जरा-

आत्मा

मरणसे, पिण्ड छूट जाता है और देहत्यागके अनन्तर उसे मुक्ति मिल जाती है। उस समय निर्लिप्त आत्मा फिर निर्लिप्त हो जाती या अपने रूपमें स्थित हो जाती है।

योगदर्शनके इस सिद्धान्त पर यह प्रश्न किया जाता है कि, क्या प्रमाण कि, बुद्धि या चित्त ही परिणामी है और आत्मा निर्लिप्त है? इसके उत्तरमें पातञ्जल दर्शन यह दार्शनिक युक्ति उपस्थित करता है: आत्मा या पुरुष परिणाम-हीन है: क्योंकि वह बुद्धि-वृत्तिका प्रकाश करता है। संसारमें देखा जाता है कि, जो पदार्थ परिणामी है, वह पर-प्रकाशक और ज्ञाता नहीं है। उदाहरणार्थ मनको ही लीजिये। मन अपरिणामी नहीं है: इसलिये वह परप्रकाशक और ज्ञाता भी नहीं है। इसके सिवा यदि आत्माको परिणामी मान लिया जाय, तो वह सदा सब वृत्तियोंका प्रकाश नहीं कर सकती। क्योंकि, जैसे परिणाम बराबर बदलता रहता है, वैसे ही परिणामी भी बदलेगा। इस तरह स्वयं अपूर्ण, चञ्चल और अज्ञानमय परिणामी पदार्थ कभी परप्रकाशक और ज्ञाता हो नहीं सकता। फलतः आत्मा अपरिणामी और सदा एकाकार अवस्थित है। दूसरी तरफ चित्त भिन्न-भिन्न विकारों या परिणामोंके अधीन होकर सदा परिवर्त्तित होता रहता है। यदि चित्त भी परिवर्त्तन-हीन, शान्त और एकरस रहता, तो वह भी सदा प्रकाशक और ज्ञाता बना रहता।

परिणामी होनेके कारण चित्त जिस समय जिस वस्तुमें उपरत रहता है, उस समय वह उसी वस्तुको जानता या तदाकार धारण करता है। वह जिस विषयमें उपरत नहीं रहता, उस विषयको

नहीं जानता। पातञ्जल दर्शन चित्तको लौह और विषयोंको चुम्बक मानता है। इन्द्रिय-संयोग होनेके बाद सारे विषय चित्त-रूप लोहेको अपने आकार या रूपकी धारणा करनेके योग्य बना देते हैं। इसलिये चित्त काम, संकल्प, सन्देह, श्रद्धा, अश्रद्धा, धैर्य, अधीरता, लज्जा, भय आदि धर्मोंका आधार बन जाता है। इधर पुरुष इन सबसे निर्लिप्त रहता है। काम, संकल्प आदि विकारोंके आधार होनेके कारण यह स्वयं सिद्ध है कि, चित्त परिणामी है। किन्तु पुरुष हर हालतमें अपरिणामी और विकार-रहित है।

योगदर्शनके मतसे वृत्तियोंका निरोध भी चित्तका ही धर्म है। परन्तु यह बात अवश्य है कि, वृत्तियोंकी निरोध-रूपिणी यह वृत्ति पुरुषको उसके रूपमें स्थित कर देती है।

विविध चित्त-वृत्तियोंके कारण पुरुषको अनेक कष्ट भोगने पड़ते और उसे जन्म-मरणके चक्करमें फँसा रहना पड़ता है।

क्लेश, कर्म, विपाक और आशय

विशेषतः वृत्तियाँ क्लेश, कर्म, विपाक और आशय नामके चार जाल रचती हैं। इनमें क्लेश पाँच तरहका है, अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश। जो पदार्थ जैसा है, उसे वैसा न जानना अविद्या है। जैसे अनित्य बाहरी प्रपञ्चको नित्य जानना। यह अविद्या चार प्रकारकी है,—१म अनित्यमें नित्यताका ज्ञान, २य अशुचिमें शुद्धताका ज्ञान, ३य दुःखमें सुखका ज्ञान और ४र्थ अनात्मामें आत्माका ज्ञान। आचार्यों के मतसे

अन्य चारों क्लेशोंका मूल अविद्या ही है। बुद्धि और आत्माको एक समझ कर मैं पन का अभिमान करना अस्मिता है। दूसरेका सुख देख कर उसके लिये तृष्णा करना राग कहाता है। दूसरेके दुःखका स्मरण कर उसे या उसके कारणको हटानेकी अभिलाषाका नाम द्वेष है। मरण-भयका नाम अभिनिवेश है। व्यासभाष्यके कथनानुसार पूर्व जन्मके अनुभूत मरण-दुःखका संस्कार ही इस जन्ममें अभिनिवेश-रूपमें प्रकट होता है। क्लेशोंकी चार अवस्थाएं होती हैं,—प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार। जो लुप्तसा रहता है, वह प्रसुप्त क्लेश, जो दग्ध शस्यकी तरह समाधि द्वारा भुना हुआ है, वह तनु, जो सुखान्तमें होता है, वह विच्छिन्न और जो पूरा प्रकट है, वह उदार क्लेश है। इन क्लेशोंका उल्लेख सांख्यप्रकरणमें किया जा चुका था ; परन्तु आवश्यक समझ कर पुनरुल्लेख करना उचित समझा गया।

शास्त्र-विहित और निषिद्ध कायिक, वाचिक तथा मानसिक कार्यों का नाम कर्म है। योगशास्त्रमें चार तरहके कर्म होते हैं। विपाक शब्दका अर्थ है कर्मफल। इसीसे जाति, आयु और भोग मिलते हैं।

फलप्राप्तिके समयतक जो चित्तमें रहकर शरीर, मन आदिको फल-प्राप्तिके लिये प्रेरित करता है, उसी संस्काररूप पूर्व कर्मका नाम योगदर्शनमें आशय रखा गया है। अन्यान्य दर्शनोंमें इसका नाम धर्माधर्म, पुण्यपाप, शुभादृष्ट और दुरदृष्ट आदि है। जबतक वह फलारम्भ नहीं करता, तबतक इसे आग्रह, अनुबंध, प्रकृति,

स्वभाव, झोंक, Tendency आदि भी कहा जाता है। पूर्वाभ्यासकी प्रेरणा भी इसीसे होती है। यह मनुष्यको कार्य में प्रवृत्त कराता है, वह कार्य फिर आशय उत्पन्न करता है, फिर आशयसे कर्म और कर्मसे आशय उत्पन्न होता है। इस तरह जीव दिन-रात इसीके चक्करमें पड़ा रहता है। यदि एक बार भी योग द्वारा इसे दग्ध कर दिया जाय, तो इसकी प्रेरणाका अन्तः ही हो जाय—फिर कैसा जन्म और कैसी मरण?

दृष्टजन्म वेदनीय और अदृष्टजन्म वेदनीय नामके दो तरहके आशय होते हैं। इस शरीर द्वारा कृत दृष्टजन्मवेदनीय और पूर्वजन्मके शरीर द्वारा कृत अदृष्टजन्म वेदनीय कहाता है।

योगदर्शनके मतसे संसारके सभी पदार्थोंमें दुःख है। इस लिये सबको छोड़ देना चाहिये। परिणाममें दुःख, वर्त्तमानमें दुःख और उसके स्मरण-संस्कारमें दुःख, सभी जगह दुःख ही दुःख! फलतः योगाभ्यासीको लौकिक धन आदि और शास्त्रीय स्वर्ग आदि सभीका त्याग कर देना चाहिये। सब विषयोंसे तृष्णा हटा देनेका नाम ही वैराग्य है। सात्त्विक वृत्तिके उदयके लिये यत्नका नाम अभ्यास है।

अभ्यास और वैराग्य

चित्तवृत्तिके निरोध या समाधिके लिये मुख्य उपाय अभ्यास और वैराग्य हैं। अभ्यास द्वारा तामस और राजस वृत्तियोंको दबा कर चित्तको एकाग्र किया जाता है। दीर्घ कालतक अभ्यासके फलस्वरूप चित्तमें शान्ति आती और उसका चाञ्चल्य दूर होने

लगाना है। योगदर्शनके कथनानुसार दृष्ट पुत्र, यश आदि और अदृष्ट स्वर्ग आदि पदार्थोंमें पूर्ण निस्पृहता हो जाने पर "वशीकार" नामका वैराग्य उत्पन्न होता है। प्रकृति-पुरुषका ज्ञान हो जाने पर प्रकृतिसे जो वितृष्णा उत्पन्न हो जाती है, उसका नाम पर-वैराग्य है। उसे पाते ही आत्मसाक्षात्कार हो जाता है। इस तरह अभ्यास और वैराग्यके प्रभावसे योगकी प्राप्ति हो जाती है। अभ्यास और वैराग्यके बिना चित्त स्थिर नहीं होता और बिना चित्तकी स्थिरताके योग नहीं मिलता। इसलिये अभ्यास और वैराग्य, दोनों ही प्रयोजनीय और दोनों ही योगके मुख्य उपाय हैं।

महर्षि पतञ्जलिने कहा है कि, अभ्यास और वैराग्यके साधनके लिये पहले क्रियायोगका ही अवलम्बन करना चाहिये; क्योंकि, क्रियायोग ही मुख्य योगका सोपान है। क्रियायोगका मतलब पहले बताया गया है; उसीके अन्दर शास्त्रोक्त कृच्छ्र चान्द्रायण आदि तपस्याएं, स्तोत्रपाठ, नामजप, नामोपासना आदि भी समझने चाहिये। योगका उपकारी होनेके कारण योग और अनुष्ठानरूप होनेसे क्रिया—इन दोनों शब्दोंका व्यवहार क्रियायोगके लिये किया जाता है।

सांख्यदर्शनकी ही तरह योगदर्शनके भी चार व्यूह हैं। वे चारों ये हैं,—हेय (संसार या रोग), हेय-हेतु, (संसारहेतु या रोगहेतु), हान (मोक्ष या आरोग्य) और हानोपाय, (मोक्षहेतु या भैषज्य)। दुःखमय होनेके कारण संसार हेय है, प्रकृति या प्रधान और

कारण और परिणाम

पुरुषका संयोग हेयहेतु है, प्रकृति-पुरुषके संयोगकी निवृत्ति हान है और विवेकज्ञान हानोपाय या हानका कारण है। कारण ही पुरुषका बन्धनमोक्ष कराते हैं।

पातञ्जल दर्शनके भाष्यकार कारणके नौ विभाग करते हैं,—उत्पत्तिकारण, स्थितिकारण, अभिव्यक्तिकारण, विकारकारण, प्रत्ययकारण, प्राप्तिकारण, वियोगकारण, अन्यत्वकारण और धृतिकारण। विज्ञान या वृत्तिका उत्पत्तिकारण मन है। मनका स्थितिकारण पुरुषार्थ और शरीरका स्थितिकारण आहार है। रूपका अभिव्यक्तिकारण आलोक है। मनका अन्य विषयोंमें गमन विकार-कारण है और पाप पदार्थका विकारकारण अग्नि है। अग्निका प्रत्ययकारण धूमज्ञान है। योगाङ्गोंका अनुष्ठान विवेक-ज्ञानका प्राप्ति-कारण है। सुखका दुःख वियोगकारण है। सोनार सोनेका अन्यत्वकारण है ; क्योंकि, वह जब जीमें आता है, तब वलयको कुण्डल और कुण्डलको वलय बना देता—सोनेको अन्य प्रकारका कर देता है। इन्द्रियोंका धृतिकारण शरीर है। स्थावर, जङ्गम आदि भी परस्परके धृतिकारण हैं ; क्योंकि, पशु पक्षी आदि जङ्गमपदार्थों और फल, मूल आदि स्थावर पदार्थोंका भक्षण कर मनुष्य-शरीर धृत है और मनुष्यादिका शरीर भक्षण कर व्याघ्रादिका शरीर धृत या रक्षित है। इधर मनुष्यके रुधिर आदिका खाद स्थावरका परिपोषण करता है। इस तरह पातञ्जल दर्शनके सिद्धा-न्तानुसार सारी वस्तुओंमें सारी शक्तियाँ हैं। इसलिये सारी वस्तुएँ समस्तात्मक हैं। इसी कारण देश, कालके अनुसार

किसी-किसी वस्तुमें अपूर्व शक्तिका विकास देखा जाता है। इस विकासको देखकर सहज अनुमान किया जा सकता है कि, विकसित पदार्थ नूतन वस्तुमें बदला है।

अवस्थान्तरप्राप्ति या परिवर्त्तनका परिणाम नाम है। यह तीन प्रकारका है,—धर्मपरिणाम, लक्षणपरिणाम और अवस्थापरिणाम। पृथिवीसे घड़ा बनना धर्मपरिणाम कहाता है। घड़ा पहले भविष्य समयमें था, अब वर्त्तमान समयमें आ गया—यह आगमन ही लक्षणपरिणाम कहा जाता है। जब यह घड़ा भूत या पुराने समयमें चला जायगा, तब उसकी अवस्था बदलनेका नाम अवस्थापरिणाम है।

यह विशाल विश्व त्रिगुणात्मक है और तीनों गुण परिवर्त्तनशील हैं; क्षणभर भी वे परिणाम-हीन नहीं होते। परन्तु एक बात अवश्य है कि, इस परिणाम पर सदा किसीका लक्ष्य नहीं जाता। पातञ्जल दर्शन कहता है कि, कपड़ा प्रतिक्षण पुराना होता है; परन्तु जब वह अत्यन्त पुराना हो जाता है, तभी उसपर दृष्टि जाती है, प्रतिक्षण नहीं। इस दर्शनके मतसे वास्तवमें सब परिणाम एक ही हैं। किन्तु धर्म और धर्मीके भेदके ख्यालसे इनके तीन प्रकार प्रचलित हैं।

ऐश्वर्य या सिद्धियाँ और उनकी प्राप्ति

अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, वशित्व, ईशित्व और यत्रकामावसायित्व ये महासिद्धियाँ या योगशास्त्रके आठ ऐश्वर्य हैं। ऐश्वर्य शब्दका अर्थ है क्षमता; इसलिये इनका एक क्षमता-

सिद्धि भी नाम है। अणिमाकी सिद्धि प्राप्त होने पर विशालसे विशाल शरीर भी अणुके समान बनाया जा सकता है। लघिमासे रूईकी अपेक्षा भी हल्का होनेकी शक्ति आ जाती है। महिमाकी सिद्धि हो जाने पर पर्वत आदिके समान होनेकी शक्ति आ जाती है। इसीका एक नाम गरिमा भी है। प्राप्तिसे: दूरकी वस्तु भी मँगायी जानेकी सामर्थ्य आ जाती है। प्राकाम्यसे जिस क्षणमें जिस किसी वस्तुको पानेकी इच्छा होते ही उसे मँगाया जा सकता है। वशित्वसे भूत, भौतिक, सब पदार्थोंको वशीभूत करनेकी सामर्थ्य आ जाती है। ईशित्वसे सभी भूतोंपर प्रभुता करनेकी शक्ति आ जाती है। यत्रकामावसायित्वका अर्थ सत्य-संकल्पता है। इसके द्वारा जिस किसी वस्तुको चाहे जिस शक्तिसे सम्पन्न करनेकी अभिलाषा होते ही वह वस्तु उससे युक्त हो जाती है। इस शक्तिके प्राप्त हो जाने पर योगी अमृतको भी विष और विषको भी अमृत बना सकता है। यहाँ यह बात भी ध्यानमें रखनेकी है कि, इन सब सिद्धियोंसे अपूर्व शक्ति मिल जाने पर भी योगियोंके हकमें ये ग्राह्य नहीं हैं ; क्योंकि, ये समाधि-पथमें उपद्रव हैं। इनके फन्देमें पड़ कर योगीको अहङ्कार हो जाता है, जिससे कैवल्य मिलनेमें बाधा पहुँचती है। इसलिये मोक्षाभिलाषीको इनसे बचे रहना चाहिये।

प्रत्येक भूतकी पाँच अवस्थाएँ होती हैं, स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय और अर्थवत्व। पृथिवीका जो बाहरी आकार देखा जाता है, वह उसकी स्थूलावस्था, उसका काठिन्य-भाव स्वरूपावस्था, गन्ध

सूक्ष्मावस्था, तीनों गुणोंके धर्मोंकी अनुवृत्ति अर्थात् प्रकाश, प्रवृत्ति और नियमन अन्वयावस्था और योगदान अर्थवत्वावस्था है। इसी तरह अन्य चारों भूतोंकी भी ये पाँचों अवस्थाएं हैं। इन सब अवस्थाओंमें चित्त लगाने या संयम करनेसे भूतजय हो जाती है। यदि संयम द्वारा भूतोंका स्थूलरूप जय किया जाय तो, पहलेकी चार महासिद्धियाँ, स्वरूपावस्था जय की जाय तो प्राकाम्य, सूक्ष्म रूप विजित किया जाय, तो वशित्व, अन्वय रूपको जीत लेने पर ईशित्व और अर्थवत्वको विजित कर लेने पर यत्रकामावसायित्व प्राप्त होते हैं।

अणिमा आदि ऐश्वर्योंकी प्राप्तिके साथ ही साथ भूतजयी योगीको और दो सिद्धियाँ मिलती हैं। पहली कायसम्पत्की सिद्धता और दूसरी कायिक धर्मकी दृढ़ता। पहली सिद्धिसे शरीर वीर्यशाली और इन्द्रियाँ सतेज रहतीं तथा दूसरीसे शरीरकी शोभा और धैर्यशालिता होती है। भूतजयके बाद ही इन्द्रिय-जय और इसके बाद मनोजय होती है। यथास्थान इस बातका विस्तार किया जायगा।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि (सम्प्रज्ञात), ये आठ असम्प्रज्ञात, निर्विकल्प समाधि या नीर्बीज समाधि नामक मुख्य योगके अङ्ग कहे जाते हैं। इन्हींसे मुख्य योगकी प्राप्ति होती है; इसलिये इनका समूह ही एक नाम अष्टाङ्ग भी है। इनमेंसे कोई-कोई योगके साक्षात् कारण और कोई-कोई

योगके मुख्य आठ अङ्ग

परम्परा-सम्बन्धसे कारण हैं। इन आठोंका योगदर्शनमें नीचे लिखी रीतिसे लक्षण-निर्देश कथित है।

अहिंसा, सत्य, चौर्यवर्जन या अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (एक तरहकी निस्पृहता), इन पाँच तरहके कार्योंका नाम यम है। चित्तको हिंसा-शून्य कर देनेसे योगाभ्यासीके पास भयंकरसे भयंकर हिंस्र जन्तु भी नहीं जा सकता। यदि जाय भी, तो योगीको प्रेमकी दृष्टिसे देखेगा। इसी कारण योगी लोग तपोवनोंमें निःशंक पड़े रहते हैं और हिंस्र जीव उनके पास शान्त होकर अवस्थान करते हैं। सत्यका अभ्यास कर लेने पर योगी जो कुछ कहेगा, वह सत्य ही होगा। शास्त्रोंमें तो इतनी दूरतक लिखा है कि, यदि सत्यनिष्ठ योगी वन्ध्याकी पुत्रोत्पत्तिकी बात कहे, तो वह भी सत्य ही निकलेगी। अस्तेयका अभ्यास करनेसे किसी भी पदार्थका योगीको अभाव नहीं रहता; उसे बिना माँगे ही मोती मिल जाता है। वीर्य-रक्षा करने या ब्रह्मचारी होनेपर अद्भुत शक्ति मिल जाती है। ब्रह्मचारी योगी जिसे जो उपदेश देता है, वह सफल हो जाता है। अपरिग्रह-वृत्तिके स्थिर हो जाने पर योगीको अतीत और भविष्य जन्मोंकी बात मालूम हो जाती है। एक तरह उसके सामने कुछ अज्ञेय नहीं रह जाता।

भीतरी और बाहरी शुद्धि, सन्तोष, तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वरचिन्ता आदि कार्योंका नाम नियम है। शुद्धि या शौच द्वारा दूसरेकी सङ्ग-वासना विनष्ट होती और अपने शरीरकी तुच्छताका ज्ञान हो जाता है। शौचका पूरा पूरा अभ्यास कर लेने पर मल-

मूत्र-मय शरीरके प्रति कोई आसक्ति नहीं रहती और न स्त्री आदिके शरीर-संसर्गकी अभिलाषा ही रह जाती है। भीतरी शुद्धि कर लेने पर सुप्रसन्नता, एकाग्रता और इन्द्रियजयकी क्षमता आ जाती है। पूरी शुद्धि हो जानेपर अन्तःकरणमें एक अपूर्व प्रकाश उत्पन्न हो जाता है, जिससे वह बराबर परितृप्त रहता है। सन्तोष के सिद्ध हो जाने पर योगीको एक विलक्षण सुख मिलता है। यह सुख विषय-सुखसे बहुत चढ़ा-बढ़ा है। तपस्या दृढ़ हो जानेपर शरीर, मनके अज्ञानका आवरण या पर्दा हट जाता है तथा तपस्वीके वशमें मन और शरीर हो जाता है। वह इच्छानुसार अपने शरीरको छोटा-बड़ा भी बना सकता है। स्वाध्याय द्वारा योगी जब चाहे, इष्टदेवताका दर्शन कर लेता है। ईश्वरचिन्तनके दृढ़ हो जानेपर बिना किसी सहायताके योगीको समाधि प्राप्त हो सकती है। शास्त्रोंका सिद्धान्त है कि, ईश्वरके प्रणिधान या चिन्तामें परिपक्व योगी यदि किसी योगाङ्गका अनुष्ठान नहीं करे, तो भी उसे निर्विकल्प समाधि और मोक्षकी प्राप्ति हो सकती है।

आसन

जिससे शरीर और मन निश्चल रह सके और किसी तरहका आयास न हो, उसका नाम आसन है। योगमें आसन प्रधान-आधार है। अतः प्रत्येक योगीको आसन-ज्ञान प्राप्त करना परमावश्यक है। जैसे चौरासी लाख जीव हैं, वैसे ही आसन भी चौरासी लाख हैं। इनमें चौरासी आसन प्रधान हैं। परन्तु किसी किसी योगीकी रायमें मर्त्यलोक वालोंके लिये ३२ आसन ही उपयोगी हैं। उनके नाम ये हैं :—

१ सिद्धासन, २ पद्मासन, ३ भद्रासन, ४ मुक्तासन, ५ वज्रा-सन, ६ स्वस्तिकासन, ७ सिंहासन, ८ गोमुखासन, ६ वीरासन, १० धनुरासन, ११ मृतासन, १२ गुप्तासन, १३ मत्स्यासन, १४ मत्स्येन्द्रासन, १५ गोरक्षासन, १६ पश्चिमोत्तानासन, १७उत्कटासन, १८ संकटासन, १६ मयूरासन, २० कुक्कुटासन, २१ कूर्मासन,२२ उत्तानकूर्मकासन, २३ उत्तानमयूरासन, २४ वृक्षासन, २५ मण्डूका-सन, २६ गरुड़ासन, २७ वृष्णासन, २८ शलभासन, २६ मकरा-सन, ३० उष्ट्रासन, ३१ भुजङ्गासन, ३२ योगासन ।

घेरण्डसंहितामें इनके इस तरह लक्षणादि लिखे हैं । १ सिद्धा-सन—जिस आसनसे ब्रह्मचारी एक गुल्फ (पादग्रन्थि या पादमूल) को गुदा और लिङ्गके बीच रखकर और दूसरे गुल्फको उपस्थ या लिङ्गेन्द्रियके ऊपर रखकर और हृदयके पास चिबुकको रखकर भौंहोंके बीचको देखते हुए ध्यान लगाता है, उसे सिद्धासन कहा जाता है । कुछ योगियोंका सिद्धान्त है कि, इस आसनमें एक पादमूलसे गुदेन्द्रिय और दूसरेसे उपेन्द्रिय दबा कर ऊपर सिर उठाये दोनों भौंहोंके बीच हिस्सेको देखा जाता है । जो हो, परन्तु इस आसनका सब आसनोंसे अधिक महत्व माना गया है ।

२ पद्मासन—इसके बद्धपद्मासन और मुक्तपद्मासन नामके दो भेद हैं । बद्धपद्मासनमें बायीं जाँघ पर दाहिना चरण और दाहनी जाँघ पर बायाँ चरण रख कर तथा पीठकी ओर से हाथ घुमाकर बायें हाथसे बायें पैर का अंगूठा और दाहिने हाथसे दाहिने पैरका अँगूठा पकड़ कर हृदयके ऊपर चिबुक रखते हुए

नाकके अगले हिस्सेको देखा जाता है। जठराग्निकी वृद्धि और व्याधि-विनाशके लिये यह आसन अत्यन्त उपयोगी है। मुक्त-पद्मासनमें बायीं जांघपर दाहिना चरण और दाहिनी जांघपर बायाँ चरण रखकर दोनों चरणोंके ऊपर दोनों हथेलियोंको रखा जाता है। इसके रूपमें मतभेद भी है।

३ भद्रासन—जिस आसनसे गुदेन्द्रियके नीचे दोनों चरणोंके तालु उलटकर और पीठकी ओरसे दोनों पैरोंके अँगूठोंको पकड़ कर नाकका अगला भाग देखा जाता है, उसका नाम भद्रासन है।

४मुक्तासन—इस आसनमें गुह्य-मूलमें बायें गुल्फ और उसके ऊपर दक्षिणपादमूल रख कर गर्दन और सिर निश्चल रखते हुए ध्यान किया जाता है।

५ वज्रासन—इसमें दोनों चरणोंको दोनों नितम्बोंके नीचे रख कर ध्यान किया जाता है।

६ स्वस्तिकासन—इसका एक नाम सुखासन भी है। दोनों जानुओं और जाँघोंके बीच दोनों पदतलोंको रखकर इस आसनमें ध्यान किया जाता है। त्रिकोणकृति होनेके कारण इसका नाम स्वस्तिकासन भी है।

७ सिंहासन—जिसमें अण्डकोषके नीचेसे दोनों गुल्फोंसे उलटे करके उनका कुछ हिस्सा बाहर निकाल कर और दोनों जानुओंको पृथ्वीमें रखकर सिर ऊँचा किया जाता है, उसे सिंहासन कहा जाता है।

८ गोमुखासन—इस आसनमें दोनों चरणोंको दोनों नितम्बों के पास उलटकर सिर ऊपर उठाये रहना पड़ता है।

९ वीरासन—इसमें एक चरणतलको एक जाँघके नीचे रखकर दूसरे चरणको दूरतक पीछे फेंक देना होता है।

१० धनुरासन—इस आसनमें दोनों पैरोंको खूब पसारकर दोनों हाथोंसे दोनों चरणोंके अँगूठोंको पकड़ा जाता है। किसी किसीकी रायमें एक दम पेटके बल लेटकर पीठकी ओरसे दोनों हाथोंसे अँगूठोंको पकड़ा जाता है।

११ मृतासन या शवासन—इसमें मुर्देकी तरह चित लेटा जाता है।

१२ गुप्तासन—इसमें दोनों जानुओंके बीच दोनों चरण छिपाकर रखे जाते और दोनों चरणोंके ऊपर गुह्यदेश रखा जाता है।

१३ मत्स्यासन—इसमें मुक्तपद्मासन लगाकर और दोनों कुर्परों (केहुनियों) से सिर पकड़ कर चित सोया जाता है।

१४ मत्स्येन्द्रासन—इसमें पहले पेटको नरम बना दिया जाता है। बाद बाँये पैरको दक्षिण जानुपर रख दिया जाता है। इसके अनन्तर दक्षिण केहुनी और दाहिने हाथके मुँहको उस पैरके ऊपर रख दिया जाता है। इस आसनमें दोनों भौंहोंका मध्य भाग देखा जाता है।

१५ गोरक्षासन—इसमें जाँघों और जानुओंके बीच दोनों पैरोंको चित रखकर और दोनों गुल्फोंके ऊपर दोनों हाथोंके तालु-

ओंको उन पर चित रखकर तथा गर्दनको सिकोड़ कर नाकका अगला अंश देखा जाता है।

१६ पश्चिमोत्तानासन—इसमें दोनों पैर खूब फैलाकर और दोनों हाथोंसे चरणतल पकड़कर दोनों जाँघोंके बीच सिर रखना पड़ता है। किसी किसीकी रायमें इसीका नाम उग्रासन भी है। किसी-किसीकी रायमें इसमें जाँघोंके ऊपर ही सिर रखा जाता है।

१७ उत्कटासन—इसमें केवल पैरके दोनों अँगूठोंको भूमिमें दवाकर और दोनों एड़ियोंके ऊपर गुह्य देशको रखकर ध्यान किया जाता है।

१८ संकटासन—इसमें वायाँ पैर और वायीं जङ्घा पृथ्वीपर रख कर और दाहिने चरणसे पूरे वाँये चरणको छिपा कर तथा दोनों हाथ दोनों घुटनों पर रखकर ध्यान किया जाता है।

१९ मयूरासन—इसमें दोनों हाथोंसे जमीन पकड़ कर शरीरके पिछले भागको आकाशमें उठाया जाता है।

२० कुक्कुटासन—इसमें किसी मञ्च या किसी ऊपरी स्थलमें मुक्तासन लगाकर दोनों जाँघों और जानुओं (घुटनों) के बीच हाथका अवलम्बन करते हुए दोनों केहुनियोंके वल ध्यान लगाया जाता है।

२१ कूर्मासन—इसमें अण्डकोषके नीचे दोनों गुल्फोंको उलटे रखकर ग्रीवा, मस्तक और शरीरको सरल रखा जाता है।

२२ उत्तानकूर्मासन—इसमें कुक्कुटासन होकर दोनों हाथोंसे कन्धर धारण करते हुए कछुएकी तरह उत्तान रहा जाता है।

२३ मण्डूकासन—इसमें दोनों पैरोंको पीछे करके उनके दोनों अँगूठे परस्परसें मिलाते हुए घुटनोंके वल स्थिर रहा जाता है।

२४ उत्तानमण्डूकासन—इसमें पहले मण्डूकासन होकर दोनों केहुनियोंसे सिर पकड़ कर मेढ़ककी तरह उतान पड़ा रहा जाता है।

२५ वृक्षासन—इसमें वायें नितम्बके नीचे दाहिना पैर रखकर वायें पैर पर खड़ा रहा जाता है।

२६ गरुड़ासन—इसमें चरण और घुटनेके वल वैठ कर तथा दोनों घुटनोंके ऊपर दोनों हथेलियाँ रखकर ध्यान लगाया जाता है।

२७ वृपासन—इसमें दाहिने गुल्फके ऊपर गुह्यदेश रखकर और इसकी वायीं ओर वायाँ पैर रखकर ध्यान किया जाता है।

२८ शलभासन—इसमें अधोमुख सोकर दोनों हाथोंसे हृदय को अवलम्बन कर करतल द्वारा भूमिपर स्थित होना चाहिये।

२९ मकरासन—इसमें अधोमुख सोकर भूमिमें वक्षःस्थल स्थापित करते हुए पहले दोनों हाथ पसार कर, इनसे मस्तक धारण किया जाता है।

३० उष्ट्रासन—इसमें नीचे मुँह सोकर, दोनों पैर पीठ पर लाकर, दोनों हाथोंसे दोनों पैर पकड़कर उदर तथा मुँह सिकोड़े जाते हैं।

३१ भुजङ्गासन—इसका एक नाम भुजगासन भी है। पैरोंके अँगूठोंसे लेकर नाभितक शरीर पृथ्वी पर रख कर दोनों हाथोंसे पृथ्वीका अवलम्बन करते हुए सिर ऊपर उठाया जाता है।

३२ योगासन—इसमें दोनों चरण चित कर, घुटनोंके वल होकर और दोनों हाथ ऊपर रख कर, पूरक द्वारा वायु खींच कर कुम्भक करते हुए नासिकाका अग्रभाग देखा जाता है। इस आसनकी योगशास्त्रमें वड़ी प्रशंसा की गयी है।

अत्यन्त आवश्यक समझ कर इन आसनोंका यहाँ विवरण लिखा गया है। वहुत कुछ सोच-सोच कर ये लिखे गये हैं ; परन्तु हमारा विश्वास है कि, विना गुरुमुखसे सीखे इन आसनोंका अभ्यास करने पर भय वना रहेगा। यों तो, योगकी सभी वातें गुरु-मुखसे ही सीखनी चाहिये ; परन्तु आसन और प्राणायाम अपनी खुशीसे कभी नहीं करने चाहिये।

प्राणायाम

श्वास-प्रश्वासकी गतिके विच्छेदका नाम प्राणायाम है। नाकसे जो वायु निकाली जाती है, वह रेचक, जो भीतर खींची जाती है, वह पूरक और जो रोकी जाती है, उसका नाम कुम्भक है। किसी-किसीके मतमें कनिष्ठा, अनामिका और अङ्गुष्ठ द्वारा जो नासापुट दवानेकी विधि है, उसीका नाम प्राणायाम है। प्राणायामके समय तर्जनी और मध्यमा अङ्गुलियाँ नाकपर नहीं लगायी जातीं। चार वार मन्त्र पढ़ कर पूरक, १६ वार कुम्भक और ८ वार रेचक किया जाता है या जितनी वार मन्त्र पढ़ कर पूरक किया जाता है, उससे चौगुना विशेष कुम्भक और दुगुना अधिक रेचक किया जाता है।

प्राणायाम दो तरहका होता है, एक सगर्भ और दूसरा निर्गर्भ। जो प्राणायाम मन्त्र द्वारा किया जाता है, वह सगभ

और जो मात्रा द्वारा किया जाता है, वह निर्गर्भ कहा जाता है। पहले कनिष्ठा और अनामिकाको बायें नासापुट पर और अँगूठेको दाहिने नासापुटपर रखना चाहिये। पश्चात् जो देवता इष्ट हों, उनके मन्त्रको पढ़ कर पूरकसे प्राणायाम प्रारम्भ करना चाहिये।

वैदिक और तान्त्रिक, दोनों सन्ध्याओंमें प्राणायामकी विधि है। तान्त्रिक सन्ध्यामें प्राणायाम करनेके लिये चारों वर्णोंका अधिकार है। किसी-किसी शास्त्रमें यह भी लिखा है कि, विना प्राणायामके सन्ध्या निष्फल होती है।

पूर्वोक्त आसनोंके सिद्ध हो जाने पर ही प्राणायाममें विशेष उन्नति होती है। प्राणायाम करते समय कोमल कुश, उसके ऊपर मृगचर्म और सबसे ऊपर विमल वस्त्रका आसन रहना आवश्यक वताया गया है। इसके लिये स्थान भी निरुपद्रव, निर्जन और फलमूल आदिसे सुसम्पन्न रहना चाहिये। कई आचार्योंके खयालसे किसी एक पवित्र स्थान, नदी-तीर या वनमें एक पर्णकुटी वनाकर ही प्राणायाम करना चाहिये। पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके प्राणायाम करना चाहिये। इसका अभ्यास करते समय सिर, गर्दन, देह, मन आदि सब निश्चल रहने चाहिये। ध्यानके साथ नाकके अगले भागपर दृष्टि रहनी चाहिये।

योगशास्त्रमें इसकी वड़ी प्रशंसा है। कई स्थानों पर इस आशयके वचन हैं कि, 'प्राणायामके समान कोई दूसरा वल नहीं है वास्तवमें प्राणायाम करनेसे वड़ा लाभ है। सारी इन्द्रियोंके कार्य प्राणोंके ही आधीन हैं। प्राण ही सारी देहके यन्त्रोंका परिचालन

करते हैं। प्रत्येक इन्द्रियकी गति, बल और स्वभाव सुचारु बनाना प्राणोंका ही काम है। प्राण ही खाद्य पदार्थको पका कर रस, रक्त, मांस, वीर्य आदि तय्यार करते हैं। प्राण ही नाड़ी-चक्र और मनके परिचालक तथा प्राण ही मनश्चांचल्यके प्रधान कारण हैं। प्राणोंके चलनेपर ही मनका चलना और उनके निरोध पर उसकी स्थिरता होती है। प्राणोंके काबूमें न रहनेके कारण ही मन और अन्तःकरण सदोष हो जाते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि सभी प्राणगतिकी विषमताके कारण ही पैदा होते हैं। इसलिये यह समझ लेना बहुत ही आसान है कि, यदि प्राण निरुद्ध और विशुद्ध हो जायँ, तो मन निरुद्ध और अन्तःकरण विशुद्ध हो जायँगे। यही कारण है कि, महर्षियोंने, समाधिके लिये, एक प्रधान उपाय प्राणायाम करना बताया है। यह भी कह देना उचित है कि, यम, नियम और आसनके सिद्ध हुए बिना प्राणायाम सिद्ध नहीं होता; उलटे उसका अभ्यास करनेसे हानि होनेकी सम्भावना रहती है।

योगशास्त्रके सिद्धान्तानुसार प्राणायाम-शिक्षार्थीको पहले गुरुके पास जाकर प्राणायामका अभ्यास करना चाहिये। विधि और गुरुके कथनानुसार अभ्यास करनेसे धीरे-धीरे योगाभ्यासी साधन-मार्गमें अग्रसर होता है, जिससे रोग आदि उसके पास फटकने भी नहीं पाते। किन्तु हाँ, अपने मनसे प्राणवायुका निरोध करनेसे देहके रोमकूप फट जाते और कुष्ठरोग हो जाता है।

स्वभावतः प्राणवायु देहसे बारह अङ्गुल बाहर जाती है। परन्तु गानेके समय सोलह अङ्गुल, भोजनके समय बीस, दौड़नेके

समय चौवीस, सोनेके समय तीस और मैथुनके समय छत्तीस अङ्गुल तक जाती है। योगी यदि सदा स्वाभाविक रूपमें प्राण-वायुको रख सके, तो योगीकी आयु बढ़ती है; क्योंकि जितना ही अधिक प्राण-वायुका गमन होता है, उतनी ही आयु क्षीण होती है। योगशास्त्रके नियमानुसार कभी भी वायुको अस्वाभाविक अर्थात् बारह अङ्गुलसे विशेष नहीं चलने देना चाहिये। उदररोगीके लिये तो, प्राणायाम ब्रह्मास्त्र ही है।

वृद्ध, व्याधिपीड़ित, दुर्बल, असहिष्णु, निस्तेज, गृहवासी (मोहविजड़ित), निरुत्साही, निर्वीर्य आदिको प्राणायाम करनेमें बड़ी ही सावधानता रखनी चाहिये। किशोर, मध्यवीर्य, मध्योत्साही, मध्यमति और अनभ्यासी पुरुषको भी सावधानीसे प्राणायामका अभ्यास करना चाहिये। पवित्रात्मा, सत्यवादी, ब्रह्मचारी, क्षमाशील, शान्तस्वभाव, नीरोगी, धीर, शास्त्राभ्यासी और योगप्रेमीको, प्राणायामका अभ्यास करनेपर, शीघ्र सफलता मिलती है। जो स्वभावतः बलशाली, जितेन्द्रिय, मनोबली, बालब्रह्मचारी, दयालु, साधुसेवी, आध्यात्मप्रेमी और विद्वान् हैं, उन्हें अवश्य प्राणायाम करना चाहिये; क्योंकि, ऐसे पुरुषको शीघ्र समाधिकी प्राप्ति होनेकी सम्भावना रहती है।

प्रत्याहार, धारणा और ध्यान

बाहरी विषयोंसे इन्द्रियोंको खींचकर उनकी विषयासक्तिको विनष्ट करना प्रत्याहार कहाता है। जिस समय रूपके ऊपर नेत्र पतित हो—उस पर आसक्त हो, उसी समय उसे रूपसे हटा कर

अन्तःकरणके सिपुर्द कर देनेका नाम प्रत्याहरण हैं। प्रत्याहार में नेत्र रूपसे, कर्ण शब्दसे, नासिका गन्धसे, त्वचा स्पर्शसे और जिह्वा रससे मनकी आसक्ति हटाती है। फलतः प्रत्याहारमें सारी इन्द्रियाँ अपने अपने विषयोंको छोड़कर, अविकृत रूपमें, चित्तके अनुगत रखनी पड़ती हैं। प्रत्याहारके सिद्ध होने पर सब इन्द्रियाँ वशीभूत हो जाती हैं। प्रत्याहारका पूरा-पूरा अभ्यास हो जाने पर कोई भी इन्द्रिय अपने मनोहरसे मनोहर विषयका भी परित्याग कर शान्त हो सकती है। ऐसी अवस्था प्राप्त हो जानेपर समाधि-दशामें पहुँचना अत्यन्त सरल हो जाता है।

किसीके हाथमें प्याला भर तेल देकर उसे कहा जाय कि, 'खूब शीघ्रतासे दौड़ो और इस बात पर पूरा खयाल रखो कि, एक बूँद भी तेल न गिरने पावे।' प्याला लेकर दौड़ने वाले मनुष्यको जितनी सावधानीकी आवश्यकता पड़ती है, उतनी ही सावधानता प्रत्याहारमें भी रखनी पड़ती है। यह बात सच्ची है कि, पूरी सावधानीके विना प्रत्याहार-सिद्ध नहीं मिलती। यह बात भी ध्यानमें रखनेकी है कि, योगके यम, नियम, आसन और प्राणायामके सिद्ध हुए विना यह प्रत्याहार सिद्ध नहीं होनेका है।

ध्यान करनेवाले विषयमें अविचल रूपसे मनको लगा देनेका नाम धारणा है। इसका स्पष्ट लक्षण यह है, जब कि चित्तका बाहरी विषयोंमें जरा भी लक्ष्य नहीं रहता, वह केवल एक लक्ष्यमें डूबा रहता है, वह ठीक उसी तरह निश्चल रहता है, जैसे निर्वातदीपक; जिसमें ऐसे ही रूपका चित्त एकमात्र ध्येय वस्तुमें अवस्थित रहता

है, उसका नाम धारणा है। पहले ईश्वर या किसी एक अभीष्ट वस्तुमें मनको लगानेकी चेष्टा की जाती है। बाद चित्तकी सारी वृत्तियोंको भी उसी एक पदार्थमें लगाया जाता है। जिस समय सारी वृत्तियाँ एक ध्येय वस्तुमें लग जाती हैं, जरा भी चञ्चल नहीं होतीं, उसी समय प्रकृत धारणाका उदय होता है। प्रत्याहारका खूब अभ्यास कर लेने पर ही धारणाका अभ्यास करना चाहिये। साथ ही यह बात भी ध्यानमें रखनी चाहिये कि, पूरी तरह प्राणायाम-क्रियाके हस्तगत न होनेपर धारणाकी सिद्धि नहीं होती। इसीसे धारणाका अभ्यास करनेके लिये सबसे पहले प्राणायामका अभ्यास कर लिया जाता है। इस धारणाके सिद्ध हो जानेपर चित्तमें एकतानता आने लगती है। भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाशकी धारणाके क्रमशः ये नाम, कई ग्रन्थोंमें, पाये जाते हैं,— स्तम्भनी, प्लावनी, शोधनी, भ्रामनी और शमनी। "काशी-खण्ड" में इन सबका विस्तृत विवरण है।

धारणा करने योग्य पदार्थमें चित्तवृत्तिकी एकतानता या एकाग्रताका नाम ध्यान है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि, जिस पदार्थमें मनुष्य अपने अन्तःकरणकी धारणा कर चुका है, यदि उस पदार्थका ज्ञान मनुष्यके अन्दर प्रवाहरूपसे वह रहा हो, तो उसका नाम ध्यान माना गया है। जिस समय यह ध्यान प्रगाढ़ हो जाता है, उस समय 'मैं ध्यान करने वाला हूँ और मेरे ध्यान करनेकी वस्तु दूसरी है' आदि ज्ञान नहीं रहते और प्रायः चित्तका लोप हो जाता है। इसके बाद ही समाधि मिलती है। असलमें धारणा, ध्यान

और समाधि क्रमशः योगकी प्रथम, द्वितीय और तृतीय अवस्थाएं हैं। इन तीनोंका एक नाम संयम भी है। योगदर्शनके अनुसार ध्यान सिद्ध हो जानेपर सदाके लिये सुख, दुःख, मोह आदि विनष्ट हो जाते हैं। परन्तु सुख आदिका मूल संस्कार नहीं विनष्ट होता। वह केवल समाधि द्वारा ही नष्ट होता है।

तान्त्रिक ग्रन्थोंके अनुसार ब्रह्म और आत्माकी चिन्ताका ही नाम ध्यान है। वह ध्यान दो प्रकारका है, स्वरूप-ध्यान और अरूप-ध्यान। मनकी शान्ति और अरूप-ध्यानकी प्राप्तिके लिये पहले स्वरूप-ध्यान किया जाता है। स्थूल मूर्त्ति आदिका ही ध्यान स्वरूप-ध्यानके नामसे पुकारा जाता है। स्वरूप-ध्यानमें विन्दुध्यान और ज्योतिर्ध्यान भी हैं। अरूपध्यानसे ब्रह्मध्यान या निर्गुण आत्माका ध्यान समझा जाता है। योगशास्त्रमें ध्यानयोगकी खूब महिमा है। जीवनमें सफलता पानेके लिये सदा, सब कार्योंमें, ध्यान आवश्यक है।

ध्यानकी परिपक्व अवस्थामें चित्त, वृत्तियोंके ज्ञानसे, शून्य हो जाता है; वह केवल ध्येय वस्तुमें तदाकार हो जाता है। इसी अवस्थाका नाम समाधि है। समाधि दो तरह की है—एक सम्प्रज्ञात, सविकल्प या सबीज और दूसरी असम्प्रज्ञात, निर्विकल्प या निर्बीज।

समाधि-प्रकरण

समाधिका जो लक्षण ऊपर दिखाया गया है, वह सम्प्रज्ञात समाधिका है,—असम्प्रज्ञातका नहीं। सम्प्रज्ञातमें ही चित्त-ध्येयाकार होता है, असम्प्रज्ञात में तो, वह विलकुल ही विलीन हो जाता

हैं और केवल आत्मतत्त्वका नित्य और विशुद्ध ज्ञान उदित तथा विकसित रहता है।

सम्प्रज्ञात समाधि चार प्रकारकी है,—सवितर्क, सविचार, सानन्द और सास्मित। ईश्वर और पञ्चविंशति तत्त्वोंमेंसे किसी एक स्थूल तत्त्वका अवलम्बन करने पर जब केवल उस तत्त्वका शब्दार्थ ज्ञान रहता है, तब उसे सवितर्क कहा जाता है। जिसमें स्थूल भूतों और एकादश इन्द्रियोंसे अव्यक्त शब्दार्थ ज्ञान और केवल भावना-प्रवाह रहते हैं, उसका नाम सविचार समाधि है। महत्तत्त्व आदि सूक्ष्म वस्तुओंका अवलम्बन कर ध्यान करते करते तदाकार चित्तकी जो वृत्तिधारा बनती है, उसका नाम सानन्द है। 'अहम्' या 'मैं' तत्त्वका ध्यान करते करते तदाकार चित्तकी जो वृत्तिधारा है, उसका नाम सास्मित है। सवितर्क समाधिमें उक्त तीनों समाधियाँ, सविचारमें अन्तकी दो समाधियाँ और सानन्दमें सास्मित समाधि सन्निविष्ट मानी जाती है। सास्मित समाधि में पहलेकी तीनों विलीन हो जाती हैं। ये सभी सावलम्बन कहाती हैं; क्योंकि, सबमें एक-न-एक अवलम्बनकी जरूरत पड़ती है। जिस समय समाधि अवलम्बन-शून्य हो जाती—जिसमें समूची चित्तवृत्तियाँ विलीन हो जाती हैं,—उसका नाम असम्प्रज्ञात समाधि है। असम्प्रज्ञात समाधिमें प्रारब्ध कर्मका और उसके फलका बीज नहीं रहता; परन्तु सम्प्रज्ञातमें रहता है। सम्प्रज्ञात समाधिके प्रवृत्तिज्योति, मधुमती, मधुप्रतीक और विशोक आदि चार भेद और हैं। असम्प्रज्ञात समाधिका कारण "पर वैराग्य" है।

पर वैराग्यमें किसी भी वस्तुतत्त्वकी अभिलाषा नहीं रहती है। कुछ लोगोंका कहना है कि, जिस चित्तमें प्रतिक्षण सैकड़ों विषय आते-जाते रहते हैं, उसका निर्विषय होकर रहना कभी सम्भव नहीं है। इसपर योगी लोग उत्तर देते हैं कि, धारणा, ध्यान करते-करते जब कि, चित्त दो-चार क्षण भी एकाग्र हो जाता हैं, तब प्रबल वैराग्य और अभ्यासके द्वारा उसका बराबरके लिये निर्विषय हो जाना क्या असम्भव है?

योगदर्शन कहता है कि, जैसे स्वच्छ स्फटिक जवाकुसुम आदिके सन्निधान या समीपतासे लाल, पीला बन जाता है, वैसे ही निरुद्ध चित्त विषय-सन्निधानसे विषयाकार हो जाता है; परन्तु वास्तवमें वह निर्विषय या वृत्तिरहित हो सकता है। उसी शान्त चित्तको प्राप्त किया हुआ मनुष्य परमहंस, जीवन्मुक्त या योगी कहाता है।

समाधि-सिद्धि हो जाने पर "ऋतम्भरा" प्रज्ञाका उदय होता है। समाधि द्वारा, चित्तकी निर्मलता होजाने पर जो ज्ञान उदित होता है, उसका नाम ऋतम्भरा प्रज्ञा है। उसके उदय हो जानेपर मिथ्या ज्ञानका लेशमात्र भी नहीं रहता—केवल त्रिकाल सत्यका ज्ञानरहता है। कई शास्त्रोंके मतसे श्रवण, मनन और निदिध्यासन करते-करते भी इस प्रज्ञाका उदय हो जाता है। इस प्रज्ञाके उदय होने पर काम, क्रोध आदिके संस्कार विनष्ट हो जाते हैं और केवल शुद्ध सात्त्विक ज्ञान रहता है। इसके द्वारा क्रोधादि-संस्कारोंका भी सदाके लिये विनाश हो जाता है।

निर्बीज या निर्विकल्प समाधिमें प्रज्ञाके संस्कार भी नहीं रहते। किसी-किसीका मत है कि, "मैं समाधि द्वारा मुक्त हो गया हूं, अमुक समयसे यह समाधि शुरू हुई थी" इत्यादि ज्ञानोंका संस्कार योगीके चित्तमें सदा वना रहता है। योगियोंका कहना है कि, जैसे आगमें पड़कर तिनके जल जाते हैं, वैसे ही समाधि-संस्कार द्वारा पहलेके तृणरूप संस्कार विनष्ट हो जाते हैं। समाधि संस्कार तवतक रहता है, जवतक चित्तकी स्थिति रहती है। चित्तका अस्तित्व निर्विकल्प समाधिमें भी रहता है; परन्तु इसके अन्तमें चित्तका विनाश हो जाता है। चित्तनाश होते ही 'धर्ममेघ' नामकी समाधि होती है, जिससे मुक्ति या मोक्ष हो जाता है या आत्मा अपने रूपमें स्थित हो जाती है। इसी समाधिकी प्राप्ति हो जानेपर अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, पाप, पुण्य, कर्म, अदृष्ट आदि सब विनष्ट हो जाते हैं। शंकराचार्यके मतसे जीवद्दशामें अविद्या आदिका लेश रहता है। इसलिये कुछ लोग जीवन्मुक्तिको गौण मुक्ति मानते हैं। परन्तु कुछ लोग कहते हैं कि, जब कि निर्विकल्प समाधिमें ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय—त्रिपुटीका लय हो जाता है, तव अविद्या आदिका अस्तित्व मानना ठीक नहीं हैं।

कुछ तार्किक कहते हैं कि, सुषुप्ति और समाधि एक ही है; क्योंकि, जैसे सुषुप्तिमें किसी वातका ज्ञान नहीं रहता, वैसे ही समाधिमें भी। परन्तु यह वात ठीक नहीं; क्योंकि अव्यक्त रहने पर भी सुषुप्तिमें अज्ञान, राग, द्वेष आदि वृत्तियोंका अस्तित्व रहता है; किन्तु समाधि प्राप्त होनेपर वृत्ति-सत्ताका लोप हो

जाता है। फलतः सुषुप्ति और समाधिमें आकाश-पातालकासा अन्तर है।

समाधि करते समय चार प्रकारके विघ्न उपस्थित होते हैं। उनके नाम ये हैं,—लय, विक्षेप, कषाय और रसास्वादन। जो वृत्ति अखण्ड आत्मतत्त्वका अवलम्बन करनेमें असमर्थ होकर निराश हो पड़ती है, उसका नाम लय है। ब्रह्मतत्त्व या आत्म-तत्त्वके अवलम्बनमें असमर्थ होकर जो वृत्ति किसी अन्य पदार्थ-का अवलम्बन कर लेती है, उसे विक्षेप कहा जाता है। प्रयत्न द्वारा अन्तःकरणके विशुद्ध हो जानेपर भी जिस वृत्तिसे ब्रह्मतत्त्वकी प्राप्ति नहीं की जा सकती, उसका नाम कषाय है। जो वृत्ति ब्रह्मतत्त्वकी प्राप्तिकी आशा छोड़कर सविकल्प समाधिके आनन्द-रसमें ही निमग्न हो जाती है, उसे रसास्वादन संज्ञा दी गयी है। ये सब निर्विकल्प समाधिके विघ्न हैं।

व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व और अनवस्थितत्व आदि भी समाधिकी प्राप्तिमें जबर्दस्त विघ्न हैं। ज्वरादिको व्याधि, अकर्मण्यताको स्त्यान, योग-क्रियाके सन्देहको संशय, असावधानताको प्रमाद, योगसाधनकी उदासीनताको आलस्य, योगप्रवृत्तिके अभावको अविरति, योगा-ङ्गोंकी भ्रान्तिको भ्रान्तिदर्शन, समाधि-भूमिकी अप्राप्तिको अलब्ध-भूमिकत्व और समाधि-क्रियामें चित्तकी अस्थिरताको अनवस्थितत्व कहा जाता है। इनके सिवाय दुःख, अमनस्कता, अङ्गकम्पन आदि भी समाधि-विघ्न हैं। जो पुरुष-पुङ्गव इन विघ्नोंको हटाकर कैवल्यके

लिये अदम्य उद्योग करते हैं, उनके अन्दर क्रमशः श्रद्धा, वीर्य स्मृति, प्रज्ञा और समाधिका विमल उदय हो जाता है।

पहले ही कहा जा चुका है कि, ध्यान, धारणा और समाधिका एक नाम "संयम' भी है; क्योंकि तीनों ही चित्त-संयम करनेमें सहायक हैं। पदार्थ विशेष में चित्तका संयम करनेसे उसके अन्दर बड़ी बड़ी अलौकिक क्षमताएँ आ जाती हैं। योगदर्शनके तीसरे पादमें इन सब क्षमताओंका विवरण है। लिखा है, किसी भी जीवका वाक्य सुनकर, उस वाक्यके शब्द, अर्थ और ज्ञान पर संयम किया जाय, तो योगी समझ सकता है कि, अमुक जीव अमुक अभिप्रायसे यह शब्द बोला है। यदि चित्तस्थ वासनाका संयम किया जाय, तो पूर्व जन्मकी बातोंका ज्ञान हो जाता है। वक्ताके भाव-भङ्गी पर संयम करनेसे परचित्तका ज्ञान हो जाता है। रूपका संयम करनेसे अन्तर्द्धान होनेकी शक्ति आ जाती है। आयुका संयम करनेसे मरणका ज्ञान हो जाता है। सात्त्विक प्रकाशका संयम करनेसे परमाणु, छिपे हुए रत्न आदि, अत्यन्त दूरस्थित पदार्थ आखोंके सामने नाचने लगते हैं। सूर्यमें संयम करनेसे भूगोल, खगोलका ज्ञान हो जाता है। चन्द्रमामें संयम करने वाला योगी तारा-मण्डलीक स्थान जान जाता है। ध्रुवतारामें संयम करनेसे ताराओंकी गतिका ज्ञान हो जाता है। नाभिके नाड़ी-चक्रका संयम करनेसे शरीरके शिरा आदिका ज्ञान हो जाता है। कण्ठकूपमें संयम करनेवाले

संयम-महिमा

योगीको कभी भूख-प्यास ही नहीं लगती। कपालके भीतर, जहां बुद्धिका आलोक क्षरित होता रहता हैं, ज्योतिका संयम कर लेने पर योगीको सिद्धर्षियोंका दर्शन होने लगता है। अन्तः-करण-प्रतिभामें संयम करनेसे सभी विषयोंका अलौकिक ज्ञान हो जाता है। चित्तका संयम करनेसे अपने चित्तकी वासना और अन्य चित्तोंकी इच्छा आदि वृत्तियाँ जानी जाती हैं। बुद्धि-तत्त्व या जीवभावका संयम करनेसे अपने स्वरूपका ज्ञान हो जाता है। पुरुषमें संयम करनेसे अलौकिक शब्दादि सुने जाते हैं। प्राण, अपान, समान और व्यान नामक वायुओंका निरोधकर उनका संयम करनेसे योगी जल, कण्टक, कर्दम आदि पर यथेच्छ गमन कर सकता हैं। समान वायुका संयम करनेसे योगी अग्निकी भाँति तेजस्वी हो जाता है। आकाश और शब्दके सम्बन्धका संयम करनेसे योगी दिव्य श्रोत्र प्राप्त करता है, जिससे सूक्ष्मसे सूक्ष्म शब्द सुना जा सकता है। आकाश और शरीरके सम्बन्धका संयम करनेसे योगी रूईकी भांति हल्का होकर आकाशमें उड़ सकता है। सात्त्विक चित्तवृत्तिका संयम करनेसे क्लेशों और कर्मोंकी क्षय हो जाती है। पञ्च महा-भूतोंका संयम करनेसे भूतोंपर विजय हो जाती है, जिससे अणिमा आदि आठों ऐश्वर्योंकी प्राप्ति हो जाती है। इन्द्रियोंका संयम करनेसे वे योगीके हाथमें आ जाती हैं, जिससे क्रमशः मन, अहंकार और प्रकृति भी वशमें आ जाती है। इस तरह योगी संयमके बल अद्भुत और अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त कर लेता है।

महर्षि पतञ्जलिके मतसे जिस समय चित्त शुद्ध और योगी परवैराग्यवान् हो जाता है, उस समय उसका दुःख-वीज विनष्ट हो जाता और पुरुषको कैवल्य या मुक्ति मिल जाती है। इसीसे निर्विकल्प समाधिका एक नाम निर्वीज समाधि भी है। इस अवस्थामें चित्तका रहना और न रहना वरावर हो जाता हैं; क्योंकि इस समय चित्तकी समूची वृत्तियाँ विनष्ट तथा उसके धर्माधर्म, कर्माकर्म दग्ध हो गये रहते हैं। जव तक शरीर रहता है, तव तक चित्त जले हुए सूतके सदृश रहता है और शरीरान्त हो जानेपर वह प्रकृतिमें विलीन हो जाता है। उस समय पुरुष केवल या एक रह जाता है। इसीसे इस अवस्थाका नाम कैवल्य है। कैवल्य ही पुरुषका स्वरूपमें अवस्थान है और कैवल्यका नाम ही अन्य शास्त्रोंमें मुक्ति, मोक्ष, निर्वाण और निःश्रेयस आदि हैं। योग-दर्शनके चौथे पादमें कैवल्यका विशेष विवरण है। कैवल्य प्राप्त करना ही योगका परम फल है। सांख्यकी ही तरह योग-दर्शनने भी विवेक-ज्ञानको ही कैवल्यका प्रधान कारण माना है।

कैवल्य

योगदर्शनके सम्बन्धमें जो खास-खास वक्तव्य थे, उनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका। यदि केवल योगकी क्रियाओं और ज्ञेय वातोंका सविशेष ज्ञान प्राप्त करना हो, तो दत्तात्रेय-संहिता, घेरण्ड-संहिता आदि ग्रन्थों-का अवलोकन करना चाहिये। इन संहिता-ओंमें हठयोगका वहुत वढ़िया विवरण है। उल्लिखित वक्तव्योंके

विविध विषय

अतिरिक्त प्रमाण, वेद, सत्कार्यवाद, पदार्थ-विभाग, प्रकृति, पुरुष, महत्तत्व, अहंकार, तन्मात्रा, इन्द्रिय, भूत, सृष्टि, प्राण, काल, दिक्, लय, दुःख, स्वर्ग आदि पर जैसे विचार सांख्यदर्शनके हैं, ठीक वैसे ही योगदर्शनके भी हैं। इसलिये इन विषयोंका अलग-अलग वर्णन करना यहाँ अनावश्यक समझा गया है।

सांख्यदर्शनमें भी योगका उपदेश है; परन्तु वह वैसा ही है; जैसा कि, योगदर्शनमें सांख्यका पदार्थ-विवरण। सांख्यदर्शनकी तरह योगदर्शनमें कहानियाँ और दृष्टान्त नहीं हैं; परन्तु इस दर्शनमें उपदेश-प्रणालीकी सरलता साङ्ख्यसे कम : नहीं है। साङ्ख्यकी तरह बौद्ध-दर्शन, वेदान्त-दर्शन या अन्य किसी दर्शनका योगदर्शनमें खण्डन नहीं है। साङ्ख्यके मतसे साधक कर्म-सन्न्याससे मुक्तिकी ओर अग्रसर होता है; परन्तु योगदर्शनके मतसे चित्तकी वृत्तियोंके समूल विनाशसे। जो हो, परन्तु इसमें तो सन्देह ही नहीं कि, साङ्ख्य और योगके प्रमेय-निरूपणमें पर्याप्त समता है।

भगवान् श्रीकृष्णने "श्रीमद्भगवद्गीता"में कई स्थलोंपर योगकी चर्चा की है। कुछ विद्वानोंकी राय है कि, गीतामें पतञ्जलिके योगका उपदेश नहीं है; उसमें निष्काम कर्मयोगका उपदेश है। गीताके "साङ्ख्ययोगौ पृथग्बालाः", "एकं साङ्ख्यं च योगं च," "सन्न्यासः कर्मयोगश्च," "तपस्विभ्यश्चाधिको योगी," "स मे युक्ततमोमतः" आदि श्लोकोंमें योग शब्दका प्रयोग निष्काम कर्ममें ही

गीता और योगदर्शन

किया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि, कर्मयोगियोंकी यह वात सच्ची है ; परन्तु इसमें भी सन्देह नहीं कि, पातञ्जल योगका भी विवरण गीतामें है। और क्या, एक तरहसे योगके आठों अङ्गोंका वढ़िया वर्णन भी गीतामें है। भगवान् कहते हैं—'अकेले एकान्त स्थानमें वैठकर तथा आशा और परिग्रहको त्याग कर योगीको उचित है कि, वह चित्त-संयमन करते हुए योग-साधन करे।' (गीता, ६।१०) 'योगी पवित्र और समतल स्थानपर यथाक्रम कुश, मृगचर्म और वस्त्रका आसन लगाकर अपना स्थिर आसन जमा ले। इसके वाद् वह चित्त और इन्द्रियोंका संयम तथा मनको एकाग्र कर, आत्मशुद्धिके लिये, योगाभ्यास करे।' गीता) ६।११—१३) योगी शरीर, मस्तक और गर्दनको समान रखकर और चारों ओरसे नेत्रको रोककर एवं उसे नासिकाके अग्रभागपर स्थिर कर, स्थिर भावसे, अवस्थित हो।' 'योगी प्रशान्त, निर्भय, ब्रह्मचर्याभ्यासी और संयतचित्त होकर दृढ़ भावसे भगवान्का चिन्तन करे।' (गीता, ६।१४) 'संकल्पज सभी कामनाओंको पूरी रीतिसे छोड़कर और मन द्वारा सारी इन्द्रियोंको, उनके विषयोंसे हटाकर, योगी योगाभ्यास करे। साथ ही धारणा द्वारा बुद्धिको वशीभूत कर विषय-वैराग्य प्राप्त करे। योगी मनको आत्मामें स्थापित करे और किसी भी विषयकी चिन्ता न करे। चञ्चल मन जहां जहां दौड़ना चाहे, वहां-वहांसे उसे खींचकर आत्मामें विलीन करे।' (गीता ६।४—६) 'जो मुमुक्षु मुनि, वाहरी विषयोंको एकवारगी छोड़ देनेपर, भौंहोंके वीच नेत्र

लगाकर और नाकके भीतर ही प्राण तथा अपान वायुको समान कर एवं इन्द्रियों, मन और बुद्धिको संयत कर इच्छा, भय तथा क्रोधका परित्याग कर देता है, वह जीवन्मुक्त है।' (गीता, ६।२७—२८)

भगवान् कृष्णके इन वचनोंसे स्पष्ट मालूम पड़ता है कि, अष्टाङ्ग योगका महत्त्व वे स्वीकार करते थे और उसका उन्होंने बहुत बढ़िया उपदेश भी दिया था। योगप्रेमियोंको यह बतानेकी आवश्यकता नहीं कि, ऊपरके उदाहरणोंमें भगवान्‌ने आसनसे लेकर समाधि तकका उपदेश दिया है। इसी छठे अध्यायमें आगे चलकर भगवान्‌ने योगफलका निर्देश करते हुए मुक्तिकी चर्चा की है। वहाँ उन्होंने पुरुषको आनन्दरूप माना है। इधर योगदर्शन मुक्त पुरुषको चित्स्वरूप या ज्ञानरूप मानता है। इस भी योगकी अतुल महिमा प्रकट होती है।

जो हो; परन्तु इसमें तो सन्देह ही नहीं कि, मुक्ति और ईश्वर-चिन्तन आदि विषयोंमें गीताके साथ योगदर्शनकी बहुत ही मतभिन्नता है। पातञ्जल दर्शनके अनुसार जीव और ब्रह्म अलग-अलग हैं। निर्बीज समाधिके मिल जाने पर आत्मसाक्षात्कार हो जाता है। योगदर्शनका अध्ययन करनेसे इस बातका पता नहीं चलता कि, निर्विकल्प समाधि मिल जानेपर ईश्वर-प्राप्ति होती है या नहीं। अधिकांश योगके दार्शनिकोंकी रायमें ईश्वर-भक्तिसे भी ईश्वर-प्राप्ति नहीं होती।* इसके विपरीत गीतामें

* योगदर्शन (१।२९) के "ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च।"

योग द्वारा भगवान्‌का साक्षात्कार होना माना गया है। गीता (६।१५) में कहा गया है—'नियतमना योगी आत्माको समाहित करके भगवान्‌में स्थितिरूप और मोक्षप्रधान शान्ति पाता है।' महर्षि याज्ञवल्क्यने भी यही बात कही है। अन्यान्य कई पुराणोंमें भी ईश्वर-प्राप्ति ही योगफल माना गया है।

एक बात विशेष ध्यान देनेकी है। योगसिद्धिके लिये पतञ्जलिने जो उपदेश दिये हैं, उनमें एक साधन "ईश्वर-प्रणिधान" भी है। ईश्वर-प्रणिधानको पतञ्जलिने मुख्य साधन नहीं माना है। फलतः पतञ्जल दर्शनमें ईश्वरका स्थान गौण है। माधवाचार्यने भी यही बात लिखी है।

गीताका सिद्धान्त है कि, विना ईश्वरके योग किसी कामका नहीं और ईश्वरभक्तिविहीन योगी भी सच्चा योगी नहीं। भगवान् कहते हैं—

"योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान् भजते यो मां समे युक्ततमो मतः॥" (गीता, ६।४७)

मतलब यह कि, 'जो योगी भगवान्‌में चित्त लगाकर, श्रद्धाके साथ, उनका भजन करता है, वही श्रेष्ठ योगी है।'

इस सूत्रके अर्थपर ध्यान देनेसे स्पष्ट मालूम पड़ता है कि, ईश्वरप्रणिधानके फलसे व्याधि आदि विघ्न दूर होते, ईश्वर साक्षात्कार नहीं होता। इसकी टीकामें वाचस्पति मिश्रने लिखा है,—"प्रत्यासत्तिस्तु स्वात्मनि साक्षात्कारहेतुर्न परात्मनि।" इस वाक्यसे ईश्वरप्राप्तिकी बात और भी खण्डित हो जाती है।

"मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥" (गीता, ६।३४)

अर्थात् 'मुझमें ही मन अर्पण करो, मेरा ही भजन करो, मेरा ही यजन करो, मुझे ही प्रणाम करो और मुझे ही आधार रखो, तभी—ऐसा योग करने पर ही—मुझे प्राप्त करोगे।'

इन दोनों श्लोकोंसे स्पष्ट विदित हो जाता है कि, गीताके ईश्वर और उनके चिन्तन तथा योगके ईश्वर और उनके चिन्तनमें मतभेद है। यह बात खूब ध्यानमें रखनेकी है।

गीतामें लिखा है, जो अपनी ही तरह सबको देखता है और सुख तथा दुःखको बराबर जानता है, वही योगी है। अन्यान्य शास्त्रोंमें भी योगीका यही लक्षण लिखा हुआ है। किसी-किसीके मतमें तपस्वी, ज्ञानी, कर्मी आदि सबसे योगी ही श्रेष्ठ है।

योगी

योगदर्शनमें, अवस्था-भेदसे, चार प्रकारके योगी माने गये हैं। उनके नाम ये हैं,—प्रथमकल्पिक, मधुभूमिक, प्रज्ञाज्योति और अतिक्रान्तभावनीय। जो योगाभ्यासमें, पहले-पहल, रत हो रहा है, उसका नाम प्रथम-कल्पिक है। यह योगी कुछ सिद्धियाँ भी प्राप्त कर लिया रहता है। इस योगीको ध्यानमें ज्योतिकी प्राप्ति हो जाती है। इसीसे इस योगीकी समाधिका नाम प्रवृत्त-ज्योति है। द्वितीय मधुभूमिक योगी उच्च श्रेणीका होता है। परचित्त आदिका भी इसे ज्ञान रहता है। इसका एक नाम 'ऋतम्भरप्रज्ञ' भी है। इस योगीकी समाधिका नाम मधुमती और ऋतम्भरा भी

है। तृतीय प्रज्ञाज्योति नामक योगी भूतों, इन्द्रियों, मन, महत्तत्त्व और प्रकृति आदि सबपर अपना आधिपत्य विस्तार किये रहता है। इस योगीकी समाधिका नाम मधुप्रतीक रखा गया है। चतुर्थ अतिक्रान्त-भावनीय योगी सर्वज्ञातृत्व और विवेकज्ञान आदि प्राप्त किये रहता है। इस योगीकी समाधिका नाम विशोक है। कितने ही योगियोंका सिद्धान्त है कि, प्रथमावस्थाके योगीको देवदर्शन नहीं होता है। द्वितीय अवस्थाके योगीका चित्त अभी दृढ़ नहीं हुआ रहता ; इस लिये इस योगीको देवता लोग विविध प्रलोभन दिखाते और अपने स्वर्गलोकमें ले जानेकी चेष्टा करते हैं। देवगण, योगीके पास आकर, कहते हैं,—"आप स्वर्गमें रहकर यथेच्छ विहरण करें; यहाँका योग विलक्षण आनन्द देता है ; यहाँ चित्तहारिणी अप्सराएँ रहती हैं ; यहाँका औषध जन्ममृत्युको भी नष्ट करनेवाला है ; यहाँ गगनचारी रथ रहते हैं ; स्वर्गरूप कल्पवृक्ष आपकी सारी अभिलाषाएँ पूरी करेगा।" देवोंका यह प्रलोभन सुनकर, यदि योगी उसमें फँस गया, तो वह योग-भ्रष्ट हो जाता है। जबतक असम्प्रज्ञात समाधि नहीं मिले, तब तक योगीको बड़ेसे बड़े लालचसे भी योगसे मुँह नहीं मोड़ना चाहिये। तृतीय और चतुर्थ अवस्थाके योगी देवोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ हैं ; इस लिये इनके पास देवोंकी एक नहीं चलती। *

इस बातका अन्वेषण करनेसे पता नहीं चलता कि, भारतवर्षमें योगियोंकी उत्पत्ति कबसे हुई है। हिन्दू-शास्त्रोंमें अत्यन्त

* योगदर्शनके तीसरे पादके ५१वें सूत्रका व्यासभाष्य देखिये।

प्राचीन कालके अनेक योगियोंका उल्लेख मिलता है। महर्षि दत्तात्रेय भगवान्के छठे अवतार माने गये हैं। इनके पिता और माताका नाम था अत्रि तथा अनुसूया। ये पहुंचे हुए योगी माने गये हैं। ये आजसे बहुत ही प्राचीन कालमें यहाँ उत्पन्न हुए थे। इन्होंने योग-मार्गका प्रचुर प्रचार किया था। कितने ही, प्रह्लाद आदि, भक्तोंको इन्होंने योगोपदेश भी दिया था। (श्रीमद्-भागवत, १।३)

मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है कि, दत्तात्रेयने, बहुत दिनों तक, एक सरोवरके पास समाधिका अभ्यास किया था। इनकी बनायी हुई "दत्तात्रेय-संहिता"में हठयोग और लययोगका बहुत ही सुन्दर वर्णन है। गुरु गोरक्षनाथने अपनी "गोरक्ष-संहितामें" "दत्तात्रेय-संहिता"की योगपद्धतिका ही अधिक अनुसरण किया है। देवर्षि नारद योगिश्रेष्ठ कहे गये हैं, जिनका सत्ययुगमें आविर्भाव माना जाता है। और क्या, कई पुराणोंमें महादेव जी भी "परम योगी" माने गये हैं, जिनकी जन्मतिथिका कोई समय ही नहीं निश्चित किया जा सकता या यदि किया जाय, तो सृष्टिका आविर्भाव-काल माना जा सकता हैं। इस तरह विचारसे यही अनुमान किया जा सकता है कि, योगदर्शनके सिद्धान्त नित्य हैं या इतने प्राचीन हैं कि, जिनके समयका अनुमान कमसे कम हमारे जैसे मनुष्य नहीं कर सकते।

व्यासभाष्य, योगवार्त्तिक, स्वात्माराम योगीन्द्रकी हठप्रदीपिका, दत्तात्रेयसंहिता, गोरक्षसंहिता, घेरण्डसंहिता आदिमें योगियोंके

योगियोंके कर्त्तव्य

कर्त्तव्योंका निर्देश है। हठप्रदीपिकामें योगियोंको प्रधानतः चार उपदेश दिये गये हैं। प्रथम उपदेशमें बड़े-बड़े योगियोंके नाम, योगके अनुकूल कर्मोंका विवरण, यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदिका वर्णन, योगाधिकारका लक्षण और योगियोंके भोजनका नियम आदि विवेचित हैं। द्वितीय उपदेशमें धौति, वस्ती आदि षट् कर्मों और कुम्भक आदिके लक्षण लिखे गये हैं। तृतीय उपदेशमें दस तरहकी मुद्राओंका वर्णन है। चतुर्थमें समाधि-विषय और अनेक सिद्धावस्थाओंका उल्लेख है।

भोजनके सम्बन्धमें योगियोंके लिये बड़े-बड़े नियम लिखे गये हैं। अल्पाहार ही योगियोंके हेतु पर्याप्त-भोजन-नियम नहीं है; उन्हें अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, उष्ण, हरे शाक, बदरीफल, तैल, तिल, सरसों, मत्स्य, मद्य, बकरीका मांस, शूकरका मांस, दधि, तक्र, हींगु, लशुन आदि भी नहीं खाने चाहिये। मुख्य बात यह समझें कि, योगियोंको केवल गेंहू, चावल, जव, दूध, घी, मक्खन, चीनी, मधु और वन्य फल-मूल खाने चाहिये। जल भी यथासाध्य गङ्गाजल या किसी विशुद्ध निर्झर-निर्झरणीका ही पीना चाहिये। योगशास्त्रके सभी ग्रन्थोंमें सभी विषयोंसे जो त्याज्य विषय माना गया है, वह वीर्यनाश है। योगियोंको कभी स्त्री-संसर्ग नहीं करना चाहिये। यदि कभी, किसी प्राकृतिक कारण-वश, स्वप्नदोष हो जाय, तो उसके लिये भी शास्त्रानुसार योगियोंको प्रायश्चित्त करना चाहिये।

यों तो विशुद्ध शिलापर ही, आसन लगा कर, योगाभ्यास करनेको उत्तम विधि कहा गया है ; परन्तु कई ग्रन्थोंमें मठ बना कर योगाभ्यास करनेकी बात भी लिखी गयी है। मठके लिये लिखा है कि, ऐसा मठ रहना चाहिये, जिसका द्वार-देश छोटा हो, जिसमें कोई छेद न हो, जो न तो ज्यादा बड़ा हो, न छोटा हो, जिसमें प्रतिदिन गोबर लगाया जाता हो और जिसके आसपास योगके विघ्नकारक पदार्थ न हों। मठके बाहर एक मण्डप, एक कूप और एक वेदी रहनी चाहिये। इन सबके बाहर एक प्राचीर रहना चाहिये। योगीको स्वयं चारो ओर झाड़ू देना चाहिये। साथ ही योगीको धूप, धूना और गुग्गुल आदिसे मठको सुवासित रखना चाहिये। इसके अतिरिक्त पद्मासन लगाकर योगाभ्यास करना चाहिये। योग-ग्रन्थोंमें पद्मासन ही की प्रधानता कही गयी है। कहीं-कहीं सिंहा-सनकी भी विशेष प्रशंसा है। योगाभ्यासके समय, किसी किसी ग्रन्थके मतमें, जल और दूधका ही व्यवहार करना उचित है। कहीं कहीं यह भी लिखा है कि, रेचक और पूरक बिना भी कुम्भक किया जा सकता है। केवल कुम्भक करनेसे भी आकाशमें उड़नेकी शक्ति आ जाती है। प्लीहा, कास, कोढ़ आदि दूर करनेके लिये योगीको २५ हाथ लम्बा और ४ अंगुल चौड़ा भींगा वस्त्र, मुँहसे निगल कर, नीचेके रास्तेसे उसे निकालना चाहिये। इसी क्रियाका नाम धौति है। इसके अभ्याससे समस्त शरीर परिष्कृत रहता और कोई भी रोग पास नहीं आता है। पाचन-शक्तिके लिये तो यह क्रिया महौषध है। इसे गुरुके निकट ही सीखना चाहिये। मुद्रा

आदि क्रियाएँ भी गुरु-मुखसे ही सीखना भला हैं। षट्-चक्र-भेद और हँस-मन्त्र-जप योगियोंके प्रधान साधन हैं। 'हम्" कहनेके साथ वायुको वाहर निकाला जाता और "स"के साथ शरीरमें वायु भरी जाती है। दिन-रात मिलकर २१६०० वार यह मन्त्र जपा जाता है। इसीका नाम "अजपा गायत्री" भी है।

योगशास्त्रके अनेक ग्रन्थोंमें देह-शुद्धि करना योगियोंके लिये प्रधान कर्त्तव्य माना गया है। योगी लोग कहते हैं, अविशुद्ध देह योगके सर्वथा अनुपयुक्त है; इसलिये सर्वप्रथम देह-संशोधन करना आवश्यक है। दत्तात्रेय-संहितामें लिखा है कि, छः तरहके कर्म्मों द्वारा देहशुद्धि होती है, जिनके नाम धौति, वस्ति, नेति, लौलिकी, त्राटक और कपालभाति हैं। मेद और श्लेष्माको ठीक कर देहको विशुद्ध करनेके लिये ये छहो कर्म अवश्य कर्त्तव्य हैं।

धौति कर्मके अन्तर्धौति, दन्त-धौति, हृद्धौति और मूल-संशोधन आदि चार भेद हैं। अन्तर्धौतिमें कौवेकी तरह मुँह करके वार-वार वायु-पान किया जाता है। वायुसे उदर पूर्ण हो जानेपर उदरको वायुवलसे, झुलाया-दवाया जाता है। इसके वाद मुँहसे, धीरे-धीरे, वायुको निकाला जाता है। प्रातः और सायं, दोनों समय इस क्रियाका अभ्यास करना चाहिये। इसे अन्तर्धौति-वातसार भी कहा जाता है। एक अन्तर्धौति वारिसार नामकी क्रिया भी है। इसमें मुंहपर पानी भरकर वार-वार जलपान किया जाता है। जलसे उदर भर जानेपर उदरमें जलको

हिलाया-डुलाया जाता है। इसके अनन्तर गुह्यदेश द्वारा सब जल बाहर निकाला जाता है। यह क्रिया योग्य गुरुदेवसे सीखनी चाहिये। अन्तर्धौतिके और भी कई एक भेद हैं। इस क्रियासे मलनाश, अग्निवर्द्धन और अन्यान्य रोग-विनाश भी होता है।

दन्तधौतिके दन्तमूल, जिह्वामूल, कर्णरन्ध्र और कपालरन्ध्र आदिसे कई एक भेद हैं। खदिर-रस या खैर और मृत्तिकाद्वारा दन्तमार्जनसे, दन्तमूल, तर्जनी, अनामिका और मध्यमा द्वारा समूल जिह्वामार्जनसे जिह्वामूल, तर्जनी और अनामिका द्वारा कर्णकुहर-मार्जनसे कर्णरन्ध्र और निद्रा तथा भोजनके अन्तमें दाहिने अंगूठेसे ब्रह्मरन्ध्रमार्जनसे ब्रह्मरन्ध्र, विशुद्ध होता है। इनके सिवा दन्तधौतिकी और भी कई एक कठिन और बहु-श्रम-साध्य क्रियाएँ हैं।

हृद्धौतिमें भोजन लेनेपर कण्ठपर्यन्त जल भरकर और मुँह ऊपर उठाकर उस जलका वमन किया जाता है। इसके कई भेद हैं।

मूल-संशोधनमें हल्दीसे गुह्यदेशमें जल देकर उसे धोया जाता है। अपान-वायुकी शुद्धिके लिये यह क्रिया इसको किसी विशेषज्ञसे ही सीखना उचित है।

वस्तिके दो भेद हैं, जलवस्ति और शुष्कवस्ति। जिसमें नाभि-पर्यन्त जलमें डुबाकर और उत्कटासनसे बैठकर गुह्यदेश आकुञ्चित और प्रसारित किया जाता है, उसका नाम जलवस्ति है।

स्थलमें बैठकर जो क्रिया की जाती है, उसका नाम शुष्क-वस्ति है। इस क्रियासे कई रोग विनष्ट होते हैं।

नेतिक्रियामें आधे हाथका सीधा सूत नाकमें डालकर मुंहसे निकाला जाता है! इसका अभ्यास हो जानेपर इससे बड़ी-बड़ी चीज भी नाकमें डाली-निकाली जाती है। इससे खेचरी-सिद्धि और कफदोष-नाश होता है।

लौलिकी क्रियामें जोर-जोरसे उदरके दोनों पार्श्वोंको हिलाना होता है। अग्निवर्द्धनकी यह क्रिया प्रधान साधिका है।

त्राटक क्रिया बहुत कठिन हैं। इसमें जबतक चक्षुसे जल नहीं गिरता, तबतक किसी एक सूक्ष्म वस्तुको एकटक लगाकर देखना होता हैं। इसका अभ्यास कर लेनेपर चक्षूरोग तो होता ही नहीं, साथ ही शाम्भवी-मुद्रा-सिद्धि भी हो जाती है।

कपालभातिके तीन भेद हैं, वातक्रम, व्युत्क्रम और शीत्क्रम। बायीं नाकसे वायु खीचकर दाहिनीसे छोड़ने और दाहिने नासा-पुटोंसे खींचकर बायेंसे छोड़नेका नाम वातक्रम है। व्युत्क्रममें दोनों नासापुटोंसे जल खींचकर मुँहसे और मुंहसे खीचकर नासा-पुटोंसे छोड़ा जाता है। शीत्क्रममें मुंहसे शीत्कार (शोषण) करते जल खीचकर नासिकासे छोड़ा जाता है। श्लेष्मादोष निवारणके लिये यह क्रिया सर्वप्रधान है।

योग आरम्भ करते समय योगीको सर्वप्रथम इन क्रियाओंका अभ्यास कर लेना चाहिये। इनके सिद्ध किये विना आसन ठीक नहीं होते। इनके ऊपर आधिपत्य होते ही बत्तीसो

आसन सिद्ध हो जाते हैं। आसन-सिद्धिके बाद पचीस तरहकी मुद्राएं सिद्ध होती हैं।

वसन्त या शरद् ऋतुमें योगारम्भ किया जाता है। इन ऋतुओंके सिवा और किसी भी ऋतुमें योग-मार्गमें प्रविष्ट नहीं हुआ जाता; क्योंकि अन्य ऋतुओंमें रोग-विघ्न-भय रहता है। शास्त्रोंमें यह भी लिखा है कि, कम्बल, कुश, मृगचर्म या व्याघ्रचर्म परही धौतिक्रियाका अभ्यास करना चाहिये। इनके सिद्ध हो जानेपर अष्टाङ्ग-योगकी सिद्धि योगी हो जाती है।

आज कलके अधिकांश योगी शैव-सम्प्रदायके हो गये हैं। परन्तु इनके अनेक स्वतन्त्र सम्प्रदाय भी प्रचलित हैं। इनमें इतने प्रसिद्ध सम्प्रदाय हैं—कनफट, औघड़, मच्छेन्द्री, सारंगीदार, डुंरीदार, भर्तृहरि, कनपा, गोरखपन्थी, अघोरपन्थी, भङ्गरी-नन्दिया, आदि। यदि योगि-सम्प्रदायमें स्त्रियाँ आ जाती हैं, तो उन्हें "नाथिनी" या "योगिनी" कहा जाता है। योगी लोग गेरुआ वस्त्र, त्रिशूल, कानोंमें मुद्रा आदि धारण करते हैं। कितने ही योगी दाढ़ी रखते, गुदड़ी पहनते, सिरमें पगड़ी बाँधते और कन्धेमें झोली लटकाते हैं। कितने ही अलंकार भी पहनते हैं। कितने ही तो स्त्री, पुत्र आदिको लेकर भी योगी बनते हैं। उनका नाम "संयोगी" भी रखा गया है। पश्चिमोत्तर भारतमें बहुतेरे योगियोंका आवास है; किन्तु उनमें औघड़ और गोरखपन्थी विशेष हैं। गोरखपन्थियोंमें प्रसिद्ध बारह योगी हो गये हैं, जिनसे अनेक सम्प्रदाय चले हैं। उनके ये नाम हैं,—सत्यनाथ,

योगि-सम्प्रदाय

धर्मनाथ, कामनाथ, आदिनाथ, मत्स्यनाथ, अभयपन्थीनाथ, कालेप (काणिपा), ध्वजपन्थी, हण्डीविरङ्ग, रामजी, लक्ष्मणजी, हरियानाथ। इन नामोंमें बहुत कुछ मतभेद भी है।

इन सब योगियोंमेंसे भर्तृहर और नंदिया योगियोंका आचरण ठीक हिन्दू-आचरणका है। भङ्गरी योगियोंका आचरण मुसलमानोंकासा है और वे प्रायः मुसलमान ही होते भी हैं। काबुल और पेशावरमें जो योगी रहते हैं, उनका आचरण भी मुसलमानोंकासा ही है। कुछ अंग्रेजोंके मतसे इन स्थानोंके योगी भोटके रहनेवाले हैं। जो हो, परन्तु इसमें तो सन्देह ही नहीं कि, अब योगियोंमें अधिक आचरण-भ्रष्टता और चरित्रहीनता घुस पड़ी है।

नन्दिया सम्प्रदायके योगी भी गेरुआ पहनते और माल्य आदि धारण करते हैं; परन्तु प्रायः ये पाँच पैरकी या विकृताङ्ग गौका पालन करते और मेले-ठेलेमें गौको ले जाकर अपनी जीविकाका उपार्जन करते हैं। ये अपनेको महादेवके "नन्दी" के अनुचर बताते हैं। इसीसे इनका नाम "नन्दिया" है। भिक्षा माँगना इनका "खान्दानी धर्म" है। इनके बालक, दीक्षा-कालमें, अपने सिर मुड़ा कर गुरुके यहाँसे एक गुदड़ी ले लेते हैं। सम्प्रदायमें प्रविष्ट होनेका यही प्रारम्भिक कृत्य है।

भर्तृहरि सम्प्रदायके योगी सारङ्गी बजा-बजाकर भिक्षार्जन किया करते हैं। इनके गलेमें रुद्राक्ष-माला और वैरागी छड़ी रहती है। ये सामुद्रिक और भौतिक विद्यासे भी अपना जीविकार्जन करते हैं। ये विशेषतः राजा गोपीचन्द और महादेवजीके

गीत गाते फिरते हैं। इनमेंसे अधिकांशका आचरण आदर्श होता है।

नन्दिया और भङ्गरी आदि योगी कभी गाना नहीं गाते। इनमेंसे जो लोग गाना गाते हैं, वे महादेवजीकी कीर्त्ति ही गाते हैं। पश्चिमाञ्चलके कितने ही योगी जाहिरपीर और रज्जरकी प्रेमगीति तथा राठोर अमरसिंहकी वीर-काहिनीका गान करते हैं। इनमेंसे कितने ही दर्जीका काम करते और कितने ही रेशमका भी काम करते हैं।

कुछ लोगोंके खयालसे कनफट योगी अत्यन्त प्राचीन। मार्कोपोलो साहबके सिद्धान्तसे योगी आदि कालमें ब्राह्मण थे। जो हो, परन्तु इसमें तो सन्देह नहीं कि, चाहे योगकी उपयोगिताके कारण या जिस किसी कारणसे भी हो, योगदर्शनके सिद्धान्तोंका जनतामें सदा खूब खूब प्रचार हुआ है। सम्प्रदाय-विशेषसे अलग रहकर भी कितने ही योगियोंने अपनी योगबलकी करामातें दिखाकर जनताको, कई बार, चकित कर दिया है। आगेकी पंक्तियाँ पढ़नेपर योगियोंके योगबलकी महिमा विदित हो सकती है।

योगियोंका योगबल

योगियोंका अपूर्व बल योगबल है। शास्त्रोंमें योगबलके बड़े सुन्दर और आश्चर्यकारक दृष्टान्त देखे जाते हैं। यदि शास्त्रोंकी बात छोड़ दी जाय, तो भी इतिहास इस बातका साक्षी है कि, योगबलकी बड़ी-बड़ी अद्भुत करामातें देखी गयी हैं। सो भी किसी भारतीयके लिखे इतिहासमें नहीं, पक्के तर्क-कुशल अंग्रेजोंका लिखा इतिहास ही

इस विषयमें साक्षी है। Saturday Magazine (Vol I., P. 28)में एक विद्वान्ने लिखा था कि, "मद्रासके रहनेवाले एक दक्षिण-देशीय शिशल नामके योगी, कुम्भकके बल, शून्य-आकाशमें स्थित होकर, जप करते थे।"

१७४४ शकाब्दमें कलकत्तेके पूर्व, खिदिरपुरके भूकैलास नामक स्थानमें, एक बार एक योगी लाये गये। उस समय भूकैलासके राजा, सत्यचरण घोषाल, जीवित थे। एक दिन डा० ग्रेहमने उन योगिराजकी नाकमें एमोनिया लगा दिया; तो भी उनका योगभङ्ग नहीं हुआ! यथासमय योगभङ्ग होनेपर उन्होंने अपना नाम "दुल्ला नवाव" बताया था। वे बहुत ही कम बोलते थे। १७५५ शकाब्दमें उनका देहावसान हो गया।

अपने "सिक्ख-इतिहास"में डाक्टर मैकग्रीगरने लिखा है, "सन् १८३७ में चकाचौंध पैदा करनेवाला एक योगदृश्य देखा गया था। एक बार लाहोरमें एक फकीर आकर बोले, "यदि मुझे कोई एक बाक्समें बन्दकर मिट्टीके अन्दर गाड़ दे, तो मैं जबतक चाहूँ, भीतर ही जिन्दा रह सकता हूं।" उस समय पञ्जाब-केसरी रणजित सिंह जीवित थे। उन्होंने फकीरकी बातपर विश्वास न कर उनकी परीक्षा करनी चाही। वही बात हुई। एक बाक्समें साधको बन्द कर उसमें ताला लगा दिया गया और एक बागीचेमें, जमीनके भीतर, बाक्स गाड़ दिया गया। यही नहीं, बागीचेको चारो ओरसे घेरकर पहरा भी बैठा दिया गया। साथ ही रणजित सिंहने ऐसा भी बन्दोबस्त कर दिया कि, बागीचेके पास कोई भी मनुष्य

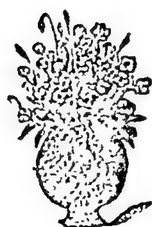
नहीं जा सके। योगी चालीस दिन और चालीस रात, पृथ्वीके अन्दर, उसी वाक्समें पड़े रहे! अन्तको महाराजा रणजित सिंह कितने ही सरदारों, अपने पौत्र, जेनरल वेन्टयू, कप्तान वेड और मुझे लेकर वहाँ गये एवं योगीको, मिट्टी खोदकर, उन्होंने वाहर निकलवाया। किन्तु योगी महाराज ज्योंके त्यों रहे! वल्कि हँसते हुए सवके साथ वातचीत करने लगे! योगीकी यह अलौकिक लीला देखकर सारी जनता चकित-विस्मित हो गयी। महाराजा रणजित सिंहने स्वयं योगीके गलेमें रत्न-हार पहनाया। योगीके सम्मानके लिये तोपोंकी गड़गड़ाहटसे आकाश गूंज उठा।" उन योगिराजका नाम था हरिदास।

हैनिग् वर्जर साहवने, अपने भ्रमण-वृत्तान्तमें, लिखा है कि, "अमृत-सरमें, एक वार, मिट्टी खोदते समय, समाधि लगाये एक साधु पाये गये थे, जिनको देखनेसे पता नहीं चलता था कि, वे कवके समाधि लगाये वैठे हुए थे। समाधि टूटने पर योगीने अमृतसरका जो वर्णन किया था, उससे मालूम हुआ कि, वे सकड़ों वर्षसे समाधि लगाये हुए थे।" सिख-गुरु अर्जुन सिंहके समय, प्रायः तीन सौ वर्ष हुए, यह घटना हुई थी।

सन् १८८७ ईस्वीमें, दार्जिलिङ्ग पर्वतपर, कई एक अंग्रेजोंके सामने, तिव्वतके एक लामा योगवलसे आकाशमें, केवल वायुमण्डलके सहारे, वैठ गये थे।

इस तरह योगवलकी ऐसी कितनी ही घटनाएं सुननेमें आती हैं। परन्तु योग्य गुरु और शिक्षाके अभावसे आजकल

योगसाधन लुप्तसा हो चला है, जिससे कितने ही स्वतन्त्र स्वभावके मनुष्य योगकी करामातोंपर विश्वास तक नहीं करते !



परिशिष्ट

श्रीयुत पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी, वेदान्तशास्त्री, की यह पुस्तक पढ़कर मुझे परम प्रसन्नता हुई है। आपका अनुरोध है कि, मैं समालोचनात्मक दृष्टिसे इसका परिशिष्ट लिखूँ। इसी अनुरोधके अनुसार मैं दो-चार शब्द लिख रहा हूं।

"विषय-प्रवेश" को पढ़नेपर मालूम पड़ता है कि, इस ग्रन्थ में आप भारतके समस्त आस्तिक-नास्तिक दर्शनोंके अतिरिक्त चीन, ग्रीस, ब्रिटेन, फ्रान्स आदिके दर्शनोंका भी पूरा परिचय लिखेंगे। उस दशामें, इस ग्रन्थमें अत्यधिक व्यय और इसकी विशेष कलेवर-वृद्धि हो जानेके कारण, विशेष मूल्य रखना अनिवार्य होता। इसलिये इसे खण्डशः प्रकाशित करनेका जो आपने विचार स्थिर किया है, वह ग्राहकोंके लिये पूरा सुविधा-जनक है और मैं उसका अनुमोदन करता हूं।

इस ग्रन्थका "विषय-प्रवेश" या उपोद्घात प्रत्येक दर्शनप्रेमीको खूब ध्यानसे पढ़ना चाहिये। इसमें आपने दर्शन-शास्त्रसे सम्बन्ध रखनेवाली प्रत्येक बातका पूरा-पूरा विचार किया है। विशेषतः पाश्चात्य दर्शनोंके साथ भारतीय दर्शनोंका जो त्रिवेदीजीने तुलनात्मक विवेचन किया है, वह आधुनिक शिक्षितोंके लिये अधिकतर सन्तोषप्रद होगा, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है।

इस प्रथम खण्डमें केवल सांख्य-दर्शन और योग-दर्शनका परिचय लिखा गया है। मेरे विचारसे भी प्रथम खण्डमें इन्हीं दर्शनोंका परिचय दिया जाना आवश्यक था। यों तो सभी दर्शन शान्तिप्रद और उपयोगी हैं; परन्तु इनमें "नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव" आत्मा और अणिमा आदि सिद्धियोंका जो तर्क-सम्मत और युक्ति-युक्त विचार किया गया है, वह हम लोगोंके लिये परमोपयोगी है। हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि, सांख्य और योगने भी कर्मानुष्ठानको आश्रय दिया है; परन्तु इसीको एक प्रधान लक्ष्य न मानकर जो इन दर्शनोंने प्रकृति और पुरुषके विवेक-ज्ञानको प्रधान लक्ष्य माना है, वह इनकी श्रेष्ठताका प्रधान प्रमाण है।

कुछ लोगोंके विचारसे दो तरहके मीमांसक और दो तरहके सांख्य हैं। इस तरह श्रेणी-विभाग किया गया है,—निरीश्वर-मीमांसक, सेश्वर-मीमांसक, निरीश्वर-सांख्य और सेश्वर-सांख्य। यहाँ कुछ लोग कहते हैं कि, कुमारिल भट्टने "श्लोक-वार्तिक"में स्पष्ट लिखा है कि, "हमारे मतमें ईश्वरास्तित्व नहीं है" तब निरीश्वर-मीमांसक-दलका अस्वीकार अनावश्यक है। परन्तु एक दलके विचारसे आचार्य कुमारिलका यहाँ इतना ही अभिप्राय था कि, 'अनुमानके द्वारा ईश्वर-सिद्धि नहीं हो सकती।' कुमारिलपादका यह अभिप्राय कभी नहीं था कि, उपनिषदादिमें विवृत ईश्वर है ही नहीं। प्रसिद्ध ग्रन्थ "शास्त्र-प्रदीपिका" में भी इसी अभिप्रायका वचन है। इसी प्रकार न्यायमतालोचनके अनन्तर "भाट्ट-चिन्तामणि" और "मीमांसा-न्याय-प्रकाश" के जो वाक्य

हैं, वे भी इसी विचारका अनुमोदन करते हैं। जो हो, परन्तु यह विचार कोई अखण्डनीय नहीं हैं। न्यायदर्शन ईश्वरकी इच्छाको सृष्टिका कारण मानता है। परन्तु "न्यायसुधा" आदि ग्रन्थोंमें लिखा है कि, मीमांसकोंके मतमें जीवोंका अदृष्ट ही सृष्टिका कारण है, ईश्वर नहीं। इसके सिवा मीमांसक लोग ईश्वरको कर्मफलदाता भी नहीं मानते। फलतः कितने ही मीमांसक निरी-श्वर-वादी भी कहे जा सकते हैं। परन्तु यह बात ध्यानमें रखनेकी है कि, साङ्ख्योंके निरीश्वरवादी होनेमें मीमांसकोंके समान विवाद नहीं है। इस पुस्तकके प्रणेताने बड़ी योग्यतासे इस बातको सिद्ध किया है; इसलिये मैं पिष्टपेषण करना उचित नहीं समझता हूँ। हाँ, विज्ञानभिक्षु आदि कुछ साङ्ख्यचार्यों का यह मत अवश्य है कि, साङ्ख्यमतमें ईश्वर है। परन्तु यह 'मत' वेदान्तके साथ साङ्-ख्यका केवल समन्वय करनेके विचारसे है। मधुसूदन सरस्वती आदिने जो "प्रस्थानभेद" आदि ग्रन्थोंमें लिखा है कि, सभी दर्शनोंकी वेदान्तदर्शनके साथ एक-वाक्यता है, उसीके अनुसार विज्ञानभिक्षु आदिने साङ्ख्यदर्शनमें ईश्वरास्तित्वको स्थापित किया है। किन्तु मैं यह बात निःसंकोच कह सकता हूं कि, इस दर्शनके किसी भी सूत्रका आशय ईश्वरास्तित्व प्रमाणित करना नहीं है। इसीसे मैं कहता हूँ कि, "दर्शन-परिचय" लेखकने जो यह बात सिद्ध की है कि, साङ्ख्यमतमें ईश्वर नहीं है, उसका मैं अन्तःकरणसे समर्थन करता हूं। मेरे विचारमें साङ्ख्यके लिये ईश्वर-स्वीकारकी कुछ आवश्य-कता भी नहीं है; क्योंकि, वह आत्म-ज्ञानसे ही मुक्ति मानता है।

"साङ्ख्य-दर्शनमें आत्मज्ञान प्राप्त करनेके दो मार्ग हैं—चतुर्विंशति तत्त्वोंका सूक्ष्म-विवेचन-पूर्वक प्रकृतिविवेक-ज्ञान और समाधि-योग। कुछ लोगोंका मत है कि, योगदर्शन ही समाधि-योगसे आत्मज्ञानकी प्राप्ति मानता है ; परन्तु साङ्ख्यके "समाधि-सुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता" सूत्रको देखनेसे यह बात खण्डित हो जाती है। हाँ, इतनी बात अवश्य है कि, योगदर्शन समाधियोग और ईश्वरप्रणिधान—इन दोनोंको निमित्त मानता है और साङ्ख्य ईश्वरप्रणिधानको निमित्त नहीं मानता। वास्तवमें सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करनेपर जान पड़ता है कि, समाधियोगसे ही अपनी इष्ट-सिद्धि हो जाती है,—उसके साथ-साथ ईश्वरप्रणिधानको माननेकी कोई जरूरत नहीं है। हाँ, जिस दर्शन-मतमें ईश्वरप्रणिधानसे किसी विशेष फलकी प्राप्ति होती है, उसमें ईश्वरप्रणिधानकी आवश्यकता हो सकती है। उदाहरण-स्वरूप वेदान्तको लीजिये। वेदान्तमें ईश्वरप्रणिधानका स्वतन्त्र फल माना गया है ; इसलिये उसका ईश्वराङ्गीकार युक्तियुक्त है। परन्तु किसी स्वतन्त्र फल-प्राप्तिके विना ही योगियोंने जो ईश्वराङ्गीकार किया है, वह व्यर्थ है। इस विचारसे भी साङ्ख्योंका ईश्वरनिराकरण तर्क-सम्मत मालूम होता है।

"अब यहाँ यह विचार करनेकी बात है कि, तब फिर योगियोंने ईश्वराङ्गीकार क्यों किया है ? उनके इस प्रयत्नका रहस्य है। ब्रह्मानन्द सरस्वतीने "न्यायरत्नावली" में लिखा है कि, आत्माको असङ्ग और अकर्त्ता प्रमाणित करनेके कारण योगदर्शनके साथ

अद्वैतमतकी समीपता है। परन्तु यह सम्बन्ध आत्मा और ईश्वरका अभेद बताये बिना सम्भव नहीं है। फलतः ईश्वरके साथ आत्माका यह 'अभेद' बतानेके लिये ही योगियोंने ईश्वर-स्वीकार किया है। आत्म-साक्षात्कारके प्रति ईश्वराराधानको निमित्त मानकर योगियोंने इस अभेदको स्पष्ट सूचित किया है। यह लिखनेकी तो कदाचित् आवश्यकता ही नहीं है कि, जिसका प्रणिधान किया जाता है, उसका ही साक्षात्कार होता है। भला यदि आत्मा और ईश्वर अलग अलग रहते, तो ईश्वर-चिन्तनसे आत्म-साक्षात्कार कैसे हो सकता ? अतः योगियोंका ईश्वराङ्गीकार उनकी बुद्धिमत्ता ही है। जो हो, परन्तु मेरे विचारसे इस सम्बन्धमें जो इन दर्शनोंमें सूक्ष्म विचार किया गया है उसे प्रत्येक पुरुषको समझना आवश्यक कर्त्तव्य है। साथ ही मनुष्य-जन्म सार्थक करनेके लिये दर्शन-शास्त्रके प्रत्येक निगूढ़ विषयका पूरा पूरा विश्लेषण कर उन्हें हृदयंङ्गम करना भी कम आवश्यक नहीं। सब कुछ है, परन्तु दर्शनके ऊँचे और प्राञ्जल विचारोंका संस्कृतभाषामें ही निरूपण रहनेके कारण साधारण जनता इन शान्तिदायी और परिमार्जित विचारोंसे वञ्चित है। खेद है कि, भारतकी उदीयमान राष्ट्रभाषा हिन्दीमें अबतक दार्शनिक साहित्यका सर्वथा अभावसा है। अत्यन्त परिश्रम और चिन्तन द्वारा इस अभावको दूर कर जो त्रिवेदीजीने जनताके अतुलनीय कल्याणके लिये "दर्शन-परिचय"का प्रणयन प्रारम्भ किया है, उसका मैं बड़े ही सन्तोषके साथ हार्दिक अभिनन्दन करता हूं। इसके प्रचारसे हिन्दीभाषी

समाजका अत्यधिक उपकार-साधन और ज्ञान-वर्द्धन होनेकी सम्भावना है।

"जैसा कि, कहा गया है, केवल हिन्दूषट् दर्शनोंका ही नहीं, बल्कि सारे संसारके समस्त प्राचीन और अर्वाचीन दर्शनोंका साङ्गोपाङ्ग और सविस्तर वर्णन इस "दर्शन-परिचय" में मय समालोचनाके रहेगा। फलतः इस महान् उद्योगकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। मुझे पूरी शुभाशा है कि, सहृदय सज्जन इस ग्रन्थरत्नको शीघ्र अपनाकर हिन्दू जाति तथा मातृ-भाषाको परम गौरवान्वित करनेमें हाथ बँटाते हुए अक्षय्य पुण्यके भागी होंगे।"

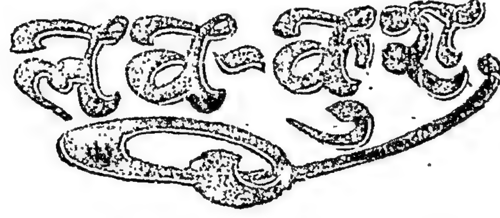
अनन्तकृष्ण शास्त्री,

(कलकत्ता यूनिवर्सिटीके दर्शनाध्यापक, वेदान्त-विशारद।)



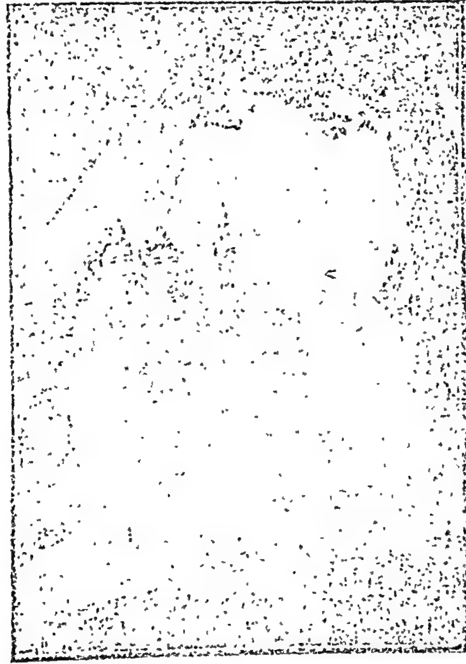
इस ग्रन्थरत्नका द्वितीय भाग भी शीघ्र ही निकलेगा। उसमें न्यायशास्त्र (तर्कविद्या) और वैशेषिक दर्शनका समालोचनात्मक विवरण रहेगा। एक कार्ड भेजकर अभीसे ग्राहक बन जाइये।

वीर-चरितावलीका प्रथम ग्रन्थ



१० रंग विरंगे चित्रोंसे शुसोभित ।

इस ग्रन्थमें मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्रके विश्वविजयी पुत्र लव और कुशका पूरा वृत्तान्त बड़ो ही ओजस्विनी भाषामें लिखवाकर प्रकाशित किया गया है।



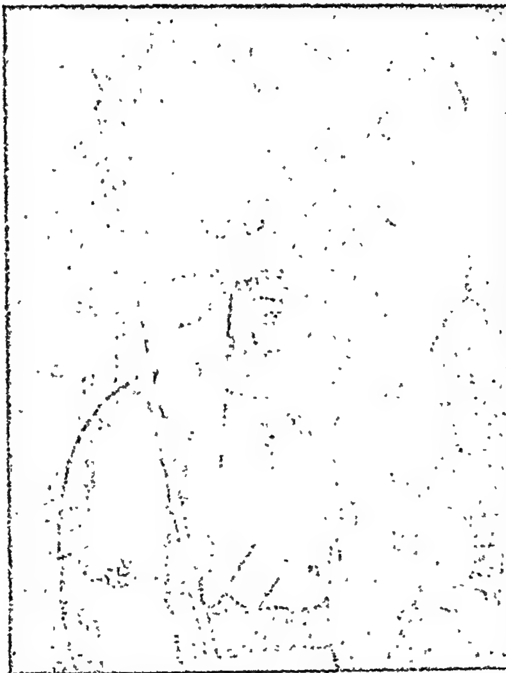
लव-कुशकी जीवन-कथा कितनी आश्चर्यमयी, कितनी उपदेशप्रद और देशके नवयुवकोंके चरित्र गठनमें कितनी सहायता दे सकती है इसके कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं। जो लोग अपने तथा अपनी गृह सन्तानो और साथही साथ गृह-ललनाओं के जीवन को आदर्श सांचेमें ढालना चाहते हैं, वह इस पुस्तकको अवश्य मंगाकर पढ़ें। हम दावेके साथ कहते हैं कि, इस ज़ोड़की दूसरी पुस्तक अवतक हिन्दी संसारमें नहीं छपी मूल्य १॥) रेशमी जिल्द २।)

भारतका सर्वश्रेष्ठ वीर

महाराणा प्रतापसिंह

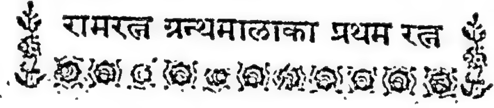
रंग विरंगे ६ चित्रोंसे सुशोभित।

हिन्दूकुल सूर्य्य, महापराक्रमशाली वीर शिरोमणि, स्वतन्त्रता नामक मन्त्रके उपासक प्रातः स्मरणीय महाराणा प्रतापसिंहको कौन नहीं जानता? इस ग्रन्थमें उन्हीं महाराणा प्रतापसिंहके शौर्य्य वीर्य्यका पूरा वृत्तान्त लिखा गया है। यदि आपको भाई भाईकी लड़ाईका नतीजा देखना हो; राजपूत कुलपुरोहितका राजवंशकी रक्षाके लिये प्राण विसर्जित करनेका रोमांचकारी हाल पढ़ना हो, राणा प्रतापसिंह का वन और पर्वतोंमें रहकर स्वदेश रक्षा करनेका हाल जानना हो तो इस ग्रन्थको मंगाकर पढ़िये। यह ग्रन्थ प्रत्येक भारतवासीको पढ़ना चाहिये। मूल्य १।) रेशमी जिल्द १॥)



रामरत्न ग्रन्थमालाका प्रथम रत्न

हिन्दी साहित्यका गौरव

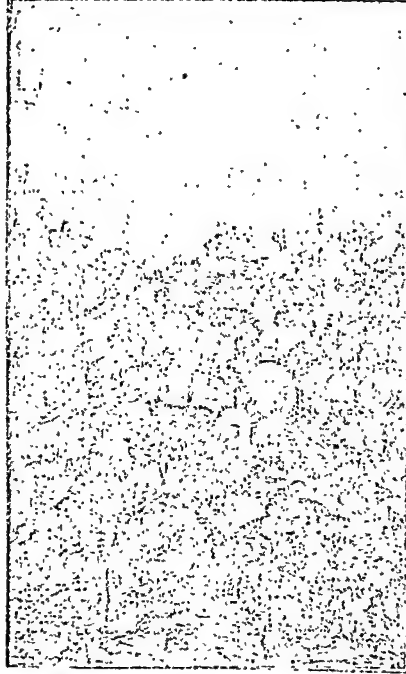


इस ग्रन्थमें दर्शन शास्त्रका पूरा दिग्दर्शन कराया गया है। जो पाठक केवल दर्शन शब्द जानते हैं; परन्तु यह नहीं जानते, कि दर्शन कहते किसको हैं,इससे संसारका क्या लाभ हुआ, इस शास्त्रके निर्माण करताओंका संसारने क्यों इतना मान किया, इस शास्त्रके आचार्य क्यों आज भी विद्वत्त मण्डलीमें पूजे जाते हैं ?: उन्हींके लिये यह ग्रन्थ लिखा गया है। दर्शन शास्त्र बतलाता है, कि प्राणोंका मोह झूठा है। शरीर नाशवान है। शरीरका नाश हो सकता है; परन्तु आत्माका नहीं होता, क्योंकि आत्मा अमर और चैतन्य है। दर्शन शास्त्र इसका प्रत्यक्ष प्रमाण देता है, कि आत्मा कैसे अमर है और शरीर कैसे नाशवान है। शरीर छोटा होता है, बड़ा होता है, गलता है, सड़ता है; परन्तु आत्माको कुछ ठेस नहीं पहुंचती। इस मोहान्धकारके जमानेमें दर्शन शास्त्र सर्च लाईटका काम देगा। अगर आप आत्माकी अमरताको जानना चाहते हैं तो इस ग्रन्थको पढ़िये। इस ग्रन्थमें दर्शन शास्त्रका तत्व बड़ी ही सरल भाषामें लिखा गया है और साथ ही दर्शन शास्त्रके आचार्य्योंका पूरा जीवन वृत्तान्त उनके चित्रों सहित दिया गया है। इस ग्रन्थसे मनुष्य मात्रका महान उपकार होगा। इसके अवलोकनसे प्राणीमात्रको ज्ञानका लाभ होगा और लोग ईश्वरकी विभूतियोंको समझनेमें समर्थ होंगे तथा लोगोंकी तर्कशक्ति और ज्ञानशक्ति बढ़ेगी मूल्य २) रेशमी जिल्द २॥)

यूरोपका सर्वश्रेष्ठ वीर

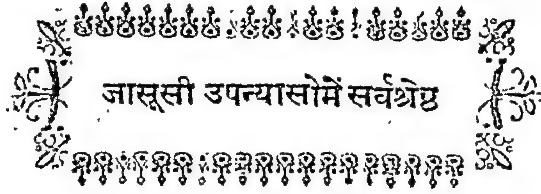
नैपोलियन बोनापार्ट

ऐसा कौन पढ़ा लिखा मनुष्य होगा जो यूरोपके साक्षात रण-देवता सर्वमान्य महावीर नैपोलियन बोनापार्टका नाम न जानता हो? इसकी



वीरताका दबदबा उस समय सारे यूरोपमें था। इस महान पराक्रमशाली वीरने जर्मनी प्रशिया, आस्ट्रिया, रूस, इटाली आदि महान राज्योंको जीत, अपनी अपूर्व प्रतिभाका परिचय दिया था। इसके डरसे यूरोपके अत्याचारी राष्ट्र थर-थर कांपा करते थे। यदि आप इस महान वीरका सम्पूर्ण जीवन-वृत्तान्त जानना चाहते हों तो शीघ्रही इस ग्रन्थको मंगाकर पढ़िये। इस ग्रन्थमें नैपोलियन बोनापार्टका पूरा वृत्तान्त बड़ी ही रोचक और मधुर भाषामें लिखा गया है साथही ११ मन हरण चित्र लगाकर ग्रन्थकी शोभा हद दर्जेतक पहुंचा देनेकी चेष्टा की गई है। इसकी उत्तमता इसीसे जानी जा सकती है, कि अल्पही समयमें इसके दो संस्करण बिक चुके

मूल्य२।) रेशमी जिल्द २॥)



विचित्र जाल ।

२ रंग बिरंगे चित्रोंसे सुशोभित ।

यह एक घटना पूर्ण जासूसी उपन्यास है। इसमें जालसाजोंकी जालसाजी, धूरतोंकी धूरताई, जासूसोंकी चालाकी, बड़ी खूबीके



साथ दिखाई गई है। इसे पढ़ कभी आप क्रोध-से कांपने लग जावेंगे, कभी खिलखिलाकर हंस पड़ेंगे कभी रोने लग जावेंगे, और कभी ताज़ुबमें पड़ जावेंगे। इस पुस्तकको पढ़कर कोई भी मनुष्य जाल-साजोंके चंगुलमें नहीं फंस सकता। पुस्तक-की भाषा रोचक और किस्सा बड़ा दिलचस्प है एक बार हाथमें लेकर छोड़नेका मन नही करता। मूल्य ॥≈)

राष्ट्रीय झंकार

इस पुस्तकको यदि "राष्ट्रीय काव्यवाटिका" कहा जाय तो कुछ अनुचित न होगा। जिस तरह पुष्पवाटिकाके सुन्दर फूलोंकी सुगन्धी मनुष्यका चित्त हरा-भरा प्रसन्न और शान्त बना देती है, उसी तरह इस राष्ट्रीय पुष्पवाटिका के मनोहर फूलोंकी जैसी मातृ वन्दना, नमो हिन्दुस्थान, हिन्दोस्ताँ हमारा, चलाओ चरखा, वन्देमातरम्, जेल-यात्रा आदिकी अपूर्व सुगन्धी भी भारतवासियोंके सुरझाए हुए दिलोंको हरा-भरा और प्रसन्न बना देती है। इसमेंके राष्ट्रीय गायन पढ़कर मनुष्यके हृदयमें देशभक्ति जागृत होती है और स्वतन्त्रताका सञ्चार होता है। इस पुस्तकका प्रत्येक पद मुर्दा दिलोंमें जान डालनेवाला है यह पुस्तक प्रत्येक भारतवासीको संग्रह करनी चाहिये। मूल्य भी बहुतही कम रखा गया है। यानी एक एकसौ पन्नोंके दो भागोंका केवल १) रेशमी जिल्द १॥)



नाट्य-ग्रन्थमालाका प्रथम ग्रन्थ

सती-चन्द्रहास

यह नाटक पौराणिक, राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक घटनाओंसे भरा हुआ है। जिस समय रङ्गमञ्चपर अभिनीत होता है



उस समय जनता चित्रवत हो जाती है। इसकी प्रशंसामें केवल इतना ही लिखना यथेष्ट होगा कि, कलकत्तेकी सुप्रसिद्ध हिन्दी-नाट्य-समिति पांच पांच हजार जनताकी उपस्थितिमें इसे दो बार अभिनीत कर ख्याति प्राप्त कर चुकी है, तथा इसकी प्रशंसा सभी विद्वानोंने मुक्तकंठसे की है। इसके लेखक हैं नाट्य प्रेमियोंके सुपरिचित पाप-परिणाम, सतीचिन्ता, कृष्ण-सुदामा आदिके लेखक नाट्यकलामें निपुण, ६ बू जमुनादासजी मेहरा। लेखकने इसकी घटनाओंको सजानेमें चतुर जौहरीका काम किया है, जिसे देखकर वाह वाह करनी पड़ती है। इस नाटककी बहुत ही थोड़ी प्रतियां बची हैं शीघ्र मंगाईये नहीं तो दूसरे संस्करणकी बाट जोहनी पड़ेगी मूल्य १।) रंगीन १॥) रेशमी जिल्द १॥)

नाट्य-ग्रन्थमालाका **सम्राट परीक्षित** तीसरा ग्रन्थ।

५ बहुरंगे तथा एक रंगे चित्रोंसे सुशोभित।

इस नाटकमें सम्राट् परीक्षितके जन्म होनेका कारण और जन्म होनेके समयकी घटना बड़े ही आकर्षक और हृदय विदारक दृश्य, कलियुगका धर्म और पृथ्वीको सताना, राजा परीक्षितका उनकी सहायता कर कलियुगके साथ घोर युद्ध करना, कलियुगका हार मानकर राजाकी आज्ञासे स्वर्ण जुआ तथा वेश्याके गृहमें निवास करना। कलियुगके प्रभावसे राजाकी बुद्धि पलट जाना, शमीक ऋषिके गलेमें मरा सर्प डालना, शृंगी ऋषिका क्रोधित होकर राजाको शाप देना, तक्षक सर्प और धनवन्तर वैद्यका अपूर्व संवाद, तक्षकका कीड़ा बनकर परीक्षितको काटना, राजकुमार जनमेजयका सर्प यज्ञ करना, इन्द्र द्वारा तक्षककी रक्षा होना आदि बातें बड़ी खूबीके साथ लिखी गई हैं। इसके साथही फाटकेबाजी का प्रहसन भी दिया गया है, जिसको देखते देखते दर्शक लोट पोट हो जाते हैं। मूल्य १।) रेशमी जिल्द १॥)



नाट्य ग्रन्थमालाका चौथा ग्रन्थ

सत्यनारायण

ऐसा कौन हिन्दू सन्तान होगा जिसने भगवान् सत्यनारायणकी कथा न सुनी हो? जिनकी कृपासे मूक महान वक्ता होते हैं, पंगु गिरि शिखरों पर च जाते हैं, रङ्क राव हो जाते हैं, जिनकी कृपा कटाक्ष होनेहीसे मनुष्य संसार की तमाम व्याधियोंसे छूट परमधामको प्राप्त होते हैं। उन्हीं दयामय भगवान सत्यनारायणकी पूरी कथा इस पुस्तकमें नाटकरूपमें बड़े विस्तार के साथ लिखी गई है और साथ ही सामाजिक तथा राजनीतिक दृश्य भी भली भाँति दिखाये गये हैं। यह नाटक हिन्दू स्कूलो, हिन्दी नाट्य संस्थाओं तथा सनातन धर्म सभाओंके खेलने योग्य सर्वोत्तम है। नाटक प्रेमी इससे अवश्य लाभ उठावें मूल्य १।) रेशमी जिल्द १॥)



नाट्य-ग्रन्थमालाका पांचवां ग्रन्थ

भारत-रमणी

रंग बिरंगे ४ चित्रोंसे सुशोभित।

यह सामाजिक नाटक अति उत्तम रङ्गमञ्चपर अभिनीत करने योग्य है। इसका अभिनय देखकर जनता चित्रवत हो जायगी। हिन्दी भाषामें सामाजिक दृश्योंसे परिपूर्ण नाटकोंकी बड़ी कमी है, इसीलिये हमने प्रचुर धन व्यय कर ऐसे नाटक निकालनेका प्रबन्ध किया है। यह नाटक सुन्दर कविताओं और मनोहर गायनोंसे भरा हुआ है। इसका एक एक दृश्य पढ़कर आप खुश होंगे। एक भारतीय बालकका पहले मातृभक्त, फिर स्त्रीभक्त, फिर वेश्या-भक्त होना। शराब आदि दूषित कर्मों द्वारा अपनी सब सम्पत्ति नष्टकर: अन्तमें शराबके लिये एक लोटा चुराकर भागना और पुलिस द्वारा पकड़ा जाना। शान्ताका पुत्र-प्रेम, वासन्तीका पति-प्रेम तथा धर्म्मदासका प्रभु-प्रेम और इन सबकी दृढ़ता खूब अच्छी तरहसे दिखाई गई है। इसके साथही कोकिला नामक वेश्याका कपट-प्रेम, मदनका धूर्त-प्रेम सूदखोर: क्रूर-सिंहकी क्रूरता आदिके दृश्य भी बड़ी खूबीके साथ लिखे गये हैं। नाटक-प्रेमियोंको यह नाटक अवश्य पढ़ना चाहिये। मूल्य १।) रेशमी जिल्द १॥)

गान्धी सिद्धान्त

(लेखक महात्मा गान्धी।)

वर्त्तमान समयमें यह पुस्तक भारतवासियोंके लिये दूसरी "श्रीमद् भागवत गीता" है। जिस तरह गीतामें भगवान श्रीकृष्णने अपने प्रिय सखा, परम, भक्त, किन्तु माया मोहसे घिरे हुए, क्षत्रीय धर्म्मसे पथ भ्रष्ट, सशङ्कित कुन्तीनन्दन अर्जुनको कर्मयोगका उपदेश दे, उनके सारे सन्देहोंको दूर करते हुए उन्हें स्वराज्य प्राप्तिका सच्चा मार्ग बताया था उसी तरह इस पुस्तकमें भी प्रश्नोत्तर रूपमें भारतके वर्तमान कृष्ण महात्मा गान्धीने स्वराज्याभिलाषी, किन्तु भयभीत तथा सशङ्कित भारतवासियोंके सारे सन्देहोंको दूर करते हुए उन्हें असहयोग तथा सत्याग्रह द्वारा आत्मशुद्धिकर स्वराज्य प्राप्तिका सच्चा मार्ग बताया है। पुस्तक पढ़ने योग्य है। मूल्य ॥) रेशमी जिल्द १)

प्रेमका फल

यह उपन्यास उर्दूकी प्यारी बोल चालमें लिखा गया है और अपने ढङ्गका एकही है। इसमें शुद्ध प्रेम और उसका परिणाम ऐसी खूबीके साथ दर्शाया गया है, कि एक बार हाथमें उठानेसे बिना समाप्त किये दिल नहीं मानता। इतना दिलचस्प होनेपर भी यह उपन्यास शिक्षाका भण्डार है। हम जोर देकर कह सकते हैं कि, ऐसा बढ़िया तथा दिलचस्प उपन्यास मिलना कठिन है। मूल्य सचित्र पुस्तकका १)

स्वराज्य दर्शन

यह शतरञ्जकी तरह बड़ाही दिलचस्प और उत्तम खेल है। जो साहब बेकारीकी हालतमें चाहे मन बहलानेके लिये ताश, चौसर, शतरञ्ज आदि बेकार खेलें लेकर अपना समय नष्ट करते हैं उनके लिये हमने यह स्वराज्य दर्शन नामक खेल तैयार किया है। इसके खेलनेसे मनुष्यकादिमाग बढ़ता है। अच्छी अच्छी बातें मनमें पैदा होने लगती हैं और देशके प्रति अनुराग बढ़ता है। हमारी प्रार्थना है, कि आप लोग और खेलोंमें समय नष्ट न कर इसे मङ्गाकर देखिये और इससे अपना मन बहलाइये। यह खेल खूब मोटे कार्ड बोर्ड पर बहुरंगोंमें छपा हुआ है और साथही महात्मा गान्धी, लोकमान्य तिलक, देशबन्धुदास, दादाभाई नौरोजी, मौलाना शौकतअली, महम्मदअली आदि देशपूज्य नेताओंके सुन्दर तीन रंगमें छपे हुए चित्र भी दिये गये हैं इस खेलके खेलनेका तरीका सरल भाषामें लिख दिया गया है, जो पढ़तेही हर एक मनुष्य समझ लेगा दाम ।≈) १०० एकसौ मंगाने पर २५) सैकड़ा तथा १०० से ऊपर मंगाने वालोंको ३०) सैकड़ा कमीशन मिलेगा।

लार्ड किचनर

इस ग्रन्थमें यूरोपीय महासमरके प्रधान सेनापति लार्ड किचनरका पूरा जीवन चरित्र लिखा गया है। इस ग्रन्थके पढनेसे लार्ड किचनर सम्बन्धी सब घटनाएं पाठकोंकी समझमें आ जायेंगी और पाठक जान जायँगे, कि लण्डन नगरीके अन्य प्रतिभाशाली मनुष्योंको छोड़कर लार्ड किचनरही क्यों प्रधान सेनापति बनाये गये थे? पाठक! यह लार्ड किचनरकी नीतिकाही फल था, कि ब्रिटिश सेना वर्षो ऐसे प्रबल शत्रुके साथ डटकर युद्ध कर रही थी जो कि अपनी शानी नहीं रखता था। यह ग्रन्थ अवश्य देखिये मूल्य केवल १)

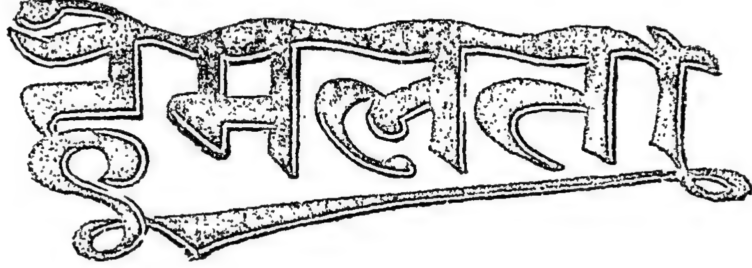
उपन्यास जगतका अमूल्य रत्न।

भारती

भारती उपन्यास-जगतका शृंगार, घटनाओंका आगार और सामयिक तथा राजनैतिक उलझनोंको प्रत्यक्ष दिखानेवाला बायस्कोप है। भारतीमें पद-पदपर घटनाओंकी जैसी विचित्रता दिखाई देती है, चरित्र- चित्रणका जैसा आदर्श दिखाई देता है, उसी तरह उपदेश भी प्राप्त होता है। यदि रायसाहबका गर्व भरा व्यवहार, दिग्विजयकी देशरक्षक पुकार और भारतीकी सेवाभाव भरी मधुर झंकार सुनना चाहते हों, यदि कपटियोंकी कपट नीति, दुराचारियोंकी स्वार्थ भरी भयानक चालें, अधिकारियोंके मानमद-मर्दन करनेवाले षड़यन्त्रका नमूना देखना चाहते हों अथवा यह जानना चाहते हों, कि नारी जीवनका आदर्श क्या है, तो भारती पढ़िये। इसमें आपको सुन्दर निधि दिखाई देगी। इसलिये कहते हैं कि समस्त कार्य्योंको छोड़ प्रथम भारती पढ़िये। सुन्दर एण्टिक कागजपर छपे हुई अनेक एक रंगे और बहुरंगे चित्रोंसे सुसज्जित पुस्तकका मूल्य ३) मात्र।

पत्रसम्पादनकला

यह ग्रन्थ हिन्दी साहित्यमें बेजोड़ है समाचारपत्रोंके सम्पादकोंका क्या कर्त्तव्य है, उन्हें किन किन बातोंपर ध्यान देना चाहिये और किन किन पुस्तकोंको किस प्रकारसे पढ़ना चाहिये। अच्छे लेखों तथा अच्छी पुस्तकोंको कैसे लिखना तथा चित्ताकर्षक और मनोरञ्जन बनाना चाहिये। यह सब बातें इस पुस्तकमें सरल तथा रोचक भाषामें लिखी गई हैं। ऐसे ग्रन्थ प्रत्येक मनुष्यको देखने तथा मनन करने चाहिये मूल्य १)



यह भी ऐय्यारी और तिलिस्मका बहुत बढ़िया उपन्यास है। इसकी लिखावट बड़ीही लच्छेदार है। ज्यों ज्यों पढ़ते जाइये त्यों त्यों ताज्जुबके समुद्रमें गोते लगाने पड़ते हैं। पुस्तक पढ़नी शुरू करके बीचमें छोड़ देना मनुष्यकी शक्तिके बाहर हो जाता है। दाम दो भागोंका १॥) रेशमी जिल्द २)

मारवाड़ी राष्ट्रीय गीत

अर्थात् गांधीजीको गीत।

जिस पुस्तकके लिये मारवाड़ी महिलायें सालोंसे लालायित थीं, जिस पुस्तकके लिये स्त्रियोंका पतियोंसे, माताओंका पुत्रोंसे तथा बहिनोंका भ्राताओंसे सख्त तगादा था, जिसके लिये सैकड़ोंही पत्र तगादेके हमारे यहां आ रहे थे, वही मशहूर पुस्तक मारवाड़ी राष्ट्रीय गीत, अपनी अपूर्व सज-धजसे छपकर तैयार है। इसमें चर्खा, स्वदेशी आदि राष्ट्रीय गीतोंके अलावा सीताजीका चणना, सुदामाजीको गीत, श्रावनको गीत आदि धार्मिक गाने भी हैं। जिन्हें पढ़ और सुन महिलाओंका मन आनन्दसे नाच उठेगा। मूल्य दो भागोंका ॥)

सिन्धवाद जहाजी—इस पुस्तकमें एक सौदागरकी सात बार समुद्र यात्राका बड़ाही रमणीय वृत्तान्त है दाम ।≠)

परोपकार

इस नाटकमें एक ओर परोपकार, और पवित्र प्रेमका प्रत्यक्ष दर्शन है और दूसरी ओर अधर्म अनीति अन्यायपूर्ण अत्याचार का अनुशासन है। हिन्दू मुसलमानोंका मेल, कारागारके कष्ट, पितृ भक्ति आदि अनेकों कारुणिक दृश्य देखकर आपका हृदय अवश्य गद्गद हो जायगा। हमारा भी प्रस्ताव है कि ऐसी पुस्तकें अवश्य पढ़ी जायें और सामयिक आवश्यकताओंकी पूर्त्ति की जाय। तीन सादे और रङ्गीन चित्रों सहित नाटककी सादी पुस्तकका मूल्य १) रेशमी जिल्दका १॥) रुपया।

पं० मोतीलाल नेहरू

जगत-प्रसिद्ध प्रयाग निवासी त्यागमूर्ति पण्डित मोतीलाल नेहरूका सचित्र जीवन-चरित्र पढ़कर सबको शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। किस प्रकार उन्होंने विलायती वस्तुओंकी ममता छोड़दी! किन कारणोंसे अहिंसात्मक असहयोग संग्रामके नायक माने गये? और बच्चेसे लेकर बूढ़े तकके हृदयमें उनकी दिव्यमूर्ति क्यों विराजमान है, उन्होंने जलियाननगर अर्थात् अमृतसरकी कांग्रेसमें सभापतिकी हैसियतसे जो देश-भक्तिपूर्ण व्याख्यान दिया वह भी इसमें ज्योंका त्यों रख दिया गया है। देशको स्वतन्त्र करनेकी क्यों जरूरत है? यह स्वतन्त्रता कैसे प्राप्त होगी, इत्यादि बातें बड़ीही सरलरीतिसे लिखी गई हैं। पण्डितजीका तिनरङ्गा चित्र दर्शन और पूजा करने योग्य है। मूल्य केवल ॥) आना।

स्वराज्यकी मांग

सचित्र राजनैतिक ग्रन्थ।

इस ग्रन्थमें स्वराज्यके विषयमें देशके बड़े बड़े नेताओंका मत व्यक्त किया गया है। बड़ी बड़ी दलीलों द्वारा सिद्ध किया गया है, कि स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है। और साथही युक्तियों द्वारा बताया गया है, कि हमको स्वराज्य-संग्राम किस प्रकार चलाना चाहिये। यह पुस्तक प्रत्येक देशाभिमानीको पढ़नी चाहिये। इसमें ८ चित्र भी दिये गये हैं मूल्य १॥)

हिन्द नाटक

(लेखक—बाबू जमुनादासजी मेहरा)

यह फड़फड़ाता हुआ राजनैतिक नाटक जिस समय रंगमञ्चपर खेला जाता है उस समय जनता मारे खुशीके चित्तो उछल पड़ती है। यह नाटक नाटकीय ज्ञानसे परिपूर्ण श्रीयुक्त बाबू जमुनादासजी मेहराकी अद्भुत लेखनी द्वारा लिखा हुआ है। देश भक्तोंको यह नाटक अवश्य संग्रह करना चाहिये। मूल्य १)

सलिमा बेगम

यह बादशाह शाहजहांकी बेगम बहुतही खूबसूरत थी। बादशाह भी इसे खूब चाहते थे। एकबार उन्हें कुछ शक हो गया इसीसे बादशाह नाराज हो गये। वह बिचारी विष खाकर मर गई देखने ही योग्य पुस्तक है दाम ।<)

सिकन्दर शाह

मेसिडोनियाके जिस वीरने थोड़े ही समयमें अपने प्रबल पराक्रमसे समस्त यूरोपको कम्पायमान कर दिया था, जिसने अपने थोड़ेसे सैनिकोंको साथ लेकर सुदूर ग्रीससे भारतवर्षके पञ्जाब प्रान्त तकके सब स्थानोंपर अधिकार जमा लिया था, जिसने पर्शिया, एजिप्ट, टायरी, आदि अनेकानेक स्थानोंपर अपना प्रभुत्व जमाकर पर्शियाके शाहकी कन्यासे विवाह किया था, जिसके साथ पराक्रमी पञ्जावाधिपति पुरुका भीषण समर हुआ था। इस ग्रन्थमें उसी वीरका पूरा हाल लिखा गया है। अगर आजसे तेईस सौ वर्ष पूर्वका इतिहास जानना होतो इस ग्रन्थको मंगाकर पढ़िये। इस पुस्तकमें १ बहुरङ्गा तथा ३ एक रंगे चित्र भी दिये गये हैं। मूल्य १॥≈) रेशमी जिल्द २)

पृथ्वीराज

भारतके अन्तिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराजके शाहबुद्दीन गोरीसे अनेकवार युद्ध, भोलाराय भीमदेवकी कूटनीति, मेवाड़ विजय, सारुण्डका भीषण समर, आबू पर्वतका भयानक युद्ध, दिल्लीके राजा अनंगपालका अद्भुत चरित्र, माधव भाटका छल, पृथाकुमारी तथा समरसिंहका विलक्षण प्रेम, शशिवृता, इच्छनकुमारीका प्रेम, जयचन्द्का हठ, राजसूय यज्ञसे, संयोगिताका गायब हो जाना, कालिंजरका युद्ध, थानेश्वरका भयानक समर, आल्हा ऊदलकी विलक्षण वीरता आदि इतनी घटनायें सप्रमाण लिखी गई हैं कि पढ़कर चकित हो जाना पड़ता है। यह इतिहास बालक वृद्ध स्त्री कन्यायें सबके पढ़ने योग्य है इसमें तीन चित्र भी दिये गये हैं। मूल्य १।)

वाराङ्गना रहस्य

वेश्याओंके समस्त भेद, उनकी पुरुषोंके फंसानेकी सब चालें हाव-भाव कटाक्षका पूरा पूरा मतलब, किस समय किस उद्देश्यसे वे क्या करती हैं, उनकी शिक्षा कैसी रहती है, उस शिक्षाको प्राप्तकर किस तरह वे पुरुषोंको अपने जालमें फंसाती हैं, कितने प्रकारकी वेश्यायें होती हैं, सती-साध्वी स्त्रियां और वेश्याओंके चरित्रमें कितना अन्तर रहता है, वृद्धा वेश्याएं कौन कौनसे भयानक कार्य्य करती हैं, किस तरह चतुर पुरुष उनके जालसे बचते और उन्हें ही अपने जालमें फसा लेते हैं आदि ऐसी घटनायें सप्रमाण लिखी हैं कि, पढ़नेवाला उन्हें पढ़कर दंग रह जाता है। ऐसा उपदेशप्रद, और चित्ताकर्षक उपन्यास अब तक दूसरा नहीं छपा मूल्य ६ भागोंका ४॥) रेशमी जिल्द ५)

वीरजयमल—यह ऐतिहासिक उपन्यास पढ़नेही योग्य है वीरजयमलका वीरत्व भरा हाल पढ़कर मन वीर रङ्गमें रंग जाता है। इस बहादुर राजकुमारने अपने पूर्व पुरुषोंकी खोई हुई मेवाड़ भूमिका उद्धार बड़ी वीरता तथा बुद्धिमत्ताके साथ किया था। पुस्तक देखने लायक है मूल्य केवल ।≶) मात्र है।

बे बादलका वज्र—एक बेगुनाहपर घूसखोर पुलिसके दुखसे दारोगाने कैसी आफत डाली थी इसको आप जरूर पढ़कर देखिये दाम ।≶)

भण्डा फोड़—यह सचित्र भण्डा फोड़ देखनेही लायक है। इसमें बड़े बड़े गूढ़ भेद निकले हैं। मामला बम्बईका है। आप इस को पढ़कर बहुत खुश होंगे दाम ॥)

नेमा—यह भी एक अनोखा मामला है। सतीका सत और कुलटाकी कलङ्क कथा सब देखिये।≠)

वनवीर नाटक—आज कल जो भारत द्रोही भूठ मूठ भारतवासियोंपर राजद्रोहका कलङ्क लगाना चाहते हैं उनकी आंखोंमें यह नाटक सलाईका काम करेगा। इसके पढ़नेसे मालूम होगा कि इस देशकी प्रजा अपने राजाको ईश्वर मानती है और उसकी रक्षाके लिये अपने प्यारेसे प्यारे तनको न्योछावर कर सकती है। यह नाटक सच्ची राजभक्तिका नमूना है। दाम ॥≠)

कर्म्ममार्ग—हिन्दी भाषामें यही राजनैतिक उपन्यास पहले पहल निकला है। इसमें पुलिसकी कार्रवाई, बम बायकाट और स्वदेशीका असलरंग दिखाई देगा और साथही मूढ़ बम बायकाट और स्वदेशीकी हंसाई करानेवाले युवकोंका परिनाम भी आंखोंके सामने आ जावेगा। यह सुन्दर पुस्तक बहुत बढ़िया वजनदार अमेरिकन कागजपर छापकर सजाई गई है। इसका तीनरंगा टाईटल देखते ही पुस्तकका विषय आंखोंके सामने नाचने लगता है। एक बार हाथमें लेकर विना पूरा पढ़े मन नहीं मानता मूल्य २)

वीर पत्नी—महाराज जयचन्द्रकी कन्या संयोगिताके स्वयम्बर और पृथ्वीराज और शाहबुद्दीनकी लड़ाईका दृश्य देखना हो तो इसे पढ़िये दाम ।-)

संसार चक्रका अद्भुत चमत्कार ।

रूसमें युगान्तर

अर्थात्

बोल्शेविक रूस ।

लेखक विश्वम्भरनाथ जिज्जा ।

यदि आप रूस सरीखे महाशक्तिशाली राज्यका पतन, जर्मनीके सम्राट् कैसर और रूसके सम्राट् जारकी चालें, रूसके भिन्न-भि क्रान्तिकारी दलोंके उपद्रव और महात्मा लेनिन तथा ट्रोजकीके ने त्वमें भयानक बोल्शेविक क्रान्तिकी झलक देखना चाहते हैं तो " युगान्तर" एकबार अवश्य पढ़िये ।

इस पुस्तकमें बोल्शेविक मत क्या है, बोल्शेविज्मकी उत्पत्ति कब, कैसे और किस उद्देश्यसे हुई । यदि आप युरोपीय महायुद्धके वास्तविक कारण, रूस जापान युद्धका आनन्द, युरोपका वर्त्तमा इतिहास जानना चाहते हैं तो एकबार इस पुस्तकको मँगाकर अवश्य अवलोकन कीजिये । इस पुस्तकको लेखकने बड़े परिश्रमसे ऐसी रोचक और सरल भाषामें लिखा है कि जबतक आप शुरूसे अन्ततक न पढ़ लेंगे, पुस्तक छोड़नेकी इच्छा न होगी । सुन्दर कई हाफटोन चित्रोंसे सुशोभित पुस्तकका मूल्य २)

जासूसके जवानी—इसमें जासूसने अपनी राम कहानी अपने आप कही है । जासूस सर्दारने सच्चा चुह चुहाता हुआ ता मामला इसमें ऐसा बतलाया है कि, आप अकबका जायेंगे और अनोखी कहानीका आनन्द पावेंगे दाम केवल १)

स्वामि भक्ति

(नाटक).

नाटक क्या है? वर्त्तमान समयका चित्र दिखानेवाला अद्भुत चमत्कारिक आइना है। इसके हरएक दृश्य आपका चित्ताकर्षित करेंगे और समयानुकूल बिना रुलाये और हँसाए न रहेंगे। यह नाटक बड़ी ही सरल और मधुर भाषामें लिखा गया है। प्रत्येक नाटक प्रेमी एवं संस्थाको इसकी एक एक प्रति अवश्य रखनी चाहिये। यदि आप सरस्वतीकी पति-परायणता और स्वामिभक्ति, लीलावतीका धर्म पालन तथा भ्रातृस्नेह, हीरालालके वेश्या गमनका नतीजा, दुष्ट अभयचन्द तथा उनके साथियोंका भीषण अत्याचार और अन्त परिणाम, मुन्ना वेश्याका प्रेम जाल तथा उसके गुप्त विचार, राय भड़चन्दके गृहकी विचित्र कहानी एवं नाटकके नायक रामदासकी कर्त्तव्य परायणता तथा महान् आदर्श स्वामिभक्ति और उसका पुरस्कार देखना चाहते हैं तो समस्त कार्य्योंको विश्राम दे एकबार इस पुस्तकका अवश्य अवलोकन करें। अनेक रंग-बिरंगे चित्रोंसे सुसज्जित पुस्तकका मूल्य १।) रेशमी जिल्द १॥)।

मृत्यु विभिषिका—यह बड़ी विकट कहानी है। इसमें जासूस सर्दार गोविन्दरामकी रोयें खड़े करनेवाली कार्रवाइ लिखी गई है! उनकी मूस्तैदी बारीक बुद्धि, और जवांमर्दी देखकर दांतों उंगली दबानी पड़ती है। इसमें एक कुत्तेकी जासूसी भी देखने योग्य है दाम १॥)

पतिव्रता अरुन्धती।

कुमारी कन्याओं और नवविवाहिता स्त्रियोंके लिये यह पुस्तक बड़ी ही शिक्षाप्रद और उपयोगी है, क्योंकि इसमें सतीशिरोमणी देवी अरुंधतीके पतिव्रतधर्मका ऐसा सुन्दर चित्र खींचा गया है, कि पढ़नेवालोंके हृदयपर इसका असर अवश्य पड़ता है। इसमें हाफ-टोनके तिनरंगे और एकरंगे चित्र भी दिये गये हैं, लड़कियोंके स्कूलोंमें इनामके लिये यह पुस्तक बड़ी ही उपयोगी होनेके कारण धड़ाधड़ बिक रही है। हिन्दीमें अबतक ऐसी सुन्दर शिक्षाप्रद तथा उपयोगी पुस्तक नहीं छपी। यदि आप बहू बेटियों तथा स्त्रियों-को धर्मनिष्ठ तथा पतिव्रता बनाना चाहते हों तो इस पुस्तकको अवश्य मंगाइये, मूल्य केवल ||≈)



मुकलावा बहार।

यह पुस्तक मारवाड़ी युवकोंके बड़े कामकी है। इसमें विवाह तथा मुकलावेके समयके हंसी मजाक दोहा, पहेली, थाल, पानी, पलंग, रास्ता आदि स्त्रियोंके बांधने पर छुड़ाना इनके इलावा शाखो-चार, बाराह मासिया वगैरह बहारदार चीजें भी दी गई हैं। मूल्य च्यार भाग १) जिल्ददार १।)

माधवजीका स्वराज्य—यह बहुतही अच्छा हंसानेवाला शिक्षा प्रद उपन्यास है। इसके पढ़नेसे आप बहुत खुश होंगे और देश के प्रति आपका अनुराग बढ़ेगा दाम।≈)

V 94

